मृत्युंजय भीष्म

रामप्रकाश शर्मा

साहित्य सहकार
दिल्ली-110 051

इसे पढ़ना अनिवार्य नहीं है।

महाभारत कथा के सभी पात्रों के चरित्र में विविधता होते हुए भी प्रत्येक के चरित्र में अपनी अलग विशेषता है। धर्मपुत्र युधिष्ठिर के चरित्र मे सत्य, धर्म, क्षमाशीलता, सहिष्णुता और न्याय के प्रति अटूट विश्वास का दिग्दर्शन होता है तो गदाधारी महाबली भीम और गांडीव धनुर्धारी अर्जुन के शौर्य-पराक्रम की गाथा अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

गुरु द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र, कर्ण, कुन्ती और गांधारी आदि के चरित्र के उज्ज्वल पक्ष भी कम प्रेरणादायक नही हैं। दुर्योधन, दुःशासन शकुनि आदि के कालिमामय चरित्र भी अपना विशिष्ट स्थान रखते है।

महाभारत के अठारह दिवसीय महासंग्राम में श्रीकृष्ण की अहम् भूमिका रही थी, यह सत्य है। लेकिन यह सोचना कि महाभारत युद्ध की विभीषिका के कारण हुए विनाश का कारण श्रीकृष्ण थे, निराधार है। श्रीकृष्ण ने अन्तिम क्षण तक युद्ध टालने का भरसक प्रयास किया था। युद्ध शुरू होने के अन्तिम समय श्रीकृष्ण ने कहा था, "अगर कौरव नरेश दुर्योधन पाडवों को उनकी पैतृक सम्पत्ति का आधा भाग नहीं देना चाहते तो आजीविका के लिए उन्हे केवल पाच गाव देकर ही संधि कर लें ताकि युद्ध की विभीषिका से बचा जा सके।" लेकिन दभी दुर्योधन ने कर्ण और शकुनि की विद्वेषपूर्ण मंत्रणा के कारण श्रीकृष्ण का प्रस्ताव पाण्डव पक्ष की दुर्बलता समझकर स्वीकार नही किया। श्रीकृष्ण सत्य और धर्म पर आधारित न्याय के पक्षपाती थे। सत्य, धर्म और न्याय की रक्षा के लिए ही उन्होने पाण्डवों को युद्ध घोषित करने की मंत्रणा दी थी और युद्ध मे अंत तक उनका साथ दिया था।

महाभारत कथा में आदि से अंत तक जिस महापुरुष का दृढ़ चरित्र सबसे अधिक प्रभावित करता है, वह भीष्म है। पितृ सुख के लिए आजीवन अविवाहित रहकर ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करना और उसका जीवन पर्यन्त पालन करना भले ही आज अप्रासंगिक लगे लेकिन इसका उदाहरण भारत के इतिहास मे ही नही, विश्व के इतिहास मे भी मिलना असंभव है।

भीष्म जीवन पर्यन्त अपने सिद्धातो और जीवन मूल्यों के प्रति संघर्षरत रहे। सत्य, धर्म और न्याय की रक्षा के लिए उन्होंने अपने सुखो को तिलांजलि दे दी।

भीष्म ने अपने पिता शान्तनु और सौतेली माता निषाद पुत्री सत्यवती के समक्ष प्रतिज्ञा की थी कि जीवन के अन्तिम क्षण तक वह भरतवंश और इन्द्रप्रस्थ राज्य की रक्षा करते रहेंगे। अपनी इस प्रतिज्ञा के कारण ही युद्ध में उन्हें कौरव पक्ष का साथ देना पड़ा था यद्यपि वह जानते थे कि पाण्डव सत्य, धर्म और न्याय के मार्ग पर आरूढ़ हैं इसलिए अंतिम विजय पाण्डवों की ही होगी। भीष्म ने दुर्योधन के कुकृत्यों को उजागर कर युद्ध पूर्व भरी सभा में घोषणा कर दी थी कि पांडु पुत्र सचाई की राह पर है इसलिए अन्तिम विजय उन्ही की होगी, धृतराष्ट्र पुत्रों का विनाश अवश्यभावी है।

भीष्म का कैसा विलक्षण चरित्र था ! कौरव पक्ष की ओर से युद्ध करते हुए जब उन्होंने पाण्डव सेना के अनेक वीरों को वीरगति प्रदान कर दी तब युधिष्ठिर के पूछने पर अपनी मृत्यु का रहस्य भी उन्हें सहज ही बता दिया।

अर्जुन के तीखे बाणों से उनका सारा शरीर छलनी हो गया है। युद्ध भूमि में शरशैया पर पड़े हैं लेकिन मृत्यु उनके पास तब तक नहीं फटक सकती जब तक वह स्वयं नहीं चाहेंगे। यह सब क्या साधारण मानव के लिए संभव है ? कदापि नहीं ! यह तो भीष्म जैसे दृढ़ प्रतिज्ञा करने वाले संयमी देवपुरुष को ही संभव है। तभी तो भीष्म को 'मृत्युंजयी' कहा है।

—मिश्रीलाल शर्मा

पूर्वार्ध

एक

मृगया खेलते-खेलते महाराज शांतनु जाह्नवी के तट पर आ गये। शीतल समीर देह की थकन को मिटा रही थी। प्यास से परिश्रांत राजा ने गंगाजल पान कर देखा कि गंगा की धार अत्यंत मंद-मंद बह रही है। रेतीले टापू लम्बे, तिकोन, अर्धचन्द्राकार दिखाई पड़ रहे हैं। राजा को बड़ा विस्मय हुआ। वह किनारे-किनारे उत्तर की ओर बढ़ते गये। सहसा उनकी दृष्टि बाणों के अवरोध पर पड़ी जहां एक देवोपम बालक धनुष पर बाण चढाये जलधार को रोकने का प्रयास कर रहा था। सिंह के समान वक्षस्थल, ललाट पर त्रिपुण्डधारी बालक की दृष्टि जलधार पर लगी हुई थी। ललाट पर पसीने की बूंदें मोती के समान दीप्त हो रही थी। विद्युत् गति से आकर्ण धनुष पर बाण चढ़ाये बालक के लक्ष्यवेध को कुछ समय तक राजा देखते रहे। उन्होंने उत्सुक होकर तीव्र स्वर मे पूछा—

"बालक तुम कौन हो? तुम किसके पुत्र हो? तुम्हारा उद्देश्य क्या है?"

बालक का हाथ धनुप पर रुक गया। उसकी दृष्टि राजा पर पड़ी। बालक ने निर्भीकता से उत्तर दिया, "मैं गांगेय हूं। मेरी माता निकट के आश्रम मे रहती हैं। मैं यहां बाणविद्या का अभ्यास कर रहा हूं। बहुत थके प्रतीत होते हो। आओ आश्रम पर ले चलूं।"

धनुर्बाणधारी बालक के पीछे राजा मौन चल दिए। कुछ दूर पर वृक्षों की शीतल छाया मे सुन्दर आश्रम दीख पड़ा। बालक आश्रम से अपनी माता का दाहिना हाथ पकड़े निकल कर आया जिसे देखकर शांतनु के मुख से निकल पड़ा, "महारानी गंगा···तुम!"

"हा महाराज, आपका यही आठवां पुत्र देवव्रत है। यह आपकी धरोहर है जिसकी रक्षा मैंने सोलह वर्षों तक की है। परशुराम ने इसे शस्त्रविद्या सिखाई है, वृहस्पति ने नीतिशास्त्र और अनेक ऋषियो से मैंने इसे वेदाग की शिक्षा दिला कर मानवीय मूल्यों का बीजारोपण किया है। यह आपके कुल का वर्धन करेगा। आपकी यह धरोहर आपको समर्पित है।"

यह कह कर विद्युत् गति से गंगा वहां से अतर्धान हो गई।

राजा के मन मे अतीत का समुद्र हिलोरें लेने लगा। निर्जन वन प्रांत में आखेट के समय दिव्य रूपधारी गांधर्वी देवी ने शीतल जल, फल-मूल से मेरा

स्वागत किया था। मेरा मन मीन की भांति उस अपार रूप-सागर में गोते खाने लगा। मैंने देवबाला के समक्ष वरण करने का प्रस्ताव रखा। वह मन्द-मन्द मुस्कराती हुई बोली—

'राजन, देवबालाएं पृथ्वी पर भ्रमण करने आती हैं। उनका प्रणय अति दुर्लभ है। यदि तुम मुझे वरण करना चाहते हो तो मुझे वचन दो कि तुम मेरे किसी कार्य मे हस्तक्षेप नही करोगे।'

प्रेम-बन्धन में बंधकर मैंने सब कुछ स्वीकार कर लिया।

समय व्यतीत होते देर नही लगती। महारानी गंगा ने एक पुत्र को जन्म दिया। जन्म देते ही महारानी पुत्र को लेकर गंगातट पर पहुंची और हंसकर नवजात शिशु को गंगा की तेज धार मे फेंक दिया। मैं विवश-सा इस दृश्य को देखता रह गया। मुझे महारानी का यह कुकृत्य निष्ठुरतापूर्ण लगा, परन्तु मैं वचनबद्ध था। इसी प्रकार महारानी ने सात पुत्रों को जन्म दिया और सबको एक-एक करके जाह्नवी के तीव्र जल मे डुबो दिया। मैं उसके अपकर्म पर मन ही मन क्षुब्ध था, 'यह तो भरतवंश को डुबो कर ही रहेगी।' आठवें पुत्र-जन्म का अवसर आया। मैंने मन मे निश्चित कर लिया था कि मैं अब इसे यह कुकर्म नही करने दूंगा। प्रातःकाल की अरुण वेला में महारानी ने नवजात शिशु को गोद में ले लिया। मैंने रानी का हाथ पकड़कर कहा, 'हे वरांगे, इस निष्ठुर कार्य से अब तो मुंह मोड़ो। तुम इस राजवंश को नष्ट करने पर तुली हुई हो। मेरा भरतकुल शौर्य प्रताप से प्रकाशित है। तुम इस महान कुल की वंश-परम्परा को नाश करके ही दम लोगी!' महारानी गंगा मुस्कराती हुई रुक गई और मुझसे बोली, 'राजन्, तुमने मुझे वरण करते समय वचन दिया था कि मेरे किसी कार्य मे आप बाधा नही डालेंगे। आज आपका वह वचन मिथ्या प्रतीत हो रहा है। अब मैं एक भी क्षण हस्तिनापुर मे नही रहूंगी। इस आठवें पुत्र के जीवन का अन्त नही करूंगी। मैं बाल्यकाल मे इसे पालूंगी, समस्त विद्याओं मे निपुण कराऊंगी एवं इस धरोहर को आपको सौंपकर गंधर्वलोक को प्रयाण करूंगी।' महारानी गंगा राजमहल से तीव्र गति से प्रस्थान कर गई। रानी के वियोग में मेरा मन वायु से बुझे दीपक के समान बुझ गया। मुझे अंधकार दिखाई देने लगा। समय लम्बी डोर के समान अन्तहीन प्रतीत होने लगा। मेरा समय मृगया मे विशेषतः व्यतीत होने लगा। आज गंगा ने अपने वचन को पूरा कर दिया है। यह पुत्ररत्न कुरुकुल का सूर्य बने यही मेरी अभिलाषा है।

दो

राजकुमार देवव्रत के हस्तिनापुर आगमन पर राजा ने हर्षोल्लासपूर्ण उत्सव मनाये। प्रजाजनों ने घर-घर दीप जलाये। राजा ने अपने मित्रराष्ट्रों को सूचित कर दिया कि हस्तिनापुर के युवराज पद पर राजकुमार देवव्रत को आसीन किया जायेगा। राजकुमार देवव्रत के सदाचरण, शौर्य, पराक्रम से प्रजाजन बहुत संतुष्ट थे। मंत्रीगण उनकी न्यायप्रियता की प्रशंसा करते थे। राजा शान्तनु ऐसा शूरवीर-तेजस्वी पुत्र पाकर बहुत सतुष्ट थे। राजा के मन मे महारानी गंगा की रिक्तता शूल के समान चुभती थी। इस मनःपीड़ा को वे किसी के समक्ष प्रकट नही कर सकते थे। एक दिन राजा शान्तनु आखेट खेलते-खेलते यमुनातट की ओर निकल गये। वहां शीतल-मन्द समीर के मन्द-मन्द झोको मे उन्हें अनुपम सुगंध का अनुभव हुआ। कुछ ही दूर पर यमुना-घाट था जहां एक सुन्दर बाला नाव खे रही थी। ज्यों-ज्यों राजा समीप आते जाते, वैसे ही सुगन्ध तीव्रतर होती जाती थी। राजा अपने सम्मुख उस वरांगना को देखकर चकित थे। इस वन प्रांत मे रूप का यह सम्मोहन ! घास-फूस में अग्नि की लौ जल रही हो या कीचड़ मे कोई कातमणि। राजा ने उस बाला से पूछा, "हे सुन्दर बाले ! तुम किसकी पुत्री हो ? तुम्हारा नाम क्या है ?" कन्या ने प्रतापी राजा शान्तनु को देखकर नेत्र झुका लिए। अंग-प्रत्यंगों को धूमिल वस्त्रों मे समेटती हुई बोली, "महाराज, मैं निषाद-राज दाशराज की कन्या हूं। मेरा नाम सत्यवती है। मैं अपने पिता के साथ नाव चलाने में सहायता करती हूं।" राजा को देखकर कुछ अन्य मल्लाह निषादराज के साथ आ गये। सबने आकर राजा को जुहार करके उनका स्वागत किया। राजा ने निषादराज से कहा, "यह तुम्हारी कन्या चन्द्रकला के समान सुन्दर लक्षणों से सम्पन्न है। यह राजमहल को सुशोभित करने योग्य है। मैं इसका वरण करना चाहता हूं।" निषादराज के अन्य साथी हर्षध्वनि करने लगे। "अरे निषादराज के तो भाग्य ही खुल गये।" कुछ कहने लगे, "निषादराज की पुत्री जब महारानी बनकर यहा आयेगी तो रथ, पालकी की फौज लेकर आयेगी। हमारे सरदार निषाद-राज को भी राजदरबार में ऊंचा मच मिलेगा।" परन्तु निषादराज दाशराज गम्भीर मुद्रा मे मौन बैठा था। वह राजा शान्तनु के समक्ष अपने मन की बात कहने मे संकोच कर रहा था। राजा ने पुनः कहा, "क्या मेरा प्रस्ताव तुम्हें रुचि-कर नही लगा ?" निषादराज ने हाथ जोड़ कर महाराज शान्तनु से कहा, "हे पृथिवीपते ! आपका यश देश-देशान्तर मे फैला हुआ है। महाराज भरत चक्रवर्ती सम्राट थे जिन्होंने समुद्रपर्यन्त तक पृथ्वी को जीतकर कुरुवंश की ध्वजा गाड़ी थी। आप भी आर्यावर्त्त मे उसी कुल के यशस्वी नरेश हैं। आपके परम प्रतापी राजकुमार देवव्रत का शौर्य बाल अरुण के समान आर्यावर्त्त में फैलने लगा है। वे

कभी-कभी आखेट खेलने यमुनातट के वन प्रांतर में आते हैं। मैं आपकी प्रजा हूं और आप हमारे प्रजापालक नरपाल हैं।" निषाद को चुप होते देख राजा ने पुनः पूछा, "हे निषादराज, तुम्हें मेरा प्रस्ताव स्वीकार्य है ?"

"हा राजन, मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार है, परन्तु मेरी विनय सुन लीजिए। मेरी अभिलाषा है कि सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न पुत्र ही राजसिंहासन का अधिकारी बने।" निषादराज ने विनयपूर्वक राजा शान्तनु से कहा।

राजा की लहलहाती हुई खेती पर तुषारापात हो गया। सत्यवती के रूप-सौन्दर्य ने राजा का मन मछली के समान कामजाल मे फंसा लिया था। राजा अपने प्रिय पुत्र देवव्रत को युवराज-पद पर अभिषिक्त करने का निश्चय कर चुके थे। राजा ने निषादराज को बिना उत्तर दिए घोड़े की बाग को हस्तिनापुर की ओर मोड़ दिया।

राजा का मन चचल मीन की भांति सत्यवती के चिंतन में गोते खाता रहता था। वे राज्य-कार्यों से उदास रहने लगे। राजकुमार देवव्रत को देखकर वे नेत्र नीचे कर लेते थे। आमोद-प्रमोद मे उनका मन नही लगता था। रात मे देर तक उन्हे नीद नही आती थी। महाराज की ऐसी अवस्था देखकर एक दिन देवव्रत ने साहस कर राजा से विनीत होकर पूछा, "पिताश्री, आप किसी चिन्ता में लीन रहने लगे हैं। समस्त भूपाल आपकी आज्ञा के अधीन हैं। आप मुझे आदेश दें जिससे मैं आपके कष्ट को दूर करने का प्रयत्न कर सकू।"

राजकुमार की विनीत वाणी सुनकर शान्तनु की आंखें छलछला आईं। वे बोले, "वत्स, तुमने भरतवंश को प्रकाशित कर दिया है। तुम्हारे यश को सुनकर मैं बहुत संतुष्ट हूं। तुम मुझे सौ पुत्रों से भी अधिक हो। मैं इस जगत की स्वार्थ-परता, लोलुपता को देखकर शोकाकुल हूं। मैं तुम्हारे स्वत्व और अधिकार की रक्षा के लिए अपनी आकांक्षाओ को तुच्छ समझता हू। वत्स, तुम्हारी कीर्ति विमल चन्द्रिका की भांति भूमण्डल पर फैले। गंगानन्दन, तुम मेरे जीवन के आधार हो।" यह कह कर राजा मौन हो गये।

देवव्रत राजा के मन की पीड़ा न जान पाये। वे राजा के गहन शूल को जानने के लिए राजा के परम हितैषी सारथी के पास गये। सारथि राजकुमार से कुछ न छिपा सके। उन्होंने राजकुमार को राजा के आखेट खेलते समय निषादराज से हुई बातचीत का सारा वृत्तांत कह सुनाया। सारथि ने कहा, "राजकुमार, महाराज तुम्हे प्राणों से भी अधिक चाहते हैं। उन्होंने निषाद के वचन को स्वीकार नही किया। महाराज धर्मविद और प्रजापालक हैं। वे निषादराज के प्रति बिना रोष व्यक्त किए हस्तिनापुर लौट आये। तभी से राजा चिंतित एव उदास रहते हैं।"

देवव्रत को राजा की चिंता का कारण ज्ञात हो गया। पिता आकाश के

समान व्याप्त होता है। पुत्र को उसका अनुगामी होना ही चाहिए। वे रथ पर चढ़कर कुछ मंत्रिपरिषद् के लोगों को लेकर निषादराज दाशराज के समीप गये। निषाद ने राजकुमार एवं अन्य सभी आगन्तुकों का आतिथ्य किया। वहा निषाद के अन्य जातिजन भी आ गये। सारथि ने निषाद से कहा, "हे निषादराज, तुम हस्तिनापुर राज्य की प्रजा हो। महाराज शातनु लोकप्रिय और प्रजापालक हैं। उनकी न्यायप्रियता सर्वविदित है। वे अन्याय से किसी पर बल का प्रयोग नही करते। वे जब मे तुमसे भेंट करके गये हैं तभी से चिंतित हैं। तुम महाराज की चिंता को निवारण कर सकते हो।"

निषादराज गंभीर मुद्रा में बोला, "मुझे मेरी कन्या मणि के समान प्रिय है। मैं उसके लिए श्रेष्ठ वर चाहता हूं। मेरे लिए महाराज से श्रेष्ठ और कौन होगा? परन्तु इसमें एक संशय है। महाराज के यशस्वी पुत्र राजकुमार वीर शिरोमणि और शौर्यवान हैं। उनके अतिरिक्त राजसिंहासन का अधिकारी कोई अन्य नही हो सकता। मेरी पुत्री दासी बनकर रहे, यह मुझे स्वीकार नही है। मेरी यही विनती आपसे है।"

निषादराज की बातें सुनकर राजकुमार देवव्रत का मुखमंडल त्याग की आभा से उद्दीप्त हो उठा। उन्होंने निषाद से कहा, "हे दाशराज, ये आमात्य एवं सभासद वंदनीय हैं। मैं तुम्हारे जातिजनों के समक्ष यह घोषणा करता हूं कि मैं भरतकुल के राजसिंहासन पर नही बैठूगा। उस पर तुम्हारी पुत्री का ही अधिकार होगा।"

राजकुमार की यह घोषणा सुनकर समस्त सभासद एवं ग्रामीण जन राजकुमार के मुख की ओर देखने लगे। जिस राज्याधिकार को प्राप्त करने के लिए राजाओं मे कुहराम मचा रहता है, राजा लोग लोभ-स्वार्थ के तीव्र प्रवाह मे बहकर भयंकर क्रूर कर्म करने को सन्नद्ध रहते हैं, वही राज्य-सुख राजकुमार ने तृणवत् छोड़ दिया। सबके मुख पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। परन्तु अब भी निषादराज की मुद्रा गंभीर थी। नेत्र पृथ्वी की ओर झुके हुए थे। वह बोला, "राजकुमार की घोषणा उनके गौरव के अनुकूल है। वे उच्चकोटि के शूरवीर और त्यागी हैं, परन्तु···"

सभी लोग निषाद की ओर टकटकी लगाये देख रहे थे। कहा राजकुमार के त्याग की चरम सीमा और कहा नीच कुल मे जन्मे निषादराज की स्वार्थपरता! "राजकुमार तो निषाद की कन्या को बलपूर्वक रथ मे बैठाकर ले जा सकते हैं।" कुछ लोग फुसफुसाते हुए कह रहे थे। उसी समय राजकुमार ने निषाद से संदेह जानने को पूछा, "हे दाशराज, क्या तुम्हें मेरे वचनों मे अब भी संदेह है?"

निषाद ने हाथ जोड़कर कहा, "राजकुमार, आप सत्यनिष्ठ और सामर्थ्यवान है। आपके यश-प्रताप से हम सब प्रजा सुख-शांति से रहते हैं। आपने राजसिंहासन

त्यागने की प्रतिज्ञा कर ली, परन्तु आपकी संतान अपने स्वत्व को बलपूर्वक प्राप्त कर लेगी। राज्याधिकार का सम्मोहन सब सम्बन्धों को तोड़ डालता है।"

निषादराज के वाक्य राजकुमार के मर्मस्थल को छू गये। वे कुछ देर मौन होकर प्रकाश को खोजने लगे। निषादराज का क्षुद्र स्वार्थ अपनी कन्या के घरोंदे में घिरा राष्ट्र के लिए अहितकर बन सकता है। प्रजा से बलपूर्वक उसका स्वत्व हरण करना राज्यधर्म नहीं है। परन्तु राजा तो राष्ट्र के लिए अमूल्य निधि है, प्रजा का रक्षक और काल का एकमात्र कारण। पितृभक्ति मेरा धर्म है, परन्तु राष्ट्रहित समस्त प्रजा का धर्म है। राजा राष्ट्र का प्रतीक है। राष्ट्र-यज्ञ में त्याग की आहुति पूर्ण करके प्रजा को ऐश्वर्य, वल, शौर्य, गौरव एवं अर्थ, काम, सुखशांति सभी कुछ प्राप्त होता है। प्रजा के लिए राजा अनन्य है और राजा के लिए समस्त प्रजा पुत्रवत्। सूर्य के समान राष्ट्र धर्म समानधर्मा है जो अपने प्रकाश को सर्वत्र फैलाता है। स्वार्थ की क्षुद्र परिधि मे घिरकर राष्ट्र का अहित होता है। स्वभाव से भीरु एवं अनुदार कुल में उत्पन्न निषाद की दृष्टि अपनी स्वार्थपूर्ति में केन्द्रित है। वह राजा की मानसिक व्यथा को—राष्ट्र के अहित का अनुभव नहीं कर सकता। उसकी दृष्टि त्यक्त भोजन की ओर श्वान की तरह लगी हुई है। परोपकार, त्याग, दान मानवीय मूल्यों से निम्नश्रेणी के लोग कम ही परिचित होते हैं। पिताश्री के मानसिक संताप को दूर करने को मैं अपने सुखों को त्याग दूंगा।

सबकी दृष्टि राजकुमार की ओर लगी हुई थी। सहारा देदीप्यमान मुख से निर्झर स्रोत के समान उनकी वाणी फूट पड़ी—

"निषादराज, तुम्हारी पुत्री कुरुदेश की सम्राज्ञी बनेगी, यह मेरा दृढ़ निश्चय है। अनन्त आकाश, जगत-जननी वसुन्धरा, मरुतगण एवं अग्नि को साक्षी करके मैं आज प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके भरतवंश के गौरव-मर्यादा की रक्षा करूंगा।"

देवव्रत का यह मेघ-गर्जन सुनकर सभी के रोंगटे खड़े हो गये। निषाद नत-मस्तक किए बैठा था। वे तीव्रगति से निषाद कन्या सत्यवती के सम्मुख जाकर बोले, "माता, रथ पर चढ़ो। आज से आप इस महान राज्यकुल की राजमाता हैं।"

तीन

हस्तिनापुर की शोभा आज अपूर्व थी। मुख्य द्वारों पर वंदनवार बंधे थे। राज-मार्ग जल के छिड़काव से सिंचित, हरित आम्रपत्रों की वंदनवार, जिनमें मुक्ता-प्रवाल गुंथे हुए थे, सर्वत्र दिखाई देते थे। चित्र-विचित्र चित्रकारी से प्रांगण में रोली

और धान के चूर्ण के चौक बनाये गये थे। अगरु भेद की सुगंधि से राजभवन सुगंधित हो रहा था। विशाल गुम्बदों पर रत्नमंडित झालर लटकाई गई थी। मुख्य द्वार इन्द्रधनुषी रेशमी वस्त्रों से वेष्टित किया गया था। पुष्पों से सभागार और चौक सुसज्जित किए गये थे।

सभामण्डप के मंच पर दो मणिमण्डित स्वर्ण सिंहासन थे। राज्याभिषेक के समान उत्साहवर्धक था वह दृश्य। जयजयकार के साथ महाराज शातनु, देवव्रत, उनके पार्श्व मे मन्त्रीगण, सामन्तगण और सबसे पीछे पौरजनो का उत्साहवर्धक उल्लासपूर्ण जयनाद। समस्त राजभवन उससे गुजरित हो उठा था। शंख, मृदंग, तूर्य आदि वाद्यो का उच्चनाद भी सुनाई पडता था। स्थान ग्रहण करके वृद्ध आमात्य ने राजा को अभिवादन करके नागरिको को सम्बोधन किया—"पौरजनो, यह राज्याभिषेक-सा राज्यपर्व सबके मन मे हर्षोल्लास भर रहा है जैसे राज्यश्री का युवराज-पद राजकुमार देवव्रत को सौपा जा रहा हो। परन्तु यह पर्व उससे भी बढ़कर है। राजकुमार ने वंश-गौरव को महिमामडित करने मे अपूर्व त्याग का उदाहरण प्रस्तुत किया है। भरतवशियों मे देवव्रत का सत्यव्रत, हिमालय-सा दृढ़ निश्चय ध्रुवनक्षत्र की भाति सुशोभित रहेगा। पितृभक्ति का यह महान निदर्शन मानवमात्र का चरमबिंदु बन गया है। यह पितृभक्ति के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत सुमेरु-सा महान है।"

धन्य-धन्य की महान गुजार से सभागार गूंज उठा। असख्य युवराज-पद राजकुमार के चरणों पर न्योछावर हैं। जन कोलाहल शांत होने पर महाराज शातनु अपने सिंहपीठ पर खड़े हुए। सबकी दृष्टियां राजा के मुख की ओर लग गईं। "धर्म-विद् प्रजाजनो, हमारा पुरुवश अत्यन्त गौरवशाली है। उसमे प्रतापी महाराज भरत ने अपने बाहुबल से समुद्रपर्यन्त पृथ्वी जीतकर इसे महिमामडित किया। तभी से इस राष्ट्र का नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ। आज इसी कुल मे राजकुमार देवव्रत ने अपने शौर्यबल धर्माचरण से इस वश का गौरव सुमेरु से भी उत्तुग बना दिया है। मेरा संकल्प था कि राजकुमार को युवराज-पद सौपकर शेष जीवन सेवा, तप, आत्मनिग्रह में व्यतीत करूगा। आज का उत्सव युवराज-पद से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। राजकुमार ने अपने पिता और राष्ट्र के लिए जो महान भीषण व्रत धारण किया है, उन्हें मैं भीष्म की महान उपाधि से विभूषित करता हूं।"

"राजकुमार भीष्म की जय···" जयजयकार से पुनः सभागार गूज उठा। पुष्प-वर्षा होने लगी। धर्माधिकारी पुरोहित ने आशीर्वाद दिया, "राजकुमार अपने पराक्रम से इस महान साम्राज्य की मर्यादा की रक्षा करें। राजा, मन्त्री, कोष, दुर्ग, सेना, मित्र एवं राष्ट्र सातों राज की प्रकृतियां धर्माध्यक्ष पुरोहित, ज्योतिष-विद्, वैद्य एवं राज्य की संरक्षिणी शक्तिया आज भीष्म को अभिमन्त्रित करती है।"

प्रजा के आह्लाद के साथ सभा विसर्जित हुई।

राजा शांतनु ने राजकुमार को अपने कक्ष में बुलाकर कहा, "वत्स, मेरी मनोकामना की पूर्ति के लिए तुमने जीवन-सुखों की आहुति दी है, यह पितृधर्म का महान उदाहरण प्रस्तुत किया है। मेरी यह कामना है कि तुम ही इस राजवंश की रक्षा करो।" देवव्रत भीष्म का मस्तक पिता के चरणों मे नत था। पुनः राजा ने कहा, "हे भरतनंदन, इस राजसिंहासन के तुम्ही उत्तराधिकारी थे। तुम्हारे शौर्य-पराक्रम से ही यह कुरुदेश सुरक्षित रहेगा। बलाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, मंत्रीगण तुम्हारी आज्ञा का अनुसरण करेंगे। तुम मित्रराष्ट्रों को अपना कर शत्रुओ पर विजय प्राप्त करो। धर्म-मर्यादा का पालन करते हुए भरतवंश की अभिवृद्धि करो।" देवव्रत भीष्म ने पिता के समक्ष हाथ जोड़कर कहा, "देव, मैं आज्ञापालन को प्रतिबद्ध हूं।" राजा ने पुन. कहा, "वत्स, तुमने मेरी आकांक्षा पूर्ण नही होने दी। क्या कोई पिता अपने पुत्र का स्वत्व हरण करके शाति प्राप्त करेगा? तुम सकत कामनाओं के स्वामी बन गये। तुम्हारे चरणों पर राजमुकुट लोटेंगे।" भीष्म बोले, "हे देव, आप संकल्प-विकल्प के भंवर मे न पड़ें। काल का विधान दुर्लभ है। उसे मैं भी नही जानता। मैं इस शरीर के रहते पितुराज्ञा का पालन करूंगा।"

चार

कालबली का रथ सदैव गतिशील रहता है। समय पर महारानी सत्यवती ने दो पुत्रों को जन्म दिया—चित्रांगद और विचित्रवीर्य। राजवंश की अभिवृद्धि देखकर महाराज प्रसन्न थे, परन्तु उन दोनों में राज्यभार संभालने की क्षमता नहीं थी। चित्रांगद उद्धत प्रकृति का था। अभी राजकुमार वयस्क भी नही हुए थे कि महाराज शांतनु स्वर्गगामी हो गये। भीष्म ने राजकुमार चित्रांगद को सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया, परन्तु वह सदैव नृत्यगान मे संलग्न रहने लगा। उसकी प्रवृत्ति अपने कर्तव्यपालन में नहीं थी। प्रजा भी उससे संतुष्ट नही थी। वह मृगया में अपना समय व्यतीत करता था और गंधर्वकुमारों का अपमान करता था। वह भीष्म से परामर्श भी नही करता था। एक दिन गंधर्वकुमारों ने उसे वन मे युद्ध के लिए ललकारा। वहीं द्वन्द्वयुद्ध में उसकी मृत्यु हो गई। राजा के दुर्बल होने पर शत्रु सिर उठाने लगते हैं। भीष्म इस संकट से परिचित थे। विचित्रवीर्य अभी राज्य-संचालन के योग्य नही था, परन्तु राजसिंहासन को खाली देखकर भीष्म ने विचित्रवीर्य को सिंहासन पर आसीन कर दिया। वे स्वयं राज्यकार्य की देखभाल करने लगे। भीष्म के बल-पराक्रम से सभी परिचित थे अतः कुरुप्रदेश पर कोई शत्रु आंख उठाकर देखने का साहस न कर सका।

काशिराज की कन्याओं का स्वयंवर था जिसमें भीष्म विचित्रवीर्य को लेकर

पधारे। भीष्म विचित्रवीर्य का विवाह काशिराज की कन्याओं से करके अपना कर्तव्य पूरा करना चाहते थे। काशिराज की तीन कन्याएं थी—अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका। काशिराज के सभाभवन में आर्यावर्त्त के समस्त नरेश आये हुए थे। प्रजाजन भी उस उत्सव को देखने आये हुए थे। काशिराज की तीनों राजकुमारी अपना वर स्वयं चुनने के लिए सखी-सहेलियो के साथ सभाभवन मे प्रविष्ट हुई। मंगलवादन और गान होने लगा। राजाओं मे उत्साह दिखाई देने लगा। एक ओर से उपहास-सा सुनाई दिया। कुटिल नरेश भीष्म को संकेत करके व्यंग्य-भरे स्वर मे कह रहे थे, "यही हैं शांतनुनन्दन भीष्म जिन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत का प्रण किया था? ये वीरवर तो अपने वचन के बहुत पक्के हैं। अब ये राजकुमारियों का वरण करके अपने स्वर्गीय पिता की आत्मा को प्रसन्न करेंगे। धन्य है इनका कुल और धन्य है इनका चरित्र!" राजकुमारियां भी भीष्म की ओर पैनी दृष्टि से देखने लगी। भीष्म उन वलहीन राजाओ के व्यंग्य-बाण सहन नही कर सके। उन्होंने भरी सभा मे काशिराज के समक्ष घोषणा की, "हे काशिनरेश, आप राजाओं मे श्रेष्ठ, धैर्यवान एवं धर्मनिष्ठ हैं। इन दुर्बुद्धि भूपालो ने मेरे कुल एवं पितृव्यों की घोर अवमानना की है। मेरी सत्यनिष्ठा, ब्रह्मचर्य व्रत एवं वंश-गौरव को चुनौती-भरे व्यंग्य-बाणो से बेध डाला है। हम भरतवंशी धन, वैभव, सम्पत्ति का कभी अपहरण नही करते, परनारी को मातृवत् स्वीकार करते हैं, परंतु रण-भूमि में काल की भी चुनौती का सामना करते हैं। मेरा व्रत अडिग है, मेरा वचन अन्यथा नही हो सकता। इन कुटिल, क्लीव राजाओ के समक्ष घोषणा करता हू कि मैं इन तीनों राजकुमारियों का बलपूर्वक हरण करता हूं।" काशिराज भीष्म के बल-पराक्रम को जानते थे। वे कुरु राष्ट्र के मित्र थे। वे कहने लगे, "हे महाबाहो, बलपूर्वक कन्याओं का अपहरण शौर्यवंत नरेशों का धर्मसम्मत कर्म है। मैं सहर्ष अनुमति देता हूं कि इन राजाओं को हराकर तुम राजकुमारियो को हस्तिनापुर ले जाओ।" काशिराज के इन साहसिक वचनों से राजाओं की भुजाएं फड़कने लगी। वे कहने लगे, "काशिराज ने हमें स्वयंवर मे बुलाकर घोर अपमान किया है। स्वयंवर राजभवन अपहरणस्थल कैसे बन सकता है?"

भीष्म के रथ को समस्त नरेशो ने घेर लिया। देखते-देखते वह उत्सव रण-भूमि बन गया। भीष्म ने अपने धनुष पर बड़े तीक्ष्ण बाण चढाये। राजाओ का मार्ग बाणों से अवरुद्ध हो गया। फुफकारते हुए अग्निबाणों ने उन कायर नरेशो के मन में भय उत्पन्न कर दिया। कुछ राजाओ ने भीष्म की शरण ग्रहण की, कुछ हताहत होकर गिर गये, कुछ भाग गये।

तीनो राजकुमारियो को बलपूर्वक जीतकर भीष्म ने विचित्रवीर्य सहित हस्तिनापुर मे प्रवेश किया। विजय के वाद्यगान के साथ माता सत्यवती ने भीष्म का स्वागत किया। भीष्म ने राजपुरोहित को बुलाकर कहा कि तीनो राजकन्याओ

का शास्त्रोक्त विधि से विचित्रवीर्य के साथ पाणिग्रहण संस्कार कराया जाय। उसी समय अम्बा विनीत स्वर में बोली, "देव ! हम आपकी क्रीत दासी के समान हैं, क्योंकि आपने बलपूर्वक हमारा हरण किया है। परन्तु मैं मन में सौभ नरेश शाल्वराज को वरण कर चुकी हूं।" शाल्वराज भी युद्ध मे भीष्म से हार चुके थे। भीष्म ने राजकुमारी को दयादृष्टि से देखकर कहा, "राजकुमारी, हम नारी पर अन्याय नही करते। यदि तुम शाल्वराज को वरण करना चाहती हो तो जाओ।" यह कह कर भीष्म ने अनुचरो के साथ अम्बा को शाल्वराज के पास भेज दिया।

पांच

महेन्द्र गिरि के उत्तरी भाग पर ब्रह्मर्षि परशुराम का विशाल आश्रम। उसके समीप शिष्यो की कुटी बनी हुई थी। उनके मध्य मे यज्ञशाला बनी हुई थी जिस पर भगवा ध्वज सुशोभित था। शीतल पवन वृक्षों-लताओं से अठखेलिया करता हुआ मंद-मद बह रहा था। पास ही निर्झरिणी का कलकल नाद सुनाई दे रहा था। अग्निहोत्र समाप्त हो चुका था और यज्ञभूमि से निकला पवित्र धूम आकाश मे अपना मार्ग बना रहा था।

आश्रम की ओर मत्रोच्चार करती हुई ब्राह्मण तपस्वियों की टोली चली आ रही थी। सबसे आगे राजर्षि होत्रवाहन एव एक राजकन्या थी। सबने यज्ञवेदी की परिक्रमा की। परशुराम के एक शिष्य अकृतव्रण ने उन तापसों का स्वागत करके उन्हें अर्घ्य जल प्रदान किया। तपस्वियों ने महर्षि परशुराम के दर्शन की इच्छा प्रकट की। महर्षि परशुराम नित्य कर्म से निवृत्त होकर आश्रम से बाहर आये। उन्नत ललाट पर त्रिपुण्ड, मस्तक पर श्वेत जटाएं प्रभातकालीन सूर्य की आभा मे चमक रही थी। नेत्रों से तप का तेज उद्भासित हो रहा था। विशाल बाहुएं राज-शुण्ड के समान लग रही थी। महर्षि ने तपस्वियों का स्वागत करके होत्रवाहन से भेंट की। "हे संजय, तुम तो हैहयवशी राजाओ के उच्छेद मे मेरे सहायक रहे हो। तुम्हारा आगमन सहसा कैसे हुआ ? प्रजा सुख-शांति से तो है न ?" परशुराम ने कुशल-क्षेम पूछी। "हे ब्रह्मन्देव, आपके तप-तेज-शौर्य की रश्मियों से आर्यावर्त्त प्रकाशित है। दस्युओं और अन्यायी राजाओं का आतंक कही नही है। मैंने परि-व्राजक जीवन ग्रहण कर लिया है। मेरे साथ यह मेरी दौहित्री काशिराज की कन्या अम्बा है। इसके दुख से मैं परिचालित हो उठा हूं। यह कन्या तपस्वियो के आश्रम मे दुःख सुना रही थी।"

"काशिराज तो धर्मपरायण, धैर्यवान, प्रजापालक हैं। यह ऋषि आश्रम मे क्यों आई ?"

अम्बा ने आगे बढ़कर ऋषिवर को प्रणाम किया—"हे ब्रह्म-शिरोमणि, आप दीन-वत्सल हैं। मेरा जीवन दुखमय बना दिया है। मेरे साथ घोर अन्याय हुआ है।"

"किसने तुम्हारे साथ अन्याय किया? तुम्हारे पिता कहां हैं?" ऋषि ने पूछा।

"प्रभो, मेरे पिता काशिराज ने मेरा एवं मेरी अन्य दो छोटी बहिनो का स्वयं-वर-समारोह-आयोजन किया था। उसमे आर्यावर्त्त के बहुत-से नरेश सम्मिलित हुए। उसमें भरतवंशी भीष्म अपने भाई विचित्रवीर्य के साथ आये। उन्होने अपने दर्प में हम तीनो राजकुमारियो का अपहरण कर लिया। सभी राजा लोग युद्ध में उनसे हार गये। हस्तिनापुर पहुंचने पर मैंने भीष्म से प्रार्थना की कि मैं राजा शाल्व को मानसिक संकल्प से वरण कर चुकी हूं, मुझे मुक्त कर दें। भीष्म ने मुझे शाल्वराज के यहा भेज दिया। शाल्वराज ने मुझे ग्रहण नही किया, क्योंकि भीष्म ने मेरा अपहरण किया है। हे देव, मेरे साथ भीष्म ने घोर अत्याचार किया है।" अम्बा ने अपनी कथा करुण विगलित होकर सुनाई।

"बाले! क्षत्रियों के आतंक को नष्ट करने के लिए ही मेरा अवतरण हुआ है, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। परन्तु भीष्म गंगापुत्र, वीर धनुर्धर है। मैंने उसे धनुर्विद्या सिखाई है। उसने तुम्हें शाल्वराज के यहा भेजकर कोई अपराध नही किया, बल्कि उदारता का परिचय दिया है। ऐसी स्थिति मे मैं तुम्हारा सहायक कैसे बनूं?" परशुराम ने गंभीर स्वर मे कहा।

"भीष्म ने अपने दर्प मे हमारा अपहरण करके घोर अन्याय किया है। शाल्वराज ने मुझे अपहरण करने के कारण ही स्वीकार नही किया। प्रभो, शाल्वराज ने मुझे दूषित मानकर त्याग दिया। उसने मेरे चरित्र पर दोष लगा कर दुर्वचन कहे है। इसका मूल कारण भीष्म हैं। भीष्म ने मुझे शोक-समुद्र मे डुबो दिया है।"

"हे राजबाला, भीष्म तो ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर चुके हैं। वह तुम्हे क्यों वरण करेगा?" परशुराम ने पूछा।

"देव, *भीष्म ने अपने अनुज विचित्रवीर्य के लिए हमारा हरण किया था।* वे मुझे हस्तिनापुर-नरेश विचित्रवीर्य के लिए ही स्वीकार कर लें।"

परशुराम गंभीर मुद्रा में कुछ सोचते रहे। फिर बोले, "पुत्री, तुम होत्रवाहन के समान मेरी भी दौहित्री के समान हो। गंगानन्दन भीष्म मेरी आज्ञा मानकर तुम्हें स्वीकार करेगा अन्यथा मैं उसे भस्म करने की सामर्थ्य रखता हूं।"

ऋषिवर ने अकृतव्रण को बुलाकर आज्ञा दी कि कल प्रभात वेला मे हस्तिनापुर को प्रस्थान किया जाए।

छः

परशुराम ने अपने शिष्यों, होत्रवाहन एवं अम्बा सहित कुरुराज्य की सीमा में प्रवेश करके सरस्वती के पावन तट पर विश्राम किया। भीष्म को हस्तिनापुर में अपने आगमन का संदेश भेज दिया। भीष्म ने ऋषिवर के स्वागत-वंदन हेतु एक गौ और ऋत्विज ब्राह्मणों को साथ लेकर सरस्वती तट की ओर प्रस्थान किया। परशुराम के समीप पहुंचकर भीष्म ने ऋषि का पूजन-वंदन किया। राजधानी में प्रवेश करने की प्रार्थना की। भीष्म अंजलि बांधे परशुराम के सम्मुख खड़े थे।

"भीष्म, तुम्हारी पूजा से मैं संतुष्ट हूं। यह काशिराज की पुत्री अम्बा होत्रवाहन की दौहित्री है। शाल्वराज ने इस कन्या को वरण नहीं किया क्योंकि तुमने इसका हरण किया था। अब तुम इसे पुनः ग्रहण करके इसके जीवन की रक्षा करो।" परशुराम ने सरलता से कहा।

भीष्म के नेत्र गुरु-चरणों की ओर लगे थे। उन्होंने मस्तक उठाकर ऋषि को देखा। वह कन्या वहीं ऋषि के पार्श्व में मौन खड़ी थी।

"हे जामदग्नेय, आप मेरे पूर्वकाल में गुरु रहे हैं। आपने धनुर्वेद की मुझे शिक्षा दी है। मैं आपकी प्रसन्नता के लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत हूं। मैंने इस कन्या को इसकी इच्छानुसार मुक्त कर दिया था। अब यह हमको कैसे ग्रहणीय हो सकती है?" भीष्म ने निर्भीक स्वर में कहा।

"मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने का दुःसाहस तुम कर रहे हो। मैं दीन-दुर्बलों की रक्षा करने को ही शस्त्र उठाता हूं। भीष्म, पुनर्विचार कर लो।" परशुराम के स्वर में कर्कशता आ गई थी।

"ब्रह्मर्षे, मेरा व्रत अडिग है। मैं इन्द्र और यम के भय से भी धर्म नहीं छोड़ूंगा। दूसरे के प्रति अनुराग करने वाली नारी सर्पिणी के समान भयंकर होती है। कभी-कभी स्त्रियों का दोष महान अनर्थ का कारण बन जाता है।" भीष्म दृढ़ता से ऋषि के सम्मुख बोल रहे थे।

"गुरु के वचन की अवमानना करना महान पाप है। मैं इस दीन कन्या के दुख से प्रेरित होकर तुम्हें इसको ग्रहण करने की आज्ञा देता हूं।" परशुराम ने पुनः अपनी बात पर बल दिया।

"हे महान तपोनिष्ठ राम, महात्मा मरुत्त का कथन है—यदि गुरु भी गर्वपूर्वक कर्तव्य-अकर्तव्य को न समझते हुए धर्म से विमुख होने की आज्ञा दे, तो उसका परित्याग कर देना चाहिए। मैं विनयपूर्वक क्षमाप्रार्थी हूं।" भीष्म विनम्रता से अपनी बात पर दृढ़ थे।

"हे गांगेय, तुम अभिमान के वश मेरी अवमानना कर रहे हो। तुम जानते हो मैंने अन्याय का नाश करने को इस भूतल पर जन्म लिया है। मैं तुम्हारे गर्व को

ध्वंस करूंगा। मैं तुम्हें युद्ध के लिए आहूत करता हूं।" परशुराम ने गर्जते हुए कहा।

"हे ब्रह्मन्, आप मेरे गुरु हैं, ब्राह्मण भी। क्षत्रिय की तरह रण में युद्ध करे और पीठ दिखाकर न भागे, तो ऐसी दशा में ब्राह्मण-वध करने पर ब्रह्महत्या का पाप नही लगता। आप मुझे अकारण युद्ध को ललकार रहे हैं। युद्ध से भीषण नरसंहार होता है, पशु-पक्षी भयभीत होते हैं, कला-संस्कृति का नाश होता है, पृथ्वी कुपित होकर श्रेष्ठ अन्न उपजाना बन्द कर देती है। अम्बा मेरे लिए ग्रहणीय नही है। मैं प्रातः होते ही आपके साथ युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाऊंगा।"

भीष्म ने गुरु के चरणों में सिर नवाया और सभी ऋत्विक ब्राह्मणो के साथ हस्तिनापुर लौट गये।

सात

समरागण में परशुराम अपने शिष्य ब्राह्मणों, सृंजयवंशी होत्रवाहन और कन्या के साथ गैरिक वस्त्रधारी, पीठ पर तूणीर, हाथ में धनुष, कंधे पर परशु से सुसज्जित खड़े थे। दूसरी ओर श्वेत अश्वों से जुते रथ पर श्वेत ध्वज छत्र धारी भीष्म युद्ध के लिए प्रस्तुत थे। उनके साथ कोई सैनिक नही था। यह गुरु-शिष्य का युद्ध था। उनके मस्तक पर श्वेत मुक्ताओं से मंडित धवल पगड़ी सुशोभित थी। उनका कवच भी श्वेत था। कुरुवंशियो के साथ भीष्म ने युद्ध के लिए शखनाद किया। परशुराम जी ने तीन बाण स्वीकृति के छोड़े जो रथ के ध्वज को स्पर्श करके आकाश मे विलीन हो गये। भीष्म ने अस्त्र-शस्त्रों को रथ मे रखकर रथ से उतरकर परशुराम के समीप जाकर उनके चरणो को स्पर्श करके कहा—"भगवन्, आप मेरे गुरु एवं बहुत शक्तिशाली हैं। मेरी माता गंगा ने मुझे बताया था कि आप शंकर के अश अवतार हैं। मैं आपके साथ क्षात्रधर्म को पालन करने के लिए युद्ध मे प्रस्तुत हुआ हूं। आप मुझे आशीर्वाद दें।" भीष्म ने विनयपूर्वक कहा।

"हे भरतवंशी भीष्म, अपने से विशिष्ट जनों के साथ युद्ध मे प्रवृत्त होने वाले योद्धा को धर्म को सम्मुख रखकर युद्ध करना चाहिए। तुम निरानन्द होकर मेरे साथ युद्ध मे अपने शौर्य-बल का प्रदर्शन करो। विजय तो दैव के हाथ है।" परशुराम के वचनों मे गुरुत्व की भावना झलक रही थी।

भीष्म ने रथ पर आकर अपने धनुष का संधान करके परशुराम के बाणो को काट डाला। अपने भल्ल बाणों से ऋषि के अंगों को लहूलुहान कर डाला। दिन-भर युद्ध चलता रहा। संध्या मे दिनमणि अस्ताचल को चले गये। युद्ध बन्द हो गया।

दूसरे दिन प्रभात मे युद्ध प्रारंभ हुआ। परशुराम आज अत्यंत प्रचंड लग रहे थे। उन्होंने अनेक दिव्यास्त्रों का प्रयोग करना प्रारंभ कर दिया। वे बहुत कुपित थे। उन्होंने शक्तिबाण अभिमंत्रित करके भीष्म के वक्षस्थल में मारा जिसके लगते ही भीष्म को मूर्च्छा हो गई। सारथि रथ को युद्धस्थल से हटाकर अन्यत्र ले गया। चेत होने पर भीष्म ने अपने व्रणो पर विशल्यकारिणी औषधि का प्रयोग करके अपने को स्वस्थ अनुभव किया। परशुराम के शिष्यगण भीष्म को पुनः युद्धभूमि मे आया देखकर परशुराम की जय-जयकार करने लगे।

यह युद्ध परशुराम और भीष्म के बीच एकाकी युद्ध था। युद्धभूमि पर भी आर्य अपने धर्म से विमुख नहीं होते थे। गुरु अपने शिष्य की दक्षता की परीक्षा लेने ही आये हों और शिष्य अपने युद्धकौशल को गुरु के सामने रख रहा था। परशुराम ने अनेक दिव्य बाणों से भीष्म को घायल-अचेत किया और भीष्म ने भी अपने निशित बाणो से राम को मूछित किया। युद्ध करते हुए इसी प्रकार बाईस दिन व्यतीत हो गये थे, परन्तु कोई योद्धा अपनी पराजय स्वीकार नही कर रहा था। परशुराम को यह युद्ध अपनी प्रतिष्ठा का विषय बन गया था। वे बहुत क्रुद्ध हो गये। उन्होने तीक्ष्ण बाणो से सारथि को मूछित कर दिया। तब उन्होंने अत्यंत तीव्र प्रज्वलित सूर्य के समान शक्ति को भीष्म की दोनों भुजाओं के मध्य छोड़ दिया। उस शक्ति ने भीष्म को रथ के नीचे गिरा दिया। परशुराम ने घोर सिंहनाद किया जिसे सुनकर परशुराम के शिष्यगण, अम्बा आदि हर्षध्वनि करने लगे। तभी दिव्य प्रकाश से रणभूमि प्रभामय हो गई। अष्टवसुओं ने भीष्म को उठाकर रथ पर लिटाया, उनको अभय वरदान देकर बताया कि परशुराम दिव्य मानव हैं। शस्त्रवेत्ताओ मे उन्हें कोई परास्त नही कर सकता। हम तुम्हारी रक्षा करेंगे।

पक्षियो ने कलरव ध्वनि करके भगवान भास्कर को विदा किया। रात्रि ने संसार को थपकी देकर अपनी गोद मे सुला लिया। भीष्म अपनी शय्या पर लेटे विचार कर रहे थे—क्या भृगुनंदन अजेय हैं? क्या मैंने युद्ध की चुनौती स्वीकार कर धर्म का हनन किया है? रणभूमि से विरत होना कायरता है। मैं अंतिम श्वास तक युद्ध करूंगा। रात्रि के पिछले पहर मे अष्ट वसुओं ने भीष्म को स्वप्न में कहा—"भीष्म, तुम निर्भय युद्ध करो। परशुराम युद्ध मे अजेय हैं। तुम्हे प्रातः-काल प्रस्वापनास्त्र प्राप्त होगा, जिसके लगने पर परशुराम भूमि पर सो जायेंगे। यदि तुम उन्हें जगाने को सम्बोधनास्त्र छोड़ोगे तभी वे जागेंगे।" भीष्म की आंख खुल गई।

आठ

युद्ध का चौबीसवां दिन था। कुरुवंशियों के शिविरों पर धवल पताकाएं फहरा रही थी। मुनिगण भी इस युद्ध में दर्शक बनकर आये थे। दोनो पक्ष धर्म की दुहाई देते थे। सभी युद्ध का विराम चाहते थे, परन्तु गुरु-शिष्य दोनो मे से कोई युद्ध से विरत होने को तैयार नही था। आर्यावर्त्त के दोनो उदीयमान नक्षत्र थे।

परशुराम भी आज अपना महान पराक्रम प्रकट करने पर तुले थे। उन्होंने उल्कामुखी बाणों का प्रयोग करके आकाश मे अग्नि-शिखाएं प्रकट कर दी। भीष्म ने वरुणास्त्र से समस्त उल्काएं समाप्त कर दी। उनके सभी अस्त्रो को विदीर्ण कर दिया। अब परशुराम और भी कुपित हो गए। उन्होने ब्रह्मास्त्र निकाल लिया। इसके प्रयोग और निवारण की विधि भीष्म ने परशुराम से सीखी थी। ब्रह्मास्त्र को चलाकर परशुराम को विश्वास था कि भीष्म अवश्य धराशायी हो जायेगा। भीष्म ने अपने अभिमंत्रित बाणो से उसका निवारण कर दिया। अब भीष्म ने अष्ट वसुओं द्वारा प्रदत्त प्रस्वापनास्त्र धनुष पर चढ़ा लिया। तभी सहसा उनकी माता गंगा हा-हा करते वहां प्रकट हो गई—"पुत्र भीष्म, परशुराम तुम्हारे गुरु हैं, युगपुरुष हैं। परशुराम निद्रामग्न हो गये तो यह युग ही प्रसुप्त अवस्था में हो जायेगा। धर्म का लोप हो जायेगा। पुत्र, तुम युद्ध से विरत हो जाओ।" गगा परशुराम के पास जाकर विनय करने लगी, "विप्रर्षे! आप बाणवर्षा बन्द करें। इस युद्ध से देवगण भी भयभीत हो उठे है।"

"देवी, मैंने आज तक शत्रु के सम्मुख शस्त्र नही रखे। यह संभव नही है। भीष्म ने मेरे वचनों का तिरस्कार किया है।" राम ने गंगा को उत्तर दिया।

वहा देवलोक से नारद भी युद्धभूमि में आ गये। उन्होने परशुराम से कहा, "हे भृगुनन्दन, तुमने भीष्म को अन्य क्षत्रियो की तरह मान लिया है, यह तुम्हारा भ्रम है। भीष्म अष्ट वसुओ में से एक है। तुम अब युद्ध से निवृत्त हो जाओ। देखो भीष्म ने भी धनुष से बाण उतार लिया है। अब तुम शस्त्र त्याग कर महेन्द्र गिरि पर तप करके लोक का अनुरंजन करो।"

नारद ने भीष्म को भी शात करते हुए कहा। वही परशुराम के पिता जमदग्नि और ऋचीक भी आ पहुंचे। भीष्म ने गुरु का मान बढ़ाने के लिए शस्त्र रख दिए और गुरु एवं समस्त ब्राह्मणों के चरण स्पर्श किए। परशुराम ने भीष्म को आशीर्वचन देते हुए कहा—"वत्स, तुमने क्षत्रियवंश का नाम उज्ज्वल कर दिया है। आज तुम ही विजयी हुए हो। मैं आज से शस्त्र न छूने की शपथ लेता हूं।"

समस्त मुनिगण सहित परशुराम महेन्द्र गिरि को चले गये।

नौ

राज्याधिकार मणिगणों से भरा महार्णव है। बहुत-से उसकी चकाचौंध की उत्ताल तरंगों में बह जाते हैं; कुछ स्वार्थ के आवर्त में डूब जाते हैं; बहुत-से विद्वेष, कूट-नीति, गृहकलह, कायरता के दलदल में फंसकर अपना अस्तित्व खो बैठते हैं और अनेक नृत्यागनाओं के विलास-सम्मोहन की भंवर में फंसकर कामबाणों का लक्ष्य बन जाते हैं। इस राजपयोनिधि को वीर शिरोमणि ही अपने शौर्य-बल और धर्म-बुद्धि से पार कर पाते हैं।

राजा विचित्रवीर्य स्वभाव से भीरु और विलासी प्रकृति का था। अम्बिका, अम्बालिका से विवाह होने के उपरांत वह रात-दिन रंगमहल के विलास में फंसा रहता था। वह राज्यकार्य से भी विमुख हो रहा था। भीष्म भी उससे संतुष्ट नहीं थे। विचित्रवीर्य के भोग-विलास ने उन्हें रुग्ण बना दिया। उन्हें राजयक्ष्मा के भयंकर रोग ने घेर लिया। वह शनैः-शनैः क्षीण होते गये और असमय में ही मृत्यु के ग्रास बने। राष्ट्र पर संकट के बादल छा गये। विचित्रवीर्य निःसंतान मरे थे। राज्य का उत्तराधिकार किसे दिया जाए? राजमाता सत्यवती अत्यंत चिंतित थी। उन्होंने भीष्म को बुलाकर कहा—"वत्स, महाराज ने दिवंगत होते समय इस महान राज्य के गौरव और मर्यादा की बागडोर तुम्हें सौंपी थी। आज तुम्हारे दोनों भाई असमय में कालकवलित हो गये हैं। इस दैवी विधान को कोई नहीं मेट सका। इस कुरुवंश की वंश-परम्परा नष्ट होती दिखाई देती है। काशिराज की दोनों पुत्रियां रूप-यौवन से सम्पन्न, संतानोत्पत्ति को लालायित हैं।" भीष्म माता की बातों को गंभीरता से सुन रहे थे। "पुत्र, तुम समर्थ हो। तुम नियोग विधि से राजपुत्रियों से संतानोत्पत्ति करके इस राजकुल की रक्षा करो।"

भीष्म ने माता सत्यवती के वचन धैर्यपूर्वक सुने। उन्होंने हाथ जोड़कर विनय-पूर्वक कहा—"माता, समुद्र अपनी मर्यादा को त्याग दे, चन्द्रदेव अग्नि की वर्षा करने लगे, आकाश उल्कापात करके कालान्तक बन जाए, पृथ्वी क्षमागुण को छोड़ दे, ध्रुव नक्षत्र अपने पद से डोल जायें, परन्तु मेरा ब्रह्मचर्य व्रत अटल है। मैं इस जीवन में कभी स्त्री का सहवास नहीं करूंगा। माता, मैं अभिमान के वश में यह वचन नहीं कह रहा हूं, यह मेरी क्षात्रधर्म की प्रतिज्ञा है। देवि, मुझे क्षमा करें।"

सत्यवती भीष्म के मुख को विस्फारित नेत्रों से देख रही थीं। वह बोली—"पुत्र, मैं तुम्हारे सत्य पराक्रम को जानती हूं। तुम्हारे शौर्य के यश से यह राज्य सुदृढ़ है। फिर मेरा आग्रह है कि आपद्धर्म को विचार कर इस कुल की रक्षा करने का उपाय करो।"

'राजमाता, सत्य-धर्म से भरतवंशी कभी विचलित नहीं होते। भरतवंशियों

का सुयश लोक-परलोक में छाया हुआ है । मैं स्वधर्म से विचलित नही हो सकता । नियोग द्वारा सतानोत्पत्ति शास्त्रोक्त कर्म है । आप भरतवंश की रक्षा हेतु किसी श्रेष्ठ सदाशय ब्राह्मण को बुलाकर पूजा करके उसे नियोग विधि से संतानोत्पत्ति के लिए तैयार कीजिए ।"

सत्यवती को अपने कौमार्य जीवन का स्मरण हो आया । ऋषि पराशर के वरदान से उसने एक पुत्र को जन्म दिया था । वह अत्यंत तेजस्वी, तपोनिष्ठ और शांत स्वभाव का है । कृष्ण द्वैपायन । वह बाल्यकाल मे ही तपस्या करने चला गया था । उन्होने कृष्ण द्वैपायन को भीष्म के द्वारा बुला लिया ।

कृष्ण द्वैयापन वेद व्यास ने माता सत्यवती के चरणो की वदना की । व्यास जी ने माता से बुलाने का कारण पूछा । सत्यवती ने कहा, "पुत्र, तुम निर्विकार एवं बंधनमुक्त हो । सृष्टि के मंगलकार्य में तुम परमार्थभाव से चिन्तन मे रत हो । आज इस कुल पर वंशनाश का घोर संकट आ गया है । तुम पूर्ण समर्थ हो । तुम अपने भाई की पत्नियों से सतानोत्पत्ति कर भरतवंश की रक्षा करो ।"

वेद व्यास बोले, "माता, अनासक्त भाव से किए हुए कर्म का गुण-दोप जीव को बंधन मे नही बाध सकता । मैं आपकी इच्छानुसार इस वंश की रक्षा के लिए मित्र और वरुण के समान तेजस्वी संतान उत्पन्न करूंगा ।"

देवी सत्यवती ने अपनी पुत्रवधू अम्बिका और अम्बालिका को नियोग द्वारा गर्भाधान वरण करने को तैयार कर लिया । कुरुवंश की गौरव-रक्षा के लिए अम्बिका शय्या पर बैठी थी । रात्रि के मध्य भाग मे नियोग विधि के अनुसार कृष्ण द्वैपायन विशाल, तेजस्वी, श्याम वर्ण, घृतलेपन से युक्त ने अम्बिका के कक्ष में प्रवेश किया तो वह भयभीत होकर नेत्र बन्द करके लेट गई । व्यास जी ने नियोग कर्म के उपरांत माता को प्रणाम करके सूचना दी कि रानी के जो पुत्र होगा वह अधा होगा । माता ने चिंतित भाव से कहा—"पुत्र, कुरुवंश का राजा अंधा हो यह अनुचित है । तुम दूसरी रानी से एक पुत्र उत्पन्न करने का नियोग कर्म करो ।

देवी सत्यवती ने दूसरी रानी अम्बालिका को भी नियोग से संतानोत्पत्ति के लिए राजी कर लिया । कृष्ण द्वैपायन का तेजस्वी मुखमंडल देखकर अम्बालिका पिंगलवर्ण की हो गई । लज्जा के कारण उसका मुख पाण्डुवर्ण का हो गया । जब वेद व्यास महल से निकले तो उन्होंने माता को बताया कि इससे जो पुत्र उत्पन्न होगा वह यशस्वी, तेजवान परन्तु पाण्डुवर्ण का होगा । माता को इतने पर भी सतोष नही हुआ । उन्होंने व्यास जी से पुन: एक पुत्र और उत्पन्न करने की प्रार्थना की । ऋतुकाल उपस्थित होने पर माता ने पुन: वेद व्यास का आह्वान किया । अम्बिका ऋषि के उग्र तेज से भयभीत थी । अत: उसने अपने स्थान पर अपनी दासी को सुसज्जित करके भेज दिया । महर्षि व्यास का उसने अभिनन्दन किया । ऋषि उसके व्यवहार से सन्तुष्ट हुए । उसे वरदान दिया कि तेरे गर्भ से एक धर्म-

निष्ठ, लोकविश्रुत बुद्धिमान पुत्र उत्पन्न होगा। यह बात ऋषि ने माता को भी बता दी कि अम्बिका ने छल मे एक दासी को नियोग के लिए भेजा था।

अम्बिका ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया, परन्तु वह जन्मान्ध था। इसका नाम धृतराष्ट्र रखा गया। कुछ समय उपरांत अम्बालिका ने भी एक पुत्ररत्न को जन्म दिया जिसका रंग पाण्डुवर्ण का था। इसका नाम पाण्डु ही रखा गया। शूद्रा दासी ने भी कुछ काल बीत जाने पर एक पुत्र को जन्म दिया। इसका नाम विदुर रखा गया। तीनों पुत्रों को प्राप्त कर माता सत्यवती हर्षित थी। कुरुकुल, कुरुजांगल एव कुरुक्षेत्र की अभिवृद्धि के लिए नवीन स्रोत मिल गया। कुरु राज्य में अन्न, धन, धान्य की वृद्धि हुई। कृषक अपनी खेती से अन्न-धन भरने लगे; वणिक वाणिज्य से राज्य को धन-सम्पन्न करने लगे; ब्राह्मण संतोष एवं सदाचरण से राज्य को मंगलमय बनाने लगे। भीष्म के सरक्षण मे तीनों राजकुमार चन्द्रकला की भांति बढ रहे थे। प्रजाजनों में वैर-विरोध नही था। चोर, डाकू अपकर्मी पलायन कर गये थे। विद्वान, धर्मपरायण, कलाविद् प्रजाजनो को राज्य से आश्रय मिलता था। राष्ट्रद्रोही, किल्विषी, अभिमानी लोगों को दंडित करने को सम्यक् दण्ड-विधान था। वास्तव मे कुरुराज्य के रक्षक भीष्म ही थे। महाराज शांतनु के स्वर्गगामी होने पर राज्य का संचालन भीष्म ने किया था। कुरुकुल के राजकुमार धृतराष्ट्र, पाण्डु एव विदुर का उन्होने पुत्रवत् पालन किया था। तीनों राजकुमारो को ऋषि-कुल मे विद्याध्ययन को भेजा एवं राजकुल की मर्यादा के अनुसार उपनयन यज्ञो-पवीत संस्कार कराये। स्वय भीष्म ने भी उन्हे धनुर्विद्या मे निपुण बनाया था। धृतराष्ट्र और पाण्डु गुरुकुल मे धर्मनीति की शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। विदुर के समान धर्मपरायण और नीति-कुशल कोई नही था।

भीष्म ने राजकुमारो को समर्थ देखकर उनके विवाह संस्कार की मंत्रणा की। धृतराष्ट्र नेत्रहीन थे, अतः वे कुछ सकोच में पड़ गए। उनके दृढ़ निश्चय को कोई टाल नही सकता था। उन्होंने सोच-विचार कर अपने मित्रराष्ट्र गांधार नरेश सुबल के पास धृतराष्ट्र के विवाह का प्रस्ताव भेजा। सुबल के मन में उथल-पुथल मच गई, क्योकि धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे। भीष्म के बाहुबल, ऐश्वर्य एवं कुरु-राष्ट्र के यश से भी परिचित थे। उन्होने भरतवंश के यश को ध्यान मे रखकर विवाह का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उन्होंने पुत्री गाधारी का विवाह धृतराष्ट्र के साथ कर दिया और गाधारी की दस सहोदरा[1] बहिनें भी धृतराष्ट्र को ब्याह दीं। गांधारी ने अपने पतिव्रत धर्म को मन मे धारण कर अपने नेत्रों पर रेशमी वस्त्र बाध लिया। उन्होंने पतिपरायण होने का व्रत धारण कर लिया।

---

1. सत्यव्रता, सत्यसेना, सुदेष्णा, सुसंहिता, सुश्रवा, शुभा, शम्भुवा, दशार्णा, तेज-श्रवा, निकृति

यदुवंशी राजा शूरसेन बहुत श्रेष्ठ नरेश थे उन्होंने अपने फुफेरे भाई कुंति-भोज को यह वचन दिया था कि अपनी प्रथम संतान को उन्हें भेंट करेंगे। उनकी प्रथम संतान हुई पुत्री। इसका नाम उन्होंने पृथा रखा। पृथा को शूरसेन ने कुंतिभोज को प्रदान कर दिया। पृथा अत्यन्त सुन्दरी एवं कुशल थी। राजा कुंतिभोज ने यह उचित समझा कि राजकुमारी अपने वर को स्वयं चुने। अतः राजा ने स्वयंवर के लिए अपने समीपवर्ती सभी नरेशों को निमन्त्रण भेजा। राजकुमार पांडु भी हस्तिनापुर से आए थे। राजकुमारी ने पाण्डु के उद्दीप्त भाल, पृथुल वक्ष, वृषभ स्कंध एवं भरतवंश के गौरव को देखकर उन्हें जयमाला पहना दी। वहीं शास्त्रोक्त विधि से राजकुमारी पृथा का विवाह पाण्डु के साथ सम्पन्न हुआ। हस्तिनापुर आने पर पृथा का नाम महारानी कुंती रखा गया। भीष्म इससे हर्षित थे।

भीष्म ने राजमाता सत्यवती की सम्मति से पाण्डु को राजसिंहासन पर पदासीन कराया। भीष्म कुरु राज्य को मित्र, सेना, कोष, आदि से सम्पन्न करना चाहते थे। हस्तिनापुर के समीपवर्ती राज्यों में मद्रदेश था। मद्रराजा शल्य की बहिन माद्री थी। भीष्म ने स्वयं मद्रराजा के यहां जाने की योजना बनाई। उन्होंने राजा शल्य को अपने आगमन की सूचना भेज दी। भीष्म का आगमन सुनकर राजा शल्य ने नगर को तोरण द्वारों से सजाया। राजमार्गों को सिंचित किया गया। राजप्रासाद एवं मन्दिरों पर दोनों देशों की ध्वज फहराई गईं। भीष्म के आगमन पर उनका उचित स्वागत समारोह किया गया। राजा शल्य ने भीष्म का बहुत आतिथ्य किया। उन्होंने भीष्म से उनके आगमन का कारण पूछा। भीष्म अत्यन्त धर्मपरायण एवं नीतिज्ञ थे। उन्होंने कहा, "राजन, दो देशों का मिलन कल्याणप्रद एवं जनहितकारी होता है। मद्रराज कुरुदेश का मित्र है। उसी मैत्री को सुदृढ़ करने को मैं तुम्हारे समक्ष प्रस्ताव लाया हू कि तुम्हारी भगिनी माद्री का विवाह राजा पाण्डु के साथ हो जाय। इससे दोनों देशों की प्रजा को भी हर्ष होगा। भीष्म से यह विवाह-प्रस्ताव पाकर मद्रराज हर्षित हुए। माद्री का विवाह भी पाण्डु से सम्पन्न कर दिया गया।

दस

महाराज पाण्डु ने अपने शौर्य, बुद्धिबल, कुशल राजनीति से भरतवंश की कीर्ति को बढाया था। वे दादा भीष्म की सलाह के बिना कोई कार्य नहीं करते थे। धृतराष्ट्र और पाण्डु में परस्पर अपार प्रेम था। महाराजा पाण्डु को मृगया का बहुत शौक था। एक दिन मृगया खेलते-खेलते वे वन में पहुंच गए जहा हिरन

का एक जोड़ा चौकड़ी खेलता भरता जा रहा था। राजा ने मृग को संधान कर बाण छोड़ दिया। वह बाण मृग के न लगकर किंदम मुनि की पत्नी के लगा। मुनि-पत्नी ने करुण चीत्कर कर प्राण छोड़ दिया। राजा मुनि के सम्मुख नतमस्तक खड़े थे। मुनि ने क्रोधवश राजा को शाप दे डाला—"राजा, तुम्हारी मृत्यु भी स्त्री-समागम के समय होगी।" राजा ने मुनि से क्षमा मांगी। मुनि ने कहा, "राजन तुम्हारे आखेट के लिए अनेक वन हैं। यह शांति वन है जहां मुनि, साधक, सन्त अपनी साधना मे लगे रहते हैं। यहा खग-मृग निर्भय विचरते हैं। मेरा शाप मिथ्या नही होगा।" महाराज पाण्डु शाप का भार मन पर लादे राजधानी लौट आये। महारानी कुंती को मुनि के शाप की घटना बता दी। कुंती महाराज की मनोव्यथा जानती थी। उसने राजा को सांत्वना दी—"महाराज, मुझे बाल्यकाल में देवी वर प्राप्त हुआ है। मैं देव-आह्वान करके पुत्र प्राप्त कर सकूंगी। इसी से आपके कुल का वर्धन होगा।" कुंती ने महाराज पाण्डु की प्रदक्षिणा की और प्रणाम किया। उसने धर्मराज का हृदय मे आह्वान किया। देखते ही-देखते समस्त वातावरण प्रभासमय जान पड़ा। साक्षात् धर्म योगमूर्ति के रूप में वहां प्रकट हुए। उन्होंने कुंती को एक धर्ममय पुत्र होने का वरदान दिया। समयानुकूल कुंती ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। इसका नाम युधिष्ठिर रखा गया। कुंती ने इसी प्रकार कुरुवंश के वर्धन के लिए वायुदेव एवं इन्द्रदेव का आह्वान करके एक-एक बलवान एवं पराक्रमी पुत्र प्राप्त किए। वायु देवता बल-पराक्रम के आगार हैं अतः उनसे प्राप्त पुत्र का नाम भीम रखा गया। इन्द्रदेव प्राप्त से पुत्र अत्यन्त सुंदर तेजवान था। उसका नाम अर्जुन रखा गया। माद्री के मन मे भी पुत्र-प्राप्ति की कामना थी, परन्तु संकोचवश वह महारानी कुंती से अपने मन की व्यथा नही कह सकी। पाण्डु ने माद्री के मन का भाव पहचान लिया। उन्होने कुंती देवी से कहा, "कल्याणि! माद्री को भी पुत्र प्राप्ति की प्रबल इच्छा है। उसे भी पुत्र प्राप्ति का उपाय करो।" कुंती ने प्रसन्नचित्त होकर माद्री से कहा, "माद्री, तुम शांतचित्त होकर अश्विनी कुमार का स्मरण करो। मैं तुम्हारे लिए उनका आह्वान करूंगी।" कुंती के आह्वान से अश्विनी कुमार वहा प्रकट हो गये। उनकी कृपा से माद्री को दो पुत्ररत्न प्राप्त हुए। इनका नाम नकुल और सहदेव रखा गया।

धृतराष्ट्र की दस रानियों ने सौ[1] पुत्रों को जन्म दिया। गांधारी का बड़ा पुत्र

---

1. सौ पुत्रों के नाम—
दुर्योधन, युयुत्सु, दुश्शासन, दुस्सह, दुश्शल, जलसंध, सम, सह, विन्द, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण, विविंशति, विकर्ण, शल, सत्व, सुलोचन, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, दुर्मद, दुर्विगह, विवित्सु, विकटानन, ऊर्णनाभ, सुनाम, नन्द, उपनन्द, चित्रवाण, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्विरोचन,→

सुन्दर और बलवान था। उसका नाम सुयोधन रखा गया। भीमसेन के जन्म के दिन ही सुयोधन का जन्म हुआ था। उसने जन्म लेते ही गर्धव स्वर में भयप्रद आवाज की। माता गांधारी ने इस बालक को वंश के लिए अशुभ माना। धृतराष्ट्र का एक वैश्य कन्या से भी विवाह हुआ था जिससे दुःशाला नाम की पुत्री उत्पन्न हुई।

महाराज पाण्डु धर्मभीरु, सदाचारपरायण एवं धैर्यवान थे। मुनि किंदम के घोर शाप से सजग वे सदा स्त्री-संसर्ग से विमुख रहते थे। काम का पाश संसार में सबको बांध लेता है। कामबाणों से आबिद्ध होकर मुनि साधक भी अपनी साधना से डिग जाते हैं, फिर भोगैश्वर्य मे पड़े मनुष्यों की कौन गिनती? मधुमास का सधि-काल था। पुष्पित लताएं वृक्षों की शाखाओं से लिपटी हुई आलिंगन-सुख मे लीन हो रही थी। रसलोभी भ्रमर पुष्प-पुष्प से गंध-रस पान कर गुंजार कर रहे थे। लाल-लाल टेसू के फूल हृदय में कामाग्नि दहका रहे थे। वृक्ष कोमल किसलयों से लदे हुए थे मानो वन-उपवन मधुमास का हृदय से स्वागत कर रहा हो। राजा पाण्डु अपनी छोटी रानी माद्री के साथ शतशृंग गिरि पर आनन्द वन मे विचरण कर रहे थे। कामोद्दीपक प्रकृति के रमणीय वातावरण ने राजा का मन कामबाणों से बेध डाला। राजा को मुनि का शाप विदित था परन्तु काम की मोहनी माया के वश मे होकर उन्होंने उसे भुला दिया। राजा की बुद्धि पंगु बन गई। राजा अपनी रानी के साथ कामक्रीड़ा को आतुर हो गये। माद्री कहती रहीं, "महाराज...मुनि का शाप...धैर्य धारण करें...।" रानी के बार-बार अनुनय करने पर भी राजा कामांध होकर रतिकर्म में तल्लीन हो गया। राजा की उसी स्थल पर मृत्यु हो गई। माद्री करुण विलाप करने लगी। कुंती ने माद्री को बहुत धैर्य बंधाया परन्तु उसका दुख सीमा तोड़ चुका था। माद्री ने कहा, "हे सुधर्मे, आप मेरी सपत्नी के रूप मे माता हो। आपके आशीर्वचन से मुझे दो पुत्र प्राप्त हुए है। महाराज मेरी आसक्ति मे लीन होकर स्वर्ग सिधारे हैं। अब मेरा ससार से कोई प्रयोजन नही रहा। अपने दोनों पुत्रों को आपके हाथों सौंपते हुए मैं निश्चिन्त हूं। मैं उसी लोक को जा रही

→ अयोबाहु, महाबाहु चित्रांग, चित्रकुण्डल, भीमवेग, भीमबल, वलाकी, बलवर्धन, उग्रायुध, सुषेण, कुण्डोदर, महोदर, चित्रायुध, निषंगी, पाशी, वृन्दारक, दृढ़-वर्मा, दृढ़क्षत्र, सोमकीर्ति, अनूदर, दृढ़सन्ध, जरासन्ध, सत्यसन्ध, सद्सुवाक, उग्रश्रवा, उग्रसेन, सेनानी, दुष्पराजय, अपराजित, पण्डितक, विशालाक्ष, दुराधर, दृढहस्त, सुहस्त, वातवेग, सुवर्चा, आदित्यकेतु, बह्वाशी, नागदत्त, अग्रयायी, कवची, क्रथनदण्डी, दण्डधार, धनुर्ग्रह, उग्र, भीमरथ, वीरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा, दृढ़रथाश्रय, अनाधृष्य, कुण्डभेदी, विरावी, प्रमथ, प्रमाथी, दीर्घरोमा, दीर्घबाहु, व्यूढोरु, कनकध्वज, कुण्डाशी तथा विरजा।

हूं जहां महाराज ने गमन किया है।" तत्पश्चात माद्री पाण्डु का शव अपनी गोद में रखकर चिता में प्रविष्ट हो गई।

ग्यारह

शांतनुनंदन भीष्म को पाण्डु के निधन से गहरा आघात लगा था। अब राजतंत्र कुचक्र के भंवर में पड़ जायेगा। सुबल-पुत्र शकुनि पाण्डु के राज्याधिकार के प्रति ईर्ष्यालु था। वह पहले से ही धृतराष्ट्र के कान भरा करता था। अब भीष्म के पास धृतराष्ट्र को सिंहासनारूढ़ करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं था।

भीष्म ने राज्य का भार धृतराष्ट्र को सौंप दिया। वे स्वयं राजकार्य की देखभाल करते थे। धृतराष्ट्र का बड़ा पुत्र सुयोधन पाण्डुपुत्रों से ईर्ष्या रखता था। भीमसेन बड़े बलशाली थे। वे कौरवपुत्रों को वृक्ष पर चढ़े देख वृक्ष को झकझोर देते जिससे वे सब भूमि पर गिर पड़ते थे। जल में डुबकी लगा देते थे। एक दिन सुयोधन खेल के बहाने भीमसेन एवं अन्य पाण्डुपुत्रों को जलविहार के लिए गंगा-तट पर ले गया। उसका उद्देश्य किसी प्रकार भीमसेन को मारना था। वहां उसने भीमसेन के भोजन में विष मिला दिया। भीमसेन संज्ञाशून्य होते जा रहे थे। दुर्योधन ने उन्हें गंगा की तीव्र धार में ढकेल दिया। भीम की दशा मुरझाये कमल के समान हो रही थी। जल की शीतलता से विष का प्रभाव घटने लगा। वे दूर गंगातट पर जाकर ठहर गये। उन्हें अपने भाइयों और माता कुंती का स्मरण हो रहा था। वे शीघ्रता से हस्तिनापुर आये और दुर्योधन की कुटिलता को विस्तार से कह सुनाया। माता बड़ी चिंतित हुईं।

भीष्म ने भी यह घटना जान ली थी। वह सुयोधन को अब दुर्योधन कहकर सम्बोधित करने लगे। भीष्म ने सभी राजकुमारों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए गौतम गोत्रिय कृपाचार्य के गुरुकुल में भेजा। एक दिन कौरव-पाण्डव गेंद से खेल रहे थे। उनकी गेंद कुएं में जा गिरी। सभी बालक कुएं से गेंद निकालने का प्रयत्न करने लगे। तभी उन्हें एक श्वेत वस्त्रधारी ब्राह्मण अपनी ओर आता दिखाई दिया। वह उन बालकों की उत्सुकता देखकर मुस्कराता हुआ बोला, "तुम सब राजकुमार जब अपनी गेंद की रक्षा नहीं कर सकते, तब बड़े होकर इतने बड़े हस्तिनापुर राज्य की रक्षा कैसे कर सकोगे?"

सभी राजकुमार किंकर्तव्यविमूढ़ मौन रहे।

"अच्छा तो मैं तुम्हारी गेंद निकाल देता हूं।" यह कहकर उस विप्र ने अपने धनुष पर सींक का बाण अभिमंत्रित करके संधान किया। तुरन्त ही उस सींक के बाण ने गेंद को बेध लिया और वह गेंद सींक के बाण सहित विप्र के हाथ में आ

गई। राजकुमारों मे हर्ष की लहर छा गई। कुछ बालक कहने लगे, "क्या आप कोई जादू-टोना जानते है ?"

"नही यह बाणविद्या का बल है। लाओ मैं तुम्हारी अंगूठी कुएं में डालकर बाण से निकालता हूं।" विप्र ने एक राजकुमार की अंगूठी लेकर कुएं में फेंक दी। फिर एक सीक का बाण अभिमंत्रित करके कुएं मे चलाया। देखते ही देखते वह अंगूठी तीर सहित ब्राह्मण के हाथ मे आ गई। समस्त राजकुमार विप्र को घेरकर खड़े हो गये। अर्जुन का मन श्रद्धा से भर गया। सभी राजकुमार विप्र को लेकर पितामह भीष्म के पास आये। सबने प्रणाम करके कहा, "दादाजी, ये ब्राह्मण महाराज बाणविद्या में अत्यन्त निपुण हैं। इन्हें बाणविद्या सिखाने के लिए हमारा गुरु बनाइए।"

इसके बाद अर्जुन ने कुएं पर घटी सारी घटना सविस्तार सुनाई। भीष्म ने ब्राह्मण का स्वागत किया। उनका नाम और निवास पूछा। ब्राह्मण बोले, "हे गंगानन्दन भीष्म, मेरा नाम द्रोण है। मेरे पिता भारद्वाज थे जो गंगाद्वार पर निवास करते थे।"

"मैंने भारद्वाज की यशगाथा सुनी है। वे कर्मनिष्ठ और तपःपूत थे।" भीष्म बोले।

"मेरे पिता पाञ्चाल देश के नरेश पृषत के मित्र थे। राजा पृषत का एक पुत्र है द्रुपद। द्रुपद ने हमारे आश्रम में आकर विद्याध्ययन किया और हम साथ-साथ खेले हैं। समय पाकर राजा पृषत स्वर्गवासी हो गये। उनके स्थान पर द्रुपद ही उत्तर पाञ्चाल का राजा बना। कुछ समय पश्चात् मेरे पितृव्य भारद्वाज भी स्वर्गवासी हो गये। मैं पिता की छत्रछाया से वंचित हो गया। अन्न-धनहीन मुझे अपने साथ खेले द्रुपद की याद आई। मै वहा उसके आश्रय की लालसा लेकर उसकी राजसभा मे जा पहुचा। हे राजन्, उसने मेरा घोर अपमान किया और कहा, एक दरिद्र और राजा की कैसी मित्रता ! मैं प्रतिशोध की ज्वाला मे जल उठा और जमदग्निनन्दन परशुराम के आश्रम मे महेन्द्र गिरि पहुचा। वे उस समय अपने शौर्यकर्म से विरत होकर अस्त्रशस्त्र और विद्या का दान करना चाहते थे। उचित पात्र पाकर उन्होंने मुझे धनुर्विद्या प्रदान की और दिव्यास्त्र भी प्रदान किए है।"

ब्राह्मण की करुणगाथा से भीष्म अभिभूत हो गये। उन्हें भगवान् परशुराम के साथ चौबीस दिन के समर का भी स्मरण हो गया। वह बोले, "हे ब्राह्मण, तुम्हारी करुण कथा से मैं परिचालित हो गया हूं। तुम्हें यहां राज्याश्रय प्राप्त होगा। तुम्हें सभी राजकुमारों को बाणविद्या एवं अस्त्रविद्या सिखानी होगी।"

द्रोण राज्याश्रय एव सम्मान प्राप्त कर बहुत प्रसन्न हुए। भीष्म ने धृतराष्ट्र एवं पाण्डुपुत्रो को शिष्य रूप मे द्रोण को सौंप दिया। आचार्य द्रोण राज्य की व्यायामशाला मे राजकुमारों को अस्त्रविद्या सिखाने लगे। एक दिन गुरु द्रोण ने सभी राजकुमारो के समक्ष कहा, "मेरे मन में एक शूल छिपा है। क्या तुममे से

कोई उसे निकाल सकता है ?" सभी उत्सुक होकर गुरुजी की ओर देखने लगे। द्रोण फिर बोले, "राजकुमारो, पाञ्चाल नरेश द्रुपद ने भरी सभा में मेरा अपमान किया है। बाल्यकाल मे वह मेरे पिता के आश्रम पर मेरे साथ विद्याध्ययन करता था और मेरे साथ खेला करता था। जब मेरे पिता दिवंगत हो गये तो मेरे मन में द्रुपद के यहा राज्याश्रय प्राप्त करने की कामना हुई। मैंने उसकी सभा में उसे बचपन की मित्रता का स्मरण कराया। द्रुपद धन और ऐश्वर्य के मद मे बोला, 'ब्राह्मण पुत्र, तुम मूर्ख हो। एक दरिद्र ब्राह्मण का राजा से मित्रता की बात करना ही उपहास का विषय है। दरिद्र मनुष्य धनवान का, मूर्ख विद्वान का, कायर शूरवीर का मित्र नही हो सकता। विवाह और मैत्री समान स्तर के लोगों मे ही संभव है।' बोलो राजकुमारो, तुममे कोई है जो मेरे अपमान का बदला ले सके ?"

सभी राजकुमार मौन हो गये। यह बात अर्जुन के मर्मस्थल को बेध गई। उन्होने गुरु को प्रणाम करके कहा, "गुरुजी, मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं द्रुपद से आपके अपमान का बदला लूंगा।" गुरु द्रोण ने अर्जुन का मस्तक चूम लिया। सुयोधन अर्जुन की ओर घूरकर देखता रहा।

अर्जुन द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य थे। एक दिन द्रोण ने राजकुमारो की परीक्षा लेने के लिए कारीगर से धातु की एक श्वेत चिड़िया बनवाकर वृक्ष के शिखर पर बैठा दी। द्रोण ने सर्वप्रथम धनुष-बाण देकर युधिष्ठिर को बुलाकर पूछा, "वत्स, तुम्हें अपने लक्ष्य से अन्य कौन-सी वस्तुएं दिखाई देती हैं ?" युधिष्ठिर बोले, "मुझे वृक्ष, आप, मेरे भाई भी लक्ष्य के अतिरिक्त दिखाई दे रहे है।" द्रोण ने कहा, "धर्मपुत्र, तुम लक्ष्य नही बेध सकते।" उनके हाथ से धनुष-बाण ले लिया। फिर उन्होने बारी-बारी से धृतराष्ट्र-पुत्रो से यही प्रश्न किया। सबने कहा कि हमे अन्य सभी वस्तुएं भी दिखाई दे रही हैं। द्रोण ने किसी को भी लक्ष्य बेधने की आज्ञा नही दी। तब अर्जुन की बारी आई। द्रोण ने कहा, "हे कुंतीपुत्र, तुम अपने लक्ष्य के साथ अन्य कौन-सी वस्तुएं देखते हो ?" अर्जुन ने उत्तर दिया, "हे आर्य, मैं केवल वृक्ष पर अपने लक्ष्य को ही देख रहा हू। मुझे अन्य कोई वस्तु दिखाई नही देती।" द्रोण ने फिर पूछा, "वत्स, यह बताओ कि इस पक्षी के अंग कैसे हैं ?" अर्जुन बोला, "मुझे पक्षी का सिर ही दिखाई दे रहा है।" द्रोण ने कहा, "शाबास, चलाओ बाण।" यह सुनकर अर्जुन ने एक क्षण मे बाण चलाकर पक्षी का मस्तक धड़ से अलग कर दिया। द्रोण को अब विश्वास हो गया कि अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर द्रुपद से अपमान का बदला लेगा।

एक दिन द्रोण शिष्यो सहित गंगास्नान को गये। उनमें अर्जुन भी था। डुबकी लगाते ही एक ग्राह ने द्रोण के पैर की पिंडली पकड़ ली। द्रोण चिल्लाये, "मुझे ग्राह से बचाओ।" सब किंकर्तव्यविमूढ़-से खड़े थे। अर्जुन ने धनुष पर पांच बाण चढ़ाकर ग्राह को लक्ष्य करके जल मे मारे। देखते-देखते ग्राह के अगो के टुकड़े

जल पर ऊपर तैरने लगे। गुरु द्रोण अर्जुन के बाण-लाघव से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होने का वर प्रदान किया। उन्होंने उसे ब्रह्मशिर नामक अस्त्र भी प्रदान किया।

बारह

आचार्य द्रोण कुछ समय बाद अर्जुन सहित आकर भीष्म से बोले, "हे शांतनु-नन्दन, राजकुमारों ने अस्त्रविद्या सीख ली है। आपका पौत्र अर्जुन समस्त धनुर्विद्या में पारंगत हो गया है। इसने ग्राह से मेरे जीवन की रक्षा की है। अब आप एक ऐसा आयोजन करने की आज्ञा प्रदान करें जिसमें महाराज धृतराष्ट्र, सभासद एवं नगर के संभ्रांत जनों के सामने राजकुमार अपने युद्ध-कौशल को प्रदर्शित कर सकें।"

भीष्म ने अर्जुन को हृदय से लगाया और मस्तक चूमते हुए कहा, "वत्स, संसार में गुरुसेवा से बढ़कर अन्य कोई वस्तु नहीं है। गुरु की चरणरज धारण करने से असीम शक्ति की प्राप्ति होती है, दिव्य चक्षु खुल जाते हैं, हृदय की अंध कोशिकाओं में प्रकाश भर जाता है, तेज, बल, ऐश्वर्य का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। गुरु संसार-सागर में नौका बनकर पार लगाता है। तुमने गुरुकृपा प्राप्त कर ली है। तुम विश्वविजयी बनोगे।"

राजकुमारों के युद्ध-कौशल का प्रदर्शन करने के लिए एक सुन्दर प्रेक्षागृह तैयार कराया गया। उत्सव के दिन राजमहल की समस्त रानियां, पितामह भीष्म, विदुर, संभ्रांत नागरिक एवं महाराज धृतराष्ट्र स्वयं उपस्थित थे। कृपाचार्य और गुरु द्रोण ने राजकुमारों सहित प्रेक्षागृह में प्रवेश किया। सभी राजकुमार धनुष धारण किए हुए थे। कमर पर बाणों से भरा तूणीर और ढाल-तलवार। गुरु द्रोण ने जनसमूह के समक्ष एक-एक करके राजकुमारों को युद्ध-कौशल प्रदर्शित करने के लिए बुलाना प्रारंभ किया। वे राजकुमारों को नाम लेकर बुला रहे थे। बाणों की सनसनाहट से बहुत-से लोग विस्मित हो जाते थे। कुछ 'वाह-वाह' की ध्वनि करके हर्ष प्रकट कर रहे थे। बारी-बारी से राजकुमार अपना युद्ध-कौशल दिखा रहे थे। कोई तलवार के वार दिखाकर चकाचौंध कर रहे थे, कोई गदा, परशु का संचालन करके मोहित कर देते थे। किसी ने धनुष-बाण का कौशल दिखाया तो किसी ने भाले की कला। अश्व, गज, रथ पर बैठकर राजकुमारों ने युद्ध करने की निपुणता दिखाई। दर्शक हर्ष और आश्चर्य में भरकर उनके कला-कौशल को सराह रहे थे। कुछ समय पश्चात् रंगभूमि में दुर्योधन और भीम गदा-युद्ध दिखाने को प्रस्तुत हुए। वे दोनों वीर अपनी-अपनी गदाओं को घुमाते हुए दो छोटे कुञ्जरों के समान लग रहे थे। कुंती गांधारी को सब दृश्य बता रही थी।

महात्मा विदुर महाराज धृतराष्ट्र को सभी राजकुमारों का युद्ध-कौशल बता रहे थे। दोनो राजकुमारो के गदायुद्ध-प्रदर्शन से लोगों मे असीम उत्साह हिलोरें लेने लगा। कभी दुर्योधन के लिए 'वाह' 'वाह' की ध्वनि होती तो कभी भीमसेन को लोग शाबासी देने लगते। वातावरण हर्षोल्लास से गूज रहा था। जनसमूह मानो दो पक्षो मे वट गया था। दुर्योधन ने भीम के मस्तक पर गदा का वार चलाया तभी भीम ने पैंतरे से अपने को बचाकर दुर्योधन को गदा से रोद डाला। वह प्रेक्षागृह के दक्षिण कोने मे जाकर गिरा। सब ओर कोलाहल गूंज उठा। द्रोण ने खड़े होकर दोनो को रोका। अश्वत्थामा बीचबचाव को आ गया। बीचबचाव कर देने पर भी दुर्योधन लाल नेत्र किए भीमसेन को घूर रहा था।

द्रोणाचार्य ने लोगो की उत्सुकता तीव्र करने के लिए अर्जुन को मंच पर बुलाया। वे बोले, "अब आप कुंतीपुत्र अर्जुन का युद्ध-कौशल देखिए।" अर्जुन हाथो में गोह के दस्ताने पहने, पीठ पर तूणीर कसे, हाथ मे धनुप लिए मंच पर उपस्थित हुआ। लोग अपने मचो पर संभलकर बैठ गये। कोई उनके दिव्य ललाट को देख रहा था तो किसी की दृष्टि उनके धनुप-बाण पर टिकी थी। तभी गुरु द्रोण ने आज्ञा दी। अर्जुन ने सर्वप्रथम आग्नेयास्त्र छोड़ा। उससे अग्नि प्रज्वलित हो गई। तुरत ही वारुणास्त्र चलाकर अग्नि को बुझा दिया। जनसमूह के जयनाद से सभा-मण्डप गूज उठा। फिर कुन्तीपुत्र अर्जुन ने वायव्यास्त्र छोड़कर तीव्र आधी चला दी और पर्जन्यास्त्र छोड़कर आकाश मे बादल एकत्र कर दिए। जनसमूह तालियो की गड़गड़ाहट से जयनाद कर रहा था। अर्जुन ने भौमास्त्र छोड़कर धरती को विदीर्ण कर दिया और एक निशित बाण चलाकर उसे पाट दिया। अर्जुन ने अन्तर्धानास्त्र चलाकर स्वय को अदृश्य कर दिया और दूसरे ही क्षण रथ के धुरे पर सबके सामने अपने को प्रकट कर दिया। तीव्रगति से भूमि पर उतरकर वे लौह निर्मित सूअर के मुख की ओर लक्ष्य संधान करने लगे। उन्होने सूअर के मुख मे लगातार पाच बाण मारे जिससे सूअर का मुख बाणो से भर गया। सामने वृक्ष पर गाय का एक सीग लटक रहा था। अर्जुन ने उस सीग को लक्ष्य करके इक्कीस बाण मार कर उसे छलनी कर दिया। वीर अर्जुन की धनुविद्या, खंग, गदा के कौशल से जनसमूह बहुत प्रभावित जान पड़ा।

विशाल जनसमूह को अभिवादन करके अर्जुन ने मंच से उतरकर गुरु द्रोण एवं पितामह भीष्म के चरणो मे सिर नवाया। उसी समय मण्डप के द्वार की ओर से गदा के आघात का घोर शब्द सुनाई दिया। सबके कान उस ध्वनि की ओर लग गये। दूसरे क्षण उस प्रेक्षागृह मे दिव्य कवचधारी, धनुप-बाण एवं खंग से सज्जित एक युवक उपस्थित हुआ। "महामने गुरुजन, मुझे इस युद्ध-कौशल मे सम्मिलित होने की आज्ञा दें। मेरा नाम कर्ण है।" रंग-मंडप के सब लोग कर्ण की ओर देखने लगे। वह युवक अर्जुन को चुनौती देकर बोला, "अर्जुन, गर्व मत करो, मैं

तुम्हारे आग्नेयास्त्र, पर्जन्यास्त्र आदि सभी को खण्डित कर सकता हूं। मैं व्योममण्डल के नक्षत्रों को भेद सकता हूं। मैं तुमसे धनुर्युद्ध, खंगयुद्ध, गदायुद्ध कर सकता हू।" अर्जुन ने दृष्टि घुमाकर कर्ण की ओर देखा परन्तु कोई उत्तर नही दिया। दुर्योधन हर्ष मे भरकर कर्ण के समीप पहुंचा और उसे हृदय से लगा लिया। अर्जुन भी इस चुनौती को स्वीकार करने के लिए गुरु के समीप गया। वह आज्ञा की प्रतीक्षा मे था। वही पास मे खड़े शरद्वान के पुत्र कृपाचार्य ने कहा, "कर्ण, ये कुंतीपुत्र अर्जुन हैं। ये तुमसे द्वद्वयुद्ध करने को प्रस्तुत हैं। तुम अपने माता-पिता और कुल का परिचय दो।"

"आचार्य, बल-पराक्रम वीर का परिचय स्वयं दे देगा। पृथ्वी वीर की माता है और आकाश पिता। मेरा धनुप स्वय वीरता का परिचय देगा।" कर्ण ने उत्तर दिया।

"हे कर्ण, तुम अपने माता-पिता का परिचय दो। गर्वोक्तियो से वीर-कर्म क्षीण होता है। अर्जुन राजकुमार हैं। महाराज पाण्डु इनके पिता और कुंती माता। हीन कुल, आचार, धर्म के युवक के साथ अर्जुन युद्ध नही करेंगे।" उसी समय दुर्योधन अपने स्थान से उठकर आचार्य के समीप पहुचे। "आचार्य, नीति के अनुसार राजा की तीन कोटियां हैं—उत्तम कुल, शूरवीर अथवा सेनानायक। कर्ण के पिता अधिरथ सैन्य संचालन करने वाले नायक हैं। यपि अर्जुन राजकुमार होने के दंभ मे कर्ण से द्वद्वयुद्ध करने में असमर्थ हैं तो मैं कर्ण को इसी क्षण अंश देश का राजा बनाता हूं।" दुर्योधन ने उसी समय कर्ण को एक मंच पर बैठाकर अक्षत-कुकुम से उसके मस्तक पर तिलक लगाया। दुर्योधन को कर्ण जैसा बलशाली मित्र मिल गया। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विदुर दुर्योधन की कूटनीति से क्षुब्ध हो गये। दुर्योधन ने कुरुवंश मे विप के बीज का वपन किया।

तेरह

महाराज धृतराष्ट्र धैर्यवान, धर्मज्ञ एवं कूटनीति से परिचित थे। समय-समय पर सुबलपुत्र शकुनि उन्हें पाण्डुपुत्रो से सतर्क रहने की सलाह देता था, क्योकि वह दुर्योधन को ही युवराज-पद पर आसीन करना चाहता था। धृतराष्ट्र पाडवो के शौर्य, कार्यकुशलता एवं जनप्रियता से परिचित थे। अतः उन्होंने युधिष्ठिर को राज्यकार्यों में प्रमुखता दे रखी थी। पाण्डवों के सदाचरण से प्रजा में उनकी ख्याति बढ़ रही थी। पड़ोसी राज्य भी उनके बल-पराक्रम को जानते थे। राज्य में कृपक अधिकाधिक अन्न पैदा करके अन्न-भंडार में वृद्धि कर रहे थे। कर्मकार अपने कला-कौशल से यश और धन अर्जित कर रहे थे। वणिक अपने वाणिज्य को

सच्चाई और ईमानदारी से संचालित कर अधिक सम्पन्न हो रहे थे। दुराचारी, कृतघ्न और कुटिल राज्य से भाग कर अन्य राज्यों में शरण लेने लगे थे। वेद-वेदांग की चर्चा करने वाले वेदज्ञ ब्राह्मण, संत जन, राजसभा में सम्मान पाते थे। प्रजा सुख-चैन से रहने लगी थी। लेकिन दुर्योधन के मन मे पाण्डवो की कीर्ति शूल बनकर चुभने लगी थी। वह प्रेक्षागृह के दृश्य को भूल नही पाया था जब भीमसेन ने उसे भरी सभा मे एक कोने में खदेड़ दिया था। कायरता छल-प्रपंच से हिंसा पर उतारू हो जाती है। षड्यन्त्र, कुचक्र, दंभ, पाखंड उसके सहायक बन जाते हैं। दुर्योधन के मन मे ईर्ष्याग्नि सुलगने लगी। प्रेम, सहिष्णुता, सत्य उसके हृदय में जलकर भस्म हो गये। कायरता अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए हिंसा से मित्रता करती है। दुर्योधन पाडवो के विनाश की योजना बनाने लगा। युधिष्ठिर धर्मनीति से प्रजा का मन वश मे रखते थे। अर्जुन ने गजपतियों, अश्वपतियों को अपने शौर्य से वश में कर रखा था। नकुल-सहदेव अपने सद्व्यवहार से प्रजा मे कीर्ति अर्जित कर रहे थे। भीम दुष्टों का सहार करके यश कमा रहे थे। दुर्योधन को यह अहसास होने लगा कि पाण्डवों के रहते उसे युवराज-पद प्राप्त नही होगा। युधिष्ठिर सभी राजकुमारो मे अग्रज भी थे। महाराज धृतराष्ट्र भी पाडण्वों की प्रजा मे यश-कीर्ति से अपरिचित नही थे। दुर्योधन एक दिन धृतराष्ट्र के कक्ष मे पहुंच कर विनयपूर्वक बोला, "पिताश्री, जब से आपने राज्यकार्य में पाडवो का सहयोग लेना शुरू किया है तब से उनका प्रभाव बढ़ता ही रहा है। वे राज्यकोष को लुटाकर प्रजा को अपने पक्ष मे कर रहे हैं। साधारण प्रजाजनों पर बहुत-से कर समाप्त कर दिए गये हैं। ऐसा न हो कि पाण्डव प्रजाजनों को और गुरुजनों को अपने पक्ष में करके आपसे सत्ता ही छीन ले। प्रजाजनों मे यह बात विशेष रूप से प्रचलित है कि महाराज धृतराष्ट्र नेत्रहीन होने के कारण राज्य-संचालन करने में असमर्थ हैं। पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर समर्थ और धर्मनिष्ठ हैं। महाराज पाण्डु के ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण युधिष्ठिर को ही राज्य का उत्तराधिकार मिलना चाहिए।"

धृतराष्ट्र के मन मे भी संशय का अंकुर प्रस्फुटित हो रहा था। दुर्योधन की बातों से उसे जल मिल गया। वह संदिग्ध भाव से पूछने लगे, "पुत्र, तुमने प्रजाजनों में इस प्रकार की चर्चा स्वय सुनी है क्या? अगर ऐसा है तब तो भविष्य के लिए यह बहुत ही अशुभ संकेत है। क्या पाण्डवो को प्रजा में इस प्रकार का प्रचार करते तुमने देखा है?"

"हां पिताश्री, पाण्डव अपने कृत्यो से प्रजा मे लोकप्रियता प्राप्त कर रहे हैं। वे निर्धन ब्राह्मणों को धन बांटते हैं। यज्ञ करवाते हैं। यूथपों को पुरस्कृत करते हैं। अपनी शूरवीरता और यश का बखान करवाते हैं। यही कारण है कि प्रजा मे उनके प्रति स्नेह और श्रद्धा दिनोदिन बढ रही है।"

"पाण्डवो की कर्तव्यपरायणता से प्रजा में सुख-समृद्धि बढ़ रही है, यह तो

प्रसन्नता की बात है सुयोधन ! तुम्हारी आशंका निर्मूल लगती है ।" धृतराष्ट्र ने दुर्योधन के मन की गहराई को टटोलने का प्रयास किया ।

"पिताश्री, नगर में स्थान-स्थान पर मैंने पाण्डवों की प्रशसा सुनी है । नगरजन कहते सुने गये हैं कि हमारे भावी राजा तो युवराज युधिष्ठिर ही हैं । पिताश्री, पाण्डवों को हस्तिनापुर से अन्यत्र भेज दीजिये । इसी में आपका और आपके पुत्र का कल्याण निहित है ।"

"वत्स ! मैं तुम्हारी बात से सहमत हूं । परन्तु मंत्रिपरिषद और प्रजाजनो ने हमारे उद्देश्य को भांप लिया तो स्थिति कितनी भयकर हो सकती है, इसका अनुमान शायद तुम्हें नही है ।"

"पिताश्री, मैंने एक योजना बनाई है, अगर आप उसमें सहयोग दें तो हमारा कल्याण हो सकता है । आप पांचो भाइयों को वसतोत्सव देखने के वहाने वारणावत जाने का आदेश दे दें । उनसे छुटकारा पाने के लिए आगे सारी योजना मैं स्वयं क्रियान्वित कर लूगा ।" दुर्योधन बड़े ही रहस्यमय ढंग से बोला ।

"पुत्र ! इस प्रस्ताव को मन्त्रिपरिषद में भीष्म, द्रोण, विदुर, कृपाचार्य से समर्थन कैसे मिल सकेगा ? ये सभी गुरुजन पांडवो के कार्यों के प्रशसक हैं ।" धृतराष्ट्र ने पूछा ।

"पिताश्री, दादा भीष्म तो हमको और पाण्डवों को समान रूप से मानते हैं । आचार्य द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा मेरा मित्र है इसलिए वह भी हमारे पक्षधर हो जायेंगे । विदुर जी पाडवों को स्नेह करते हैं, परन्तु वे हमारे आर्थिक दास हैं । पिताश्री, आप पांडवों को वारणावत जाने की आज्ञा प्रदान करें । पाण्डवों के रहते आपकी सन्तान राज्य से सदा को वंचित हो जायेगी ।"

दुर्योधन के कथन से धृतराष्ट्र का शकालु मन हिल गया । उनका मन आशंकाओं से भर गया पाण्डुपुत्र मुझे और मेरे पुत्रो को राज्य से वचित करने के षड्यंत्र में लगे हुए हैं । धृतराष्ट्र उस रात सुखपूर्वक सो नही सके । आशंकाएं रज्जु में सर्प का भ्रम पैदा कर देती हैं । उनका विश्वास डोल गया । दुर्योधन की कुटिलता ने धृतराष्ट्र के मन में उद्वेलन मचा दिया ।

दुर्योधन का एक विश्वासपात्र शिल्पी था पुरोचन । उसने पुरोचन को आज्ञा दी कि वह वारणावत जाकर शीघ्र एक ऐसे सुन्दर भवन का निर्माण कराये जिसके चारो ओर कमरे हों । उसकी दीवारें राल, सन और चर्बी से मिलाकर वनाई जाएं जो शीघ्र ही अग्नि पकड़ सकें । भवन मे सुन्दर चित्रकारी की जाए और उसे अगरु से सुगंधित कराया जाए । उसे वही निवास करने की आज्ञा दी गई ।

वारणावत मे एक मेले का आयोजन किया जा रहा है जिसमें पांचो पाण्डव-पुत्र माता कुन्ती के साथ जायेंगे । उनके लिए वहां सुन्दर शय्या, सवारी एवं वाहन का प्रवध किया जाए । इस विषय में वारणावत निवासियो को कुछ भी न बताया

जाए। पाण्डवो के वहा रहने की समुचित व्यवस्था की जाए। पाण्डव वहां आश्वस्त होकर रहने लगे तब अर्धरात्रि मे तेल छिड़ककर आग लगा दी जाए। यह गोपनीय कार्य है। पुरोचन को बहुत-सा द्रव्य देकर वारणावत भेज दिया गया।

धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को समीप बुलाकर मृदुवाणी मे कहा, "पुत्र, वारणावत नगर मे बहुत सुन्दर वसन्तोत्सव होता है। इस वर्ष तुम अपने भाइयों सहित राज्य की ओर से उसका आयोजन कराना।" युधिष्ठिर ने पास बैठे हुए दुर्योधन की ओर देखा फिर धृतराष्ट्र की ओर देखकर नेत्र नीचे कर लिए। उन्हे दुर्योधन की किसी नई चाल का आभास हो गया। वे राजसभा मे उठकर भीष्म पितामह के पास गये। भीष्म को भी इस बात से दुर्योधन की किसी कुटिल नीति का आभास होने लगा। भीष्म बोले, "वत्स, धृतराष्ट्र तुम्हे दुर्योधन के मोहजाल मे फंसकर वारणावत भेज रहे हैं। तुम धर्म के यान पर आसीन होकर राजा की आज्ञा का पालन करो। तुम्हारा पथ कण्टकमय है। यतो धर्मस्ततो जयः।"

हस्तिनापुर मे यह बात आग की तरह फैल गई कि महाराज पाण्डवों को वारणावत भेज रहे हैं। पाडवो के रथ पर सवार होते ही नगरवासियो का समूह उन्हे विदा देने उमड़ पड़ा। कुछ कहने लगे, "राजा नेत्रहीन तो हैं ही, अब उनकी समझ-बूझ भी विदा हो रही है।" कुछ दूसरे लोग कहने लगे, "पाण्डवो को दूर भेजकर अब दुर्योधन राज्य करेगा। हम दुर्योधन का आतंक सहन नही करेंगे। हम भी पाण्डवो के साथ जायेंगे।" युधिष्ठिर ने उन्हे धैर्य देते हुए कहा, "प्रजाजनो, यह उचित नही है। दुर्योधन और हम एक ही वंश की सतान है। वंश-गौरव की रक्षा करना हमारा धर्म है। मेरे अनुज सुयोधन तुम्हे सुख-शाति देते रहेंगे। हम सबके रक्षक दादा भीष्म हैं। तुम्हें कोई भय नही होना चाहिए।" युधिष्ठिर ने दुखी लोगों को धर्मनीति, राजनीति एव सदाचार की बातें बताकर विदा किया। कुछ दूर चल कर सरोवर के समीप युधिष्ठिर ने अपने चाचा विदुर को प्रणाम करके आज्ञा मांगी। विदुर के नेत्र छलछला रहे थे। उन्होने कहा, "पुत्र, लोहे का अस्त्र जीवन को नष्ट कर देता है। विश्वासघाती के मृदुल वचनों से सावधान रहना चाहिए। वत्स, दावाग्नि से वन में घास-फूस जल जाते हैं। चूहे अपने बिल में सुरक्षित रहते हैं। भावी आपदाओं से तुम सतर्क रहना। विस्फोट शस्त्रागार मे रहने पर भी चूहा बिल मे सुरक्षित रहता है। वह अपना मार्ग पृथ्वी के गर्भ को फोड़कर बना लेता है। इन्द्रियो को अपने वश में रखने वाले का शत्रु भी कुछ नही बिगाड़ सकते।"

युधिष्ठिर ने कहा, "तात, आपकी आज्ञा का सदैव हम पालन करेंगे।"

विदुर जी मगल कामना करते हुए लौट गये। कुन्ती ने कहा, "पुत्र, विदुर ने अस्पष्ट भाषा मे किसी भावी संकट का संकेत दिया है?"

"हा माता, उन्होने दुर्योधन की कूटनीति का संकेत दिया है। हमारे लिए वारणावत भेजना भावी संकट की सूचना है। उन्होंने मुझे नीतिमय उपदेश देकर

वारणावत में हमें अग्नि का भय बताया है।"

चौदह

प्रभातकालीन शीतल समीर मंथर गति से चल रही थी। वृक्षों पर नवीन किसलय उल्लास प्रकट कर रहे थे। आममंजरी पर भ्रमर मडरा रहे थे। टेसू का वृक्ष लाल-लाल फूलो से ऐसा लदा खड़ा था मानो प्रकृति-वधू ने अनुराग मे उसे डुबो दिया हो। आम्र, नीम, कदम्ब के वृक्ष शृंगार किए हुए खड़े जान पड़ते थे। मयूर आसपास उडान भरकर कूकते दिखाई दे रहे थे। हरिण झुण्डो मे चौकड़ी भरते निकल जाते थे। चिड़ियो का कलरव वातावरण को मृदुल बना रहा था। वारणावत के पौरजनों ने पाण्डुपुत्रों का पुष्पवर्षा करके स्वागत किया। झुण्ड के झुण्ड नर-नारी पाण्डुपुत्रो का दर्शन करके हर्षित हो रहे थे। पुरोचन ने पाण्डवों का स्वागत करके उन्हें नये भवन मे पहुंचा दिया। विचित्र चित्रकारी से भवन की दीवारें सुसज्जित थी। अट्टालिकाओं पर धवल ध्वज लहरा रहे थे।

माता कुती के साथ पाण्डव उस नवीन भवन मे पहुंच गये। युधिष्ठिर मन मे विदुर की सांकेतिक भाषा को स्मरण कर बहुत सतर्क थे। उन्होने भीम, अर्जुन आदि को भी सचेत कर दिया था। वह दुर्योधन की कुटिल नीति को जानते थे जिसने महाराज धृतराष्ट्र को उनके विरुद्ध करके प्रवासी बनाया है। उन्होंने अपने मन की बात को प्रकट नही होने दिया। वे नगर के सभी मार्गों से परिचित हो गये थे। विदुर जी ने पाडवों को सदेश देने के लिए एक भृत्य को गुप्त रूप से भेजा था। उसने युधिष्ठिर को एकांत में ले जाकर पुरोचन द्वारा निर्मित भवन का पूरा भेद दे दिया। युधिष्ठिर ने उसी सेवक से उस भवन से एक सुरंग बाहर जाने के लिए बनवाने की व्यवस्था कराई।

पाण्डव दिन में मृगया खेलने जाते और रात्रि मे बारी-बारी से पहरेदारी करते थे। वे पुरोचन को उसके षड्यन्त्र को पूरा होने देने का अवसर ही न देते थे। पाण्डवों को वारणावत में रहते हुए एक वर्ष का समय हो गया। माता कुंती ने पूर्णिमा के शुभ दिन अग्निहोत्र का मगलमय आयोजन किया जिसमे ब्राह्मणों एवं दीन-दुर्बलो को भोजन कराया। भोज के समय एक भीलनी अपने पाच पुत्रो के साथ भोजन करके रात्रि को उसी भवन मे ठहर गई। यह बात भीमसेन को ज्ञात नही थी। भीमसेन आप पहरे पर थे। वे दुष्ट पुरोचन की दुष्टनीति से उसी को अग्निदाह करने को कृत संकल्प थे। रात्रि का घोर अन्धकार छा गया। तभी तेज आधी आ गई। पुरोचन निद्रामग्न था। तभी भीमसेन ने माता कुंती और अपने भाइयों को जगाकर उन्हे सुरंग के बाहर जाने को कह दिया। वह भी इसी मार्ग से

बाहर निकल आयेंगे। भीमसेन ने वहां अग्नि लगा दी। वे तुरंत सुरंग के मार्ग से बाहर निकल गये। वायु की प्रचंडता से अग्नि ने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। सारा भवन अग्नि की चपेट में धू-धू करके जलने लगा। अग्निकाण्ड के भयानक शब्द से नगरवासी भी जाग गये। लपटें प्रचण्ड हो गयी थीं। पानी डालने से भी काबू में नहीं आईं। नगरवासी कह रहे थे, "यह पापी पुरोचन का ही कुकृत्य है।" दूसरा कहने लगा, "यह तो गुप्तचर था।" तीसरा बोला, "महाराज धृतराष्ट्र दुर्योधन के षड्यन्त्र में सहभागी हैं।" वे सब पाण्डुपुत्रों और माता कुंती की रक्षा करना चाहते थे, परन्तु वे अपने प्रयत्न में सफल नहीं हो सके। प्रातः सबने देखा कि पुरोचन एवं एक महिला और पांच अन्य शव जले पड़े हैं। नागरिकों को विश्वास हो गया कि पांचों पाण्डव माता कुंती सहित इस अग्निकाण्ड में जलकर मर गये।

वारणावत में लाक्षागृह के जलने और पुरोचन सहित पांचों पाण्डव एवं माता कुंती के जल जाने का समाचार अग्नि की लपटों के समान हस्तिनापुर में फैल गया। दुर्योधन मन में बहुत हर्षित था। धृतराष्ट्र ने ऊपर से दुख प्रकट करते हुए तेरह दिन का राज्य-शोक करने की घोषणा की। भीष्म जी चिंतित हो उठे। विदुर गंभीर होकर मौन थे।

प्रजा में बड़ी व्याकुलता थी। कोई कह रहा था, "राजा धृतराष्ट्र भाग्यहीन हैं। उनके पाप का फल प्रजा को भी भोगना पड़ेगा।" दूसरा कह रहा था, "दुर्योधन ने पाण्डुपुत्रों को इसीलिए वारणावत भेजा था कि वे लाक्षागृह में जलकर मर जाएं।"

सबने समवेत स्वर में कहा—

"महाराज धृतराष्ट्र के पास चलो। हम उनसे यह पूछेंगे कि यह किसका षड्यन्त्र है।" भीड़ ने राजभवन के नीचे कोलाहल करना शुरू कर दिया। धृतराष्ट्र अपने कक्ष से बाहर नहीं आये। विदुर जी ने भीष्म से विनयपूर्वक कहा "पितामह, यह पापकर्म दुर्योधन के द्वारा कराया गया है। पाण्डुपुत्रों के जल जाने का समाचार बहुत अशुभ है। आप गुप्तचरों द्वारा इस रहस्य को मालूम करें।" भीष्म जी भी दुख से कातर हो उठे थे। वे प्रजाजनों के सम्मुख आकर उन्हें धैर्य बंधाते हुए बोले, "हे प्रजाजनो आपके हार्दिक दुख को मैं जानता हूं। पाण्डव धर्मनिष्ठ, शौर्यवान और जनप्रिय थे। उनके मरण का समाचार बहुत भयंकर है। परन्तु अभी इस घटना की राज्य शासन के द्वारा जांच कराई जायेगी। मुझे विश्वास नहीं होता कि पाण्डव जलकर मरे हैं। आप सब अपने घरों को जाएं।"

पन्द्रह

सुरंग से निकलकर पाण्डव और माता कुंती नगर से बाहर होकर वन में पहुंच

गये। उनको दुर्योधन के षड्यन्त्र का पता चल गया था। वे उसे अभी भ्रम में ही रखना चाहते थे। अन्याय व आतंक के हाथ जब शक्ति का केन्द्रीकरण हो जाता है तो सत्यांकन को भूमिगत-प्रच्छन्न होना पड़ता है। मेघाच्छन्न सूर्य समय पर प्रकाश देकर संसार को प्रभामय बना देता है। मार्ग मे कुंती चलते-चलते थक गई थी। उसे प्यास लग रही थी। भीमसेन सबको वृक्ष के नीचे बिठाकर जल की खोज मे निकले। वे सोच रहे थे, बहुत अच्छा हुआ लाक्षागृह जल गया। पुरोचन हमे कभी भी भयंकर संकट में डाल सकता था। माता के कष्ट को देखकर दुर्योधन की कुटिलता पर उन्हें क्षोभ हो रहा था।

पाण्डुपुत्रों को माता कुंती सहित वन में आश्रय खोजते कई दिन व्यतीत हो गये थे। वे वन मे कन्द, फल, मूल का आहार करते, घोर हिंसक जन्तुओं से रक्षा करते किसी नगर को चले जा रहे थे। उसी वन मे हिडिम्ब नाम का राक्षस रहता था। भीमसेन का उससे द्वंद्वयुद्ध हुआ और अंत मे भीमसेन ने उसे अपने मुष्टिप्रहारों से परलोक भेज दिया। हिडिम्बा उस राक्षस की बहिन थी। वह भीमसेन के शौर्यबल पर मुग्ध हो गई। कुती के सामने उसने भीमसेन से विवाह का प्रस्ताव रखा। वह भीमसेन पर अपना जीवन निछावर करने को तुली हुई थी। अंत में माता कुंती ने हिडिम्बा को भीमसेन से विवाह की आज्ञा प्रदान कर दी। कुछ काल तक इन्होने वन मे विहार किया। इसी हिडिम्बा से घटोत्कच नामक बलशाली पुत्र उत्पन्न हुआ। पाण्डुपुत्र कुछ समय मे एकचक्रा नगरी के निकट पहुंचे।

एकचक्रा नगरी मे प्रवेश करते ही उन्होने ब्राह्मण-वेश धारण कर लिया था। उन्होने एक वेदविद् ब्राह्मण के यहां शरण प्राप्त की। वे नगर के आसपास अस्त्र-कौशल दिखाकर पर्याप्त भोजन-सामग्री प्राप्त कर लेते थे। युधिष्ठिर माता कुंती और सब भाइयों को भोजन कराके बाद मे भोजन करते। वे कहा करते थे, मैं भाइयो के साथ नरक की यातना भी खुशी से झेल सकता हूं। भाइयों से विलग रहकर मुझे स्वर्ग का राज्य भी नही चाहिए। माता कंती की दशा देखकर उनके नेत्र छलछला आते थे। कौन जानता था राजराजेश्वरी को भी वन की यातनाएं झेलनी पड़ेंगी। दैव बहुत बलवान है।

एक दिन माता कुंती के पास भीमसेन थे, अन्य सभी भाई नगर-भ्रमण को गये थे। तभी ब्राह्मण परिवार से रोदन का करुण स्वर सुनाई दिया। ब्राह्मणी रो-रोकर कह रही थी, "हे प्राणनाथ, आप तो इस नाव के खेवा हैं। मैं स्वयं उस राक्षस का आहार बनने जाऊगी।" ब्राह्मण अपनी पत्नी को ढाढस बंधा रहा था, "प्रिये, दैव की गति बड़ी विचित्र है। मेरा-तुम्हारा जीवन मे इतना ही साथ था। जीवन-रूपी समुद्र में बिना शक्ति-सहारे के डूबना ही पड़ता है। मैं तुम्हें इन शिशुओं का भार सौंपकर जाऊंगा। मैंने तुमसे पहले यह नगर छोड़ने को कहा था;

परन्तु अब तो काल सम्मुख है, अब हम कहीं जा भी नही सकते।" पत्नी बोली—"प्राणनाथ, आप अधीर न हों। मुझे अब जीवन तुच्छ है। मैं स्वयं उस पापी राक्षस की भूख बुझाने जाऊंगी, परन्तु आपको मृत्यु-मुख मे नही जाने दूगी।"

माता-पिता की बातें सुनकर अबोध शिशु गर्व से बोला—"पिताजी, मैं उस राक्षस को तिनके की तरह मसल दूगा।" यह कहते हुए शिशु ने एक तिनका उठाकर तोडकर फेंक दिया। "मुझे राक्षस के समीप जाने की आज्ञा दें।" माता ने बालक को हृदय से लगा लिया। देवी कुंती ने सारी बातें ध्यान से सुनी। उन्होंने सामने आकर उनके दुख का कारण पूछा। ब्राह्मणी बोली, "हे देवी, हम इस दुखगाथा को आपको सुनाकर दुखित नही करना चाहते। आप हमारे अतिथि हैं।"

"भद्रे! मैं इस गाथा को सुनूंगी। मैं आपके यहां पुत्रों सहित बहुत सुखपूर्वक रह रही हूं। मेरा धर्म है कि मैं तुम्हारे दुख मे सहभागी बनूं।" कुंती बोली।

ब्राह्मणी ने कहा—"देवी, इस नगर के समीप एक क्रूर राक्षस रहता है। वह नरभक्षी है। पिछले दिनों उसने अपने आतंक से नगर मे त्राहि-त्राहि मचा दी। सैंकडो नर-नारियो को मार डाला। तब नगर-निवासियों ने उसके भोजन के लिए बहुत-सा अन्न-भोजन और प्रतिदिन बारी-बारी से एक मनुष्य भेजना प्रारंभ किया। आज हमारे परिवार की बारी है। हमारे पास इतना धन नही कि किसी को क्रय करके भेज सकें।" यह कहकर ब्राह्मणी शांत हो गई।

"हे विप्रदेव, आपके दुख से मैं द्रवित हो उठी हूं। आपने इतने समय से हमको सुरक्षित रहने का अवसर दिया है। क्या मैं आपके उपकार को भूल जाऊंगी? मेरे पांच पुत्र हैं। उनमे से एक उस राक्षस को भोजन-सामग्री लेकर जायेगा। तुम चिंता न करो।" कुंती ने ढाढस देते हुए कहा। ब्राह्मण विह्वल होकर बोला—"देवी, आप सब हमारे अतिथि हैं, पूजनीय हैं। मैं तुम्हें किसी संकट मे नही डालूंगा। मैं अपने स्वार्थ के लिए तुम्हारे पुत्र की बलि नही होने दूंगा।"

कुंती ने ब्राह्मण की कातरता देख उसे पुनः ढाढस दिया—"ब्रह्मन, मुझे अपने पुत्र प्रिय हैं। परन्तु मुझे विश्वास है कि मेरा पुत्र उस राक्षस को भोजन-सामग्री पहुंचा देगा और स्वयं को राक्षस से छुडा लेगा। मेरा पुत्र बहुत बलवान और मन्त्रसिद्ध है। तुम निश्चित रहो।"

ब्राह्मण हाथ जोडकर कुंती के सामने नतमस्तक बैठा था।

कुंती ने भीमसेन के पास आकर कहा—"भीम, तुम इस ब्राह्मण का दुख दूर करने को राक्षस के पास भोजन लेकर जाओ। मैं तुम्हें आशीष देती हूं, तुम विजयी बनो। परोपकार जीवन मे सबसे बड़ा धर्म है। परदुख दूर करने से आत्म-तेज बढ़ता है, मन मे संतोष का सुख भर जाता है। भीम, तुम तो वायुपुत्र हो। वायुदेव सबसे अधिक बलवान हैं। मेरा आशीष तुम्हारी रक्षा को तुम्हारे साथ है।

तुम अन्याय का प्रतिकार करने जा रहे हो। यही मानव धर्म है।" इस समय तक युधिष्ठिर आदि सभी भाई भी आ गये थे। माता के वचन सुनकर सभी भाई उत्साहित होकर उस राक्षस के पास जाने को प्रस्तुत हुए। भीम ने कहा, "मैं ही उस राक्षस से निबटने को जाऊंगा। भैया, तुम सब निश्चिन्त रहो। मैं शीघ्र ही उसका वध करके आऊंगा।"

भीमसेन एक छकड़े मे भोजन-सामग्री, भात, अन्न आदि लेकर नगर के बाहर वन में पहुंचे जहा वह नरभक्षी राक्षस भोजन की प्रतीक्षा में था। वह क्रुद्ध होकर बोला, "अरे मूर्ख, इतनी देर से भोजन लाया है। तू तो मेरा आहार है।" भीमसेन ने उसकी बात पर ध्यान नही दिया। वे उसकी तरफ पीठ करके उस भोजन मे से निकाल कर खाने लगे। राक्षस बहुत क्रुद्ध हो गया। वह भयंकर रूप से गरजता हुआ भीम के पास पहुंचा और दोनों हाथों से भीम की पीठ पर थाप मारी। भीमसेन घूमकर उससे जा भिड़े। उन्होने उसकी गर्दन पर प्रहार किया। राक्षस कुछ दूर धरती पर जा गिरा। भीमसेन उसके समीप पहुंचकर उसे खदेड़ने लगे। वे उसके ऊपर चढ़ बैठे और गरदन को ऐसे दबाया कि उसके दोनो नेत्र बाहर निकल आये। क्षणभर मे उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। भीमसेन ने उस राक्षस के शव को नगर के मुख्य द्वार के समीप रख दिया और स्वयं को लोगों की निगाह से बचाते हुए माता के चरणों में आकर सिर नवाया। ब्राह्मण बहुत गद्गद हो गया। उसने कुन्ती को प्रणाम करके कहा, "देवी, आपके पुत्र तो देवतुल्य बलवान हैं आपने इस नगर के संकट को दूर किया है।" ब्राह्मणी कुंती के चरणों मे गिर पड़ी। कुंती ने कहा, "विप्रवर, तुम्हारा हमारे ऊपर बहुत उपकार था। मैं प्रत्युपकार करने का मार्ग खोज रही थी। दैव ने यह अवसर प्रदान कर दिया। अब आप यहां सुखपूर्वक निवास करो। हम अब पांचाल राज्य को प्रयाण करेंगे। हम पर्यटन करने निकले हैं।"

सोलह

पांडव नही चाहते थे कि उनके जीवित रहने का रहस्य दुर्योधन को ज्ञात हो सके। उन्होंने स्वयं को ब्राह्मण-वेश मे छिपाये रखा। कण्टकाकीर्ण वन में हिंस्र जीवों की हुंकार, वायु के तीव्र झोंके सहन करते हुए पांचों भाई माता कुंती के साथ मुनि आश्रमों में विश्राम करते हुए आगे बढ़ते जाते थे। वे सोमाश्रयण तीर्थस्थल पर आ गये। संध्याकाल हो चला था। गंगाजल पर रश्मियों का प्रकाश मणि-रत्नों की भांति चमक रहा था। वहां गंधर्वराज चित्ररथ गंधर्व कुमारियों के साथ जल-क्रीड़ा करने आया करता था। उस घाट पर वह अपना एकाधिकार मान बैठा

था। पांडव कुमारों को उस घाट पर देखकर उसके मन में आश्चर्यमिश्रित आक्रोश उदित हो गया। वह दर्प मे पांडुकुमारो को ललकारता हुआ बोला, "अरे मानवो! क्या तुम्हे यह ज्ञात नही कि सांध्यकाल मे यहां गंधर्व जलक्रीड़ा करने आते हैं? क्या तुम्हें अपने प्राणों का मोह नहीं?" अर्जुन को गंधर्वराज की मदभरी वाणी सहन नही हुई। अर्जुन ने कहा, "गंधर्वकुमार, समुद्र, हिमालय और गंगा पर किसी एक का अधिकार नही हो सकता। जल, वनस्पति, वायु को सबके लिए समान रूप से उपभोग हेतु परमात्मा ने बनाया है। तुम अहंकारपूर्ण बातें क्यों करते हो?" अंगारवर्ण चित्ररथ ने अर्जुन की निर्भीक वाणी सुनकर धनुष पर बाण चढ़ा लिया। उसने एक तीक्ष्ण बाण अर्जुन की ओर छोड़ दिया। अर्जुन ने भी अपने धनुष को सधान कर शल्य नामक बाण से गंधर्व के बाण को काट डाला और एक आग्नेयास्त्र धनुष पर चढ़ाकर चित्ररथ का रथ जला डाला और सारथि मार दिया। गंधर्वराज अर्जन के पराक्रम को नही जानता था। वह भयभीत हो गया। वह रथ छोड़कर भागने को प्रस्तुत हुआ, तभी अर्जुन ने उसका पीछा करके उसके केशों को पकड़ लिया। वह उसे खीचते हुए भाइयो के सम्मुख ले आये। युधिष्ठिर ने उसे छुड़ाते हुए कहा, "हे गंधर्वराज, तुमने अकारण हम पर क्यों आक्रमण किया? तुम जानते हो, क्षत्रिय रण मे किसी की चुनौती सहन नही कर सकते। तुम्हारा कर्म वीरतापूर्ण नही है।" चित्ररथ के नेत्र झुके हुए थे। अर्जुन द्वारा चित्ररथ के पकड़े जाने का समाचार सुनकर उसकी रानियां वहा आ गई। उन्होंने माता कुंती, युधिष्ठिर एवं भाइयों को प्रणाम करके कहा, "देव, आपके बल, पराक्रम के सम्मुख हमारे पति तेजहीन होकर नतमस्तक खडे हैं। आप इन्हें क्षमादान दीजिए।" युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा, "भाई, गंधर्वराज को मुक्त कर दो। हम भरतवंशी नारी का सदैव सम्मान करते रहे हैं।"

मुक्त होकर गंधर्वराज ने युधिष्ठिर को प्रणाम किया। उसने अपने मणि-कंकरण और आभूषण आदि समर्पित करते हुए कहा, "हे महान् वीरो, मैं अपनी समस्त धन-सम्पत्ति आपको भेंटस्वरूप प्रदान करता हूं। वीर शिरोमणि अर्जुन, मैं आज से तुम्हे अपना मित्र बनाता हूं।"

"हे गंधर्वकुमार, क्या तुमने मुझे भयवश मित्र स्वीकार किया है? ऐसे मित्र की मित्रता अस्थिर होती है।" अर्जुन ने कहा।

"हे वीरश्रेष्ठ, मुझे देवताओं मे कुछ दिव्यास्त्र प्राप्त हुए थे। मुझे गर्व हो गया था कि मानुषी भूमि पर मुझे कोई जीत नही सकता। तुमने मेरा मोह-भंग कर दिया है। मैं तुम्हें श्रेष्ठ वीर मानता हू। मैं इस उपकार के बदले तुम्हें अपनी चाक्षुषी विद्या प्रदान करता हूं। यह विद्या दिव्य चक्षु प्रदान करने वाली है। इस विद्या का आह्वान करने वाला पुरुष कुछ काल तक स्वयं को अदृश्य भी रख सकता है। इसके अतिरिक्त मैं आपको अश्व, रथ एव गज भेजूंगा जो आपकी सेना

में सहायक सिद्ध होंगे।"

अर्जुन ने कहा, "हे गंधर्वकुमार, तुम्हे अभी अश्व, गज, रथ भेजने की आवश्यकता नही, क्योंकि हम वेश बदले हुए अपने को सुरक्षित रखे हुए हैं।" गंधर्वराज ने उन्हें अभिवादन करके वेदज्ञ ब्राह्मण धौम्य मुनि के आश्रम मे जाने की सलाह दी।

सत्तरह

पांचाल नगर में आज राजकुमारी द्रौपदी का स्वयंवर था। राज्य का रंगस्थल जनसमूह से भरा हुआ था। रंगस्थल के पूर्वी भाग मे देश-देशान्तर के नरेश मंचों पर आसीन थे। उत्तरी भाग मे ब्राह्मण, मुनिगण, धर्मज्ञ गुरुजन पंक्तिबद्ध अपने आसनों पर विराजमान थे। दक्षिण-पश्चिम की ओर नगर के सम्भ्रान्त नागरिक, वणिक, शिल्पी, कलाविद् एवं अन्य श्रेणी के लोग दर्शक बनकर बैठे थे। मध्य मे उच्च मच पर राजा द्रुपद अपने परिवार जनो, मंत्रियों एव सेनानायको के साथ समासीन थे। सभामध्य एक लौह स्तंभ था जिसके ऊपर घूमता हुआ एक बहुरंगी गोल चक्र स्थित था। गोल चक्र के बीचोंबीच एक बड़ा छिद्र था और उसके ऊपर एक पक्षी की प्रतिमा को इस प्रकार स्थित किया गया था कि बाण द्वारा उसे छिद्र के रास्ते से वेधा जा सके। यह कार्य धनुर्विद्या में पारगत सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति ही कर सकता था। धनुर्विद्या में अर्जुन के पारंगत होने की कीर्ति राजा द्रुपद ने सुनी थी और उनकी प्रबल इच्छा यह थी कि द्रौपदी का विवाह अर्जुन से ही हो। उन्होंने स्तंभ के समीप एक सुन्दर सुदृढ धनुप और पांच बाण रखवा दिए थे। राजा को पूर्ण विश्वास था कि इस प्रचण्ड धनुप पर अर्जुन जैसा वीर ही बाण चढ़ाकर लक्ष्य बेध सकता है। द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न ने महाराज की प्रतिज्ञा को कह सुनाया, "हे भूपालो, शस्त्रवेत्ता धनुर्धरो, विद्वानो, सुनो! महाराज द्रुपद की यह प्रतिज्ञा है कि जो वीर लौह स्तंभ के समीप रखे धनुप पर बाण चढ़ाकर इन पांच बाणो से इस लौह स्तंभ पर टंगे हुए लक्ष्य को बेध कर पृथ्वी पर गिरा देगा, राजकुमारी कृष्णा उसके गले मे जयमाला पहिना देगी।" सभी नरेशों के नेत्र कृष्णा के मुखचन्द्र पर चकोर के समान स्थिर हो गये। उस जीवन-कुसुम को प्राप्त करने के लिए सभी लालायित हो रहे थे। उस सभा मे दुर्योधन, कर्ण एव अन्य कौरव पुत्र भी उपस्थित थे। कमर मे परिकर कसे सभी शूरवीर नरेश अपनी धनुर्विद्या की परीक्षा को सन्नद्ध हुए। कुछ राजकुमार तो प्रचण्ड धनुप को देखकर ही हिम्मत हार बैठे, बहुत-से राजकिशोरों ने धनुप उठाकर प्रत्यंचा खींची, परन्तु वे लक्ष्य वेध न कर सके। रुक्म, शाल्व, शल्य वक्र आदि बलशाली नरेश लक्ष्य-वेधन

न कर सके। चेदिराज शिशुपाल आया, परन्तु वह प्रत्यंचा खींचते ही घुटने के बल धरती पर बैठ गया। दुर्योधन आदि कौरवों ने भी अपनी बाणविद्या की परीक्षा की, परन्तु वे असफल रहे। कर्ण धनुष की ओर तमक कर बढ़ा। धनुष पर बाण चढ़ाया, परन्तु वह भी लक्ष्यवेध करने में सफल न हो सका। अब क्षत्रिय नरेशों में कोई ऐसा वीर शेष नहीं बचा जो लक्ष्यवेध करने को मंच पर नहीं आया हो। तभी ब्राह्मणों की पंक्ति में से एक युवक, उदंत मार्तण्ड की भांति उठ खड़ा हुआ। सभी ब्राह्मण अभिमन्त्रित जल के छींटे देते हुए बोले, "विजयी भव।" विशाल वक्षस्थल और हाथी के शुण्ड के समान दीर्घ बाहु वाले उस युवक के मस्तक पर त्रिपुंड लगा हुआ था। प्रजाजनों के नेत्र उस युवक की ओर आकर्षित हुए। राजकुमारी द्रौपदी ने उस युवक को देखा और उसमें विचित्र आकर्षण पाकर लज्जा से नेत्र नीचे कर लिए। सखी-सहेलियों ने चुटकी ली, "ब्राह्मण कुमार हमारी राजकुमारी को वरण करेगा।" अर्जुन को वहां कोई पहिचान नहीं सका, क्योंकि उसने अपने वेश को ब्राह्मण कुमार जैसा बना रखा था। ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन निर्भीक लौह स्तंभ के समीप रखे धनुष के समीप खड़ा हो गया। उसने धनुष को ऐसे ताका जैसे बाज अपने शिकार को घूरता है। उसने धनुष को उठाकर कान तक प्रत्यंचा खींचकर बाण छोड़ा जो घूमते हुए चक्र के छिद्र में होकर लक्ष्य को वेधन कर सनसनाता हुआ आकाश की ओर चला गया। लक्ष्य छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वी पर आ गिरा। ब्राह्मणों ने स्वस्त्ययन उच्चारण करना प्रारंभ कर दिया। सखियां मंगलगान गाते हुए राजकुमारी के साथ बढ़ रही थीं। राजकुमारी के हाथों में सुंदर पुष्पहार सुशोभित हो रहा था। तभी राजाओं की मण्डली में कोलाहल का स्वर गूंजने लगा, "राजा द्रुपद अपनी कन्या को क्षत्रिय राजकुमार के अतिरिक्त और किसी अन्य को वरण करने की अनुमति नहीं दे सकते। हम यह अन्याय सहन नहीं करेंगे।" दुर्योधन ने कहा, "राजा द्रुपद इसके लिए दोषी हैं।" समस्त उपस्थित राजा लोग शिशुपाल, जयद्रथ, शल्य, वक्र आदि द्रुपद को पकड़ने को आगे बढ़े। सखी-सहेलियां राजकुमारी को राजभवन में ले गईं। तभी ब्राह्मण मंडली में से निकलकर भीम-अर्जुन उन राजाओं पर टूट पड़े। अर्जुन धनुष-बाण लेकर प्रहार कर रहे थे और भीमसेन ने गदा के प्रहार से दुष्ट राजाओं को आहत करना शुरू किया। राजा लोग क्षत-विक्षत होकर भाग खड़े हुए। अर्जुन का मुकाबला करने कर्ण और दुर्योधन आदि कौरव पुत्र आये, परन्तु अर्जुन के शल्य, नाराच, दुर्गभेदी बाणों के सामने वे टिक नहीं सके। कर्ण ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन से बोला, "वीर ब्राह्मण पुत्र, तुम देव हो या किन्नर? तुम्हारा युद्धकौशल देवराज इन्द्र से भी बढ़कर है।"

"कर्ण, मैं न देव हूं न किन्नर। मैं तो तुम्हारी ही तरह एक साधारण मानव हूं।" कर्ण ने ब्राह्मण कुमार का अभिवादन किया और रंगस्थल छोड़कर चला गया।

धीरे-धीरे रंगस्थल राजाओं से विहीन हो गया। संध्या राग भरकर भूतल पर उतर रही थी। पक्षीगण पश्चिम दिशा में चहचहाने लगे। राजा द्रुपद ने धृष्टद्युम्न से पूछा, "पुत्र ! यह ब्राह्मण कुमार कौन था जिसने लक्ष्य बेध किया? तुम गुप्तचरों द्वारा यह पता लगवाओ कि आखिर यह ब्राह्मण कुमार है कौन?"

राजकुमार धृष्टद्युम्न के आदेश से कुम्हार के घर जाकर गुप्तचरो ने पांडुकुमारों की वार्ता गुप्त रूप से सुनी। अर्जुन अपनी माता कुंती को लक्ष्य-वेध के विषय मे और दुष्ट राजाओं के विषय में बता रहे थे। माता अपने पुत्रों के शौर्य-कर्म की प्रशंसा कर रही थी साथ ही हस्तिनापुर से वारणावत तक की घटनाओ को स्मरण कर भावविह्वल हो रही थी। धृष्टद्युम्न को पूर्ण विश्वास हो गया कि ये वीर युवक और कोई नही बल्कि पाडुकुमार ही हैं। राजा द्रुपद पाडवो के जीवित होने का समाचार जानकर बहुत प्रसन्न हुए। द्रौपदी का विधिवत् विवाह करने के लिए द्रुपद ने ब्राह्मण वेशधारी पांडवो को बुला लिया। द्रौपदी का विवाह तो एक प्रकार से लक्ष्य बेध की प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर ही सम्पन्न हो चुका था। राजा ने पांडुपुत्रों से कहा, "हे वीर शिरोमणि राजकुमारो, महाराज पांडु से सदैव पांचाल देश की मैत्री रही है। मेरी यह अभिलाषा थी कि राजकुमारी द्रौपदी महाराज पांडु की पुत्रवधू बने। विधिना ने मेरा यह स्वप्न पूरा कर दिया है, ऐसा प्रतीत होता है। आप अपना वंश-परिचय दीजिए।"

युधिष्ठिर ने महाराज यज्ञसेन का अभिवादन करके कहा, "राजन्, आपने स्वयंवर के समय जाति, वंश, गोत्र आदि के विषय में कोई घोषणा नही कराई है। लक्ष्य-बेध करने वाले के साथ राजकुमारी का वरण करने की प्रतिज्ञा की थी। हम आपके समक्ष यह रहस्य उजागर कर रहे हैं कि हम पाण्डुपुत्र हैं। लक्ष्य-वेध अर्जुन ने किया है। यह हमारी माता कुंती हैं। दुर्योधन ने हमे वारणावत भेजकर लाक्षागृह में भस्म करने का षड्यन्त्र रचा था। वह अपनी योजना मे सफल नही हो सका। हम अपनी रक्षा करते हुए अब तक स्वयं को गुप्त रखे हुए हैं।" राजा द्रुपद यह सुनकर स्तम्भित रह गए। वह बोले, "वत्स, धर्म की सदा विजय होती है। महाराज धृतराष्ट्र अपने पुत्रों के मोह में अनीति के चंगुल में फंस गए हैं। आप निर्भीक बनें। हम आपको आपका राज्य दिलाने मे सहायक होंगे। आप मेरी पुत्री का विधिवत् पाणिग्रहण अर्जुन के साथ स्वीकार कीजिए, क्योंकि लक्ष्य-वेध अर्जुन ने ही किया है।" युधिष्ठिर बोले, "राजन्, आपको हमारी कुल-मर्यादा की रक्षा करते हुए निर्णय लेना चाहिए।" उसी समय देवी कुंती ने राजा द्रुपद के सम्मुख कहा, "धर्मज्ञ महाराज, मैं पाण्डुपुत्रों की जननी हूं। अर्जुन ने आपकी प्रतिज्ञा के अनुसार लक्ष्य वेध कर राजाओ का मान मर्दन किया है। हमारे कुल-गौरव के अनुसार पहले ज्येष्ठ पुत्र का ही पाणिग्रहण संस्कार होता रहा है। मेरे पुत्र अर्जुन की भी यही इच्छा है।" राजा द्रुपद प्रसन्न होकर बोले, "देवि, मैं सभी पाण्डुपुत्रों

को समान रूप से धर्मपरायण और वीर मानता हूं। आप अपनी कुल-मर्यादा के अनुसार अपने ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर से ही मेरी पुत्री का पाणिग्रहण करा लें।"

राजकुमारी द्रौपदी का विवाह युधिष्ठिर के साथ शास्त्रोक्त विधि से सम्पन्न हुआ।[1] कुछ समय तक पाण्डव माता कुंती के साथ राजा द्रुपद के अतिथि बनकर रहे।

अठारह

"महाराज, पाचों पाण्डव जीवित हैं। उन्होने पाचाल नरेश की पुत्री द्रौपदी के स्वयवर मे लक्ष्य बेध कर द्रौपदी का वरण कर लिया है। आज आर्यावर्त मे कुरुकुल की कीर्ति फैल रही है।" धृतराष्ट्र पाण्डवों के जीवित रहने का समाचार सुनकर स्तब्ध रह गए। पाण्डवों ने लक्ष्य बेध कर द्रौपदी को स्वयंवर मे जीता है, यह सदेश भी उन्हें प्रसन्न नही कर सका। उनका अन्तर्मन इस बात से पीड़ित था कि उनके पुत्रों मे से कोई एक भी ऐसा वीर क्यों नही हुआ जो लक्ष्य बेध सकता। उन्होने अपने मनोभावो को छिपाकर कहा, "विदुर जी, यह तो बहुत ही बड़ा शुभ समाचार है कि सभी पाण्डुपुत्र लाक्षागृह से सकुशल जीवित निकल गए। वे मुझे पुत्रवत् हैं। उन्हें शीघ्र ही सम्मान सहित हस्तिनापुर बुलाया जाए।"

"महाराज, वे इस समय पांचाल नरेश द्रुपद के अतिथि बनकर वहा रह रहे हैं।" यह समाचार देकर विदुर वहां से उठकर चले गए। दुर्योधन और कर्ण भी वहा उपस्थित थे। दुर्योधन ने कहा, "पिताश्री, आपके मुख से पाण्डवो की प्रशंसा सुनकर मैं असमंजस मे पड़ गया हू। पाण्डुपुत्र हमें शत्रु मानकर हमसे छल करते रहे हैं।" धृतराष्ट्र ने कहा, "पुत्र, मेरे हृदय की व्यथा तुम नही समझ सकते। उनकी छलपूर्ण नीति से मैं भी अनभिज्ञ नही हूं। प्रजाजनों का भी उनसे बहुत लगाव है। उनसे मुक्ति पाना आसान नही है। तुम नही समझते कि चाहे दिखावा ही हो, नीति का मार्ग अपनाना मेरी विवशता है। विदुर पाण्डवो के परम हितैषी एवं प्रशसक हैं। उनके समक्ष पाण्डवो की निन्दा करना अथवा उनके अहित की बात करना हमारे अपने हित में व्यावहारिक नही होगा।"

"पिताश्री, पाण्डवों के प्रति हमे साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति का अनुसरण करना पड़ेगा। भेद-नीति का अनुसरण करके अगर हम कुंती और माद्री

1. लोक-प्रचलित दंतकथाओं में द्रौपदी को पांचो पाण्डवो की पत्नी माना है। यह असत्य है। महाभारत कथा मे ऐसा नही है। द्रौपदी का विवाह युधिष्ठिर से हुआ था, यही प्रामाणिक है।

पुत्रों में वैमनस्य का बीज बो दें, तो पाण्डव निर्बल हो जायेंगे।" दुर्योधन कातर स्वर में फुसफुसाया।

"सुयोधन, कुंती-पुत्रों और माद्री-पुत्रों मे बहुत प्रेम है। वारणावत से पांचाल नगर गए पाण्डवो को लगभग एक वर्ष हो गया है। इस बीच कुती एवं माद्री पुत्र अनेक कष्ट सहकर भी एकता के सूत्र में बंधे रहे हैं। वे एक-दूसरे से अलग नही होंगे।" धृतराष्ट्र ने अपना मत व्यक्त किया।

कर्ण दुर्योधन की नीति से सहमत तो था परन्तु वह वीरतापूर्ण नीति का समर्थक था। कर्ण ने कहा, "पाण्डवो के पास अभी कोई सैन्यबल नही है। इस दशा में उन्हें सैन्यबल से परास्त करके अपने वश मे कर लेना चाहिए। सैन्यबल से शत्रु पर विजय प्राप्त कर लेना क्षत्रिय धर्म मे नीति-संगत है।"

इसी अवसर पर अचानक भीष्म पितामह विदुर के साथ राज्य सभा मे प्रविष्ट हुए। उनका मुखमंडल आक्रोश से अरुणाभ दिखाई दे रहा था। उन्होंने कर्ण की बातें सुन ली थी। उन्होंने धृतराष्ट्र के समीप आसन ग्रहण करके कहा, "राजन्, इस महिमामडित भरतवशी राज्य दंड को तुम्हारे हाथ मे इसलिए सौपा गया है कि राजनीति धर्म से पूर्ण बने। तुम्हारे विचार और कर्म स्वार्थांधता के पर्यावरण से घिरे हुए हैं। अपने पुत्रों की चाटुकारिता ने तुम्हे घेर लिया है। कर्ण जैसे दंभी-अहंकारी पुरुष सत्य से तुम्हे विलग किए हुए हैं। बोलो कर्ण, द्रौपदी स्वयंवर मे तुम्हारी वीरता कहां पलायन कर गई थी? भीम-अर्जुन ने उपस्थित समस्त नरेशों और कौरवो को खदेड़ा था। तुम स्वयं अर्जुन के वाणो से हताहत हो गए थे, तब तुम्हारा बल-पराक्रम कहा चला गया था?" कर्ण बोला, "पितामह, द्रौपदी-स्वयंवर मे पाण्डवों ने छलपूर्ण कपट व्यवहार किया था। राजा द्रुपद ने उनकी सहायता की थी। हम उस अपमान को कैसे भूल जाएं?"

"पाण्डु-पुत्र और धृतराष्ट्र-पुत्रों पर मेरा समान स्नेह है। मै अनीति नही होने दूंगा। जब वारणावत में लाक्षागृह मे पाण्डुपुत्रों को भस्म करने का षड्यन्त्र किया गया था, तब तुम सब कहां थे? पाण्डुपुत्र धर्मज्ञ, नीतिज्ञ और वीर है। जिस प्रकार सुयोधन इस राज्य को पैतृक सम्पत्ति मानता है, उसी प्रकार इस राज्य पर पाण्डुपुत्रों का भी समान पैतृक अधिकार है। राजा धृतराष्ट्र, तुम पाण्डवों को पांचाल राज्य से सम्मान सहित बुलाओ और राज्य का आधा भाग सौप दो। पाण्डवों को आधा राज्य सौंपना, तुम्हारे कलंक को धो देगा। प्रजा मे तुम्हारा सम्मान बढ़ेगा।" भीष्म ने नीति की बात कही।

द्रोण ने कहा, "राजन, पितामह ने जो कुछ सुझाव प्रस्तुत किया है, वही धर्ममय और नीति-संगत है। पाडुपुत्रों को सम्मान सहित लाने के लिए किसी विज्ञ पुरुष को भेजा जाए। पाण्डवों के प्रति भेदभाव करने से यह राजकुल राजनीति के दलदल में फंस जाएगा।"

विदुर बोले, "महाराज, पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण दोनो ही पूज्यनीय हैं। इनकी सम्मति राज्य के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगी। पाण्डुपुत्र और आपके पुत्र राज्य की दाईं-बाईं भुजाएं हैं। युधिष्ठिर मे सत्य, दया, क्षमा, धैर्य के गुण विद्यमान हैं। अर्जुन को सव्यसाची पदवी प्राप्त है। वह दायें-बायें हाथो से जब धनुष चलाएगा तो देवता भी उसके समक्ष नही ठहर सकेंगे। राजन्, पापी पुरोचन के हाथो जो कुछ कराया गया उसमे आपका अपयश बढ़ा है। आप पाण्डवों को बुलाकर उन्हें आधा राज्य सौंपकर इस अपयश से मुक्त हो जावेंगे। कर्ण, दुर्योधन, शकुनि खोटी बुद्धि वाले जीव हैं। पाण्डवों के समर्थक दशावतार कृष्ण और बलराम हैं। जहा कृष्ण हैं वहा धर्म है, जहां धर्म है वहां जय है।"

भीष्म, द्रोण और विदुर के मर्मभेदी उपदेश सुनकर धृतराष्ट्र असमंजस में पड़ गए। वे भीष्म से सविनय बोले, "पितामह, आप इस कुरुवश के सच्चे हितैषी और इस राज्य के कर्णधार हैं। मैं पाण्डुपुत्रों को भी अपने पुत्रो के समान ही स्नेह करता हूं। अपने विवेक से मैंने युधिष्ठिर को अग्रज होने के नाते राज्य के कार्यों मे प्रमुख स्थान दिया था। लाक्षागृह के निर्माण से मैं पूर्ण अनभिज्ञ था। पाण्डवो के भस्म होने का समाचार सुनकर मुझे बहुत शोक हुआ था। आप यह दोषारोपण मेरे ऊपर उचित नही कर रहे हैं। हा, दुर्योधन और कर्ण पाण्डवों के प्रति अमर्ष-शील रहते हैं। मैं आज ही विदुर जी को पाचाल देश जाने की आज्ञा देता हूं। वह शीघ्र ही पाण्डवो को सम्मान सहित हस्तिनापुर लायेंगे। मैं वधू कृष्णा का स्वागत करूंगा। पाण्डवो का आधा राज्य देने को भी मैं प्रस्तुत हूं।"

उन्नीस

वधू कृष्णा व माता कुंती सहित पाण्डवों को लेकर विदुर जी हस्तिनापुर मे प्रविष्ट हुए। उनके साथ श्रीकृष्ण भी थे। नर-नारी उनके दर्शन हेतु हर्षध्वनि करते हुए मुख्य मार्गों पर एकत्र हो गए थे। स्त्रिया उनके ऊपर पुष्प-वर्षा कर रही थी। राजा धृतराष्ट्र ने उनके स्वागत के लिए द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विकर्ण, चित्रसेन आदि अनेक ब्राह्मण क्षत्रियों को भेजा। पाण्डुपुत्रों ने राजभवन मे प्रवेश करके कुरुकुल-पूज्य भीष्म, आचार्य द्रोण और महाराज धृतराष्ट्र के चरणो की वन्दना की, सभाजनो से मिले एव नागरिको का अभिनन्दन किया।

धृतराष्ट्र ने उनका हर्ष से स्वागत किया। वे बोले, "पुत्रो! वारणावत से तुम्हारे विषय मे अत्यन्त अप्रिय समाचार पाकर हमे हार्दिक क्लेश हुआ। बहुत-से मिथ्या प्रवाद भी फैलते रहे। आज सूर्य के समान तुम्हारे उदय होने मे मिथ्या प्रवादो की रात्रि का अन्त हो रहा है। तुमने अपने शौर्य और पराक्रम से द्रौपदी-

स्वयंवर में विजय प्राप्त की। यह कुरुकुल के लिए महान गौरव की बात है।"

"पाण्डुपुत्रो, तुम यशस्वी बनो। तुम्हारे अदृश्य होने से सारी प्रजा व्याकुल हो उठी थी। तुम धर्मज्ञ और नीति का पालन करने वाले हो। तुम कुरुराष्ट्र की अभिवृद्धि मे महाराज धृतराष्ट्र का हाथ बटाओ।" भीष्म ने आशीर्वचन मे कहा।

"वत्स पाण्डुपुत्रो तुम सदैव अजेय बने रहोगे। जिनके मित्र वृष्णिवंशी कृष्ण हैं, उनका कोई अकल्याण नही कर सकता। युधिष्ठिर, तुममें सत्य, धर्म, दया, क्षमा आदि समस्त गुण विद्यमान है। भीमसेन शत्रुदमन हैं। अर्जुन, तुम्हारी गणना इन्द्र के समान की जायेगी। तुम सब भाई जितेन्द्रिय, कृत-संकल्प और दृढ़ निश्चयी हो। तुम्हें धर्म-अर्थ सदैव प्राप्त होते रहेंगे। तुम्हारे प्रकट होने से प्रजा हर्ष से भर उठी है। कर्तव्य तुम्हारा मार्गदर्शक बने।" विदुर ने आशीर्वाद दिया।

पाण्डवो की प्रशंसा सुनकर दुर्योधन के हृदय में असूया की अग्नि सुलगने लगी। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे किसी ने उसके घाव पर नमक छिड़क दिया हो।

धृतराष्ट्र ने प्रसन्न होकर कहा, "पुत्रो! अब समय आ गया है कि तुम सुहृद मित्रों के सहयोग से राज्य-सुख भोगो। मैं तुम्हें इस राज्य का विशाल भूभाग, खाण्डवप्रस्थ वन, उपवन, ग्राम, सरित-सरोवर आदि सोपता हूं।" श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र की मानसिक कुटिलता को भांपकर मंद-मंद मुस्कराने लगे। दुर्योधन मन ही मन प्रसन्न था कि पिताजी ने निर्जन वन प्रांत सौपकर अपनी जान छुड़ाई। खाण्डव प्रस्थ वन बहुत दुर्गम है। उसमें बहुत-से राक्षस रहते हैं। पाण्डवो को राक्षसो से जूझने में बहुत समय लगेगा। युधिष्ठिर ने संकेत से ही श्रीकृष्ण से सहमति प्राप्त कर धृतराष्ट्र का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

युधिष्ठिर के समक्ष अस्तित्व की नई चुनौती थी। उन्होने अपनी राजधानी बनाने के लिए नया नगर बसाने हेतु पर्याप्त भूमि का माप करवाया। उसके चारों ओर गहरी खाइयां खुदवाई गईं, भव्य भवनों का निर्माण कराया गया। ऊंची-ऊंची अट्टालिकाओ पर श्वेत ध्वज लहराने लगे। इस नये नगर का नाम इन्द्रप्रस्थ रखा गया। गोपुर, कोषागार, शस्त्रागार, राजभवन कुशल कारीगरों से निर्मित कराये गये थे। शस्त्रागार शतघ्नियों, गदा, भाला, तलवारो, धनुष आदि अस्त्र-शस्त्रों से परिपूर्ण थे। शत्रुओं की गतिविधियों से सतर्क रहने के लिए गुप्तचर विभाग भी स्थापित किया गया। महाराज युधिष्ठिर को सहायता देने के लिए दुर्ग-मंत्री, सेना-मंत्री कोष-मंत्री आदि सभी पद विद्वज्जनो को सौंपे गये। वायु से स्पर्धा करने वाले अश्व व काले पर्वत शिखर के समान हाथी, मेघ-गर्जना करने वाले रथ और समर मे जूझने वाले पदातियों से सैन्यबल सुसज्जित था। नगर के उत्तर भाग में यज्ञशालाएं निर्मित की गई थी, जिनमें याज्ञिक ब्राह्मण नित्य अग्निहोत्र करते थे। नगर के चतुर्दिक् सरोवर, कुएं, बावली बनाये गये थे। घनी

उत्तर मे स्थित मैनाक शिखर पर पहुंचा। वहां असुरों के यज्ञ करने के समय मय ने एक मणिमय भाण्ड तैयार किया था जो राजा वृषपर्व की राजसभा मे रखा गया था। मयासुर ने उस पर्वत से स्फटिकमणि हीरा, पन्नग, लालमणि, महान कठोर गदा, और देवदत्त नामक शंख प्राप्त किया। उसने वह वज्र के समान कठोर गदा भीमसेन को और देवदत्त नामक विजयी शंख अर्जुन को प्रदान किया।

मयासुर ने विमान आकार का ढाई हजार गज वर्गाकार का एक सुन्दर भवन निर्मित किया। वह राजभवन एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया जा सकता था। भवन में सुवर्णमय वृक्षों की पंक्तियां, जिनमें पन्नग और लाल मणियां जड़ी हुई थी, बनाई गई थी। सभाभवन के समीप एक पुष्करिणी भी बनाई गई थी जिसमें इन्द्रनील मणियों से कमल के पत्र बनाये गये थे। उनमे मृणाल मणियों के कमल सुशोभित थे। उस पुष्करिणी में स्वच्छ जल भरा रहता था जिसमें स्फटिक मणियां झलकती रहती थी। भ्रमवश लोग उस पुष्करिणी को स्थल समझ लेते थे। उस राजभवन के चहुं ओर पुष्पों के वृक्ष लगाये थे जिन पर सुन्दर पक्षी मधुर स्वर में गुंजार करते रहते थे।

युधिष्ठिर महाराज मयासुर की अद्भुत शिल्पकला से बहुत प्रसन्न हुए। सम्मान रूप मे उसे महान शिल्पी की उपाधि से विभूषित किया गया। युधिष्ठिर ने भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव के समक्ष कहा—"हे तात्! भूपाल अपने शौर्य से अर्जित राज्य का पालन नीति-धर्म से करे; बल-पराक्रम से शत्रुओं का दमन करे; मित्र-राष्ट्रों को सदैव प्रतिदान से सम्मानित करे; राज्य विद्याविद् कलाविद, नीतिविद्-बुद्धिवादी वर्ग का पोषण करे; कृषक, श्रमजीवी वर्ग की आवश्यकता को पूरा करने को तत्पर रहे; राजा भली भाति मंत्री, मित्र, कोष, दुर्ग सेवा और समस्त राष्ट्र का पालन करे। राजा उन शत्रु-राष्ट्रों से सतर्क रहे जो राज्य किल्विषी दस्युओ को सहायता पहुंचाकर आंतरिक विद्रोह कराने का प्रयत्न कर रहे हों। हे बंधुओ, ऐसे नरेश की यश-सुगधि सर्वत्र फैलती है। हमें अपने सुयश को बढ़ाने के लिए राजसूय यज्ञ करना चाहिए। अर्जुन, तुम द्वारका से श्रीकृष्ण को बुला लाओ।"

युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ कराने का दायित्व श्रीकृष्ण को सौंप दिया। श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर बोले—"राजन्! अब आपको सम्राट-पद प्राप्त करने का अवसर आ गया है। क्षत्रिय समाज आपको सम्राट-पद पर विभूषित कर निर्भय अपने राज्य का संवर्धन करे। आप सभी नरेशों को इस यज्ञभूमि पर सम्मान प्रदान करें। किंतु इसमे बहुत बड़ा व्यवधान सामने है। मगध राज्य पर बड़ा बलशाली क्रूर राजा जरासन्ध राज्य कर रहा है। आर्यावर्त्त के अनेक राजाओ को उसने गिरिव्रज मे बन्दी बना रखा है। पर्वत पर बने बन्दीगृह मे अनेक नरेशों को यज्ञ में बलिदान करने के लिए कैद कर रखा है। राजसूय यज्ञ करने से पूर्व क्या

आप उन नरेशों को मुक्त करा सकेंगे ?"

युधिष्ठिर श्रीकृष्ण की ओर विस्मय से देखने लगे। युधिष्ठिर बोले, "गोविन्द, उन नरेशों की रक्षा होनी ही चाहिए। क्या हमें मगध-नरेश से युद्ध करना पड़ेगा ?"

श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को धैर्य देते हुए बोले, "धर्मपुत्र, युद्ध अत्यंत भयावह दावानल है जिसमें निरीह कीट, पतंग, पशु, पक्षी जलकर भस्म हो जाते हैं। मानव-प्रतिभा, कला-कौशल, समृद्धि-वैभव सभी कुछ नष्ट हो जाता है। प्रजा की सुख-शांति नष्ट हो जाती है। युद्ध सामूहिक विनाश है जिसमें राष्ट्रीय कल्याण पर संकट छा जाता है। मैं उन नरेशों को मुक्त कराने के लिए शांतिपूर्ण उपाय से प्रयत्न करूंगा। यदि मगध-नरेश हमारे शांति-प्रस्ताव को नहीं मानेगा तो मैं शक्ति-बल से उसका विध्वंस करूंगा। प्रातःकाल मैं महाबली भीम-अर्जुन के साथ मगध राज्य जाऊंगा।"

बीस

जरासन्ध की राज्य सभा में मन्त्रिगण, सभासद मंचों पर आसीन थे। वन्दीजन यशगान कर रहे थे, सेवकगण मंचों के पीछे सुसज्जित खड़े थे। सहसा राज्य सभा में चन्दन माला से सज्जित श्वेत वस्त्र धारी तीन युवकों को उपस्थित देख सभासद चकित होकर उन तेजस्वी युवकों को देखने लगे। जरासन्ध ने उन तीनों युवकों को ब्राह्मण समझकर पूछा कि वे किस प्रयोजन से आये हैं। श्रीकृष्ण ने कहा, "हे नरेश, ये दोनों युवक स्नातक व्रत पालन कर रहे हैं। ये मौन धारण किए हुए हैं। केवल ब्रह्म मुहूर्त में सूर्योदय से पूर्व ही अपने आने का कारण बतायेंगे।" जरासन्ध ने उन्हें अतिथिगृह में स्थान दिया।

प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व जरासन्ध ने अतिथिगृह में जाकर उनसे पूछा, "हे ब्राह्मणो, तुम नगर में मुख्य द्वार से प्रविष्ट न होकर चैत्य दुर्ग के शिखर को तोड़कर प्रविष्ट हुए हो। तुम ब्राह्मण वेश में छद्मवेश धारी शत्रु तो नहीं हो ? तुम्हारे आने का क्या प्रयोजन है ?"

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, "राजन्, मित्र के घर मुख्य द्वार से आया जाता है, परन्तु शत्रु के घर में प्रविष्ट होने को स्वयं मार्ग बनाना पड़ता है। स्नातक धर्म में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य दीक्षित हो सकते हैं। मैं वसुदेव पुत्र कृष्ण हूं। ये दोनों पाण्डुकुमार भीमसेन और अर्जुन हैं। तुमने अभिमानवश अनेक भूपालों को बंदीगृह में डाल रखा है। तुम उन्हें रुद्रयज्ञ में बलि देना चाहते हो। यह मानवता के प्रति घोर कलंक है। हम मानव-धर्म की रक्षा के लिए उन्हें मुक्त कराने आये हैं। हे राजन्, तुम सभी बंदी भूपालों को मुक्त कर दो। वे तुम्हारा यश-गायन करते रहेंगे।"

जरासन्ध श्रीकृष्ण की बातें सुनकर बहुत क्रुद्ध हुआ। यह बोला, "कृष्ण, मैने तुम्हारा नाम सुना है। तुम कूटनीति से इन दुष्ट राजाओं को मुक्त कराने आये हो। यह तुम्हारा भ्रम है। इन राजाओं को मैंने अपने बाहुबल से जीतकर बदी-गृह मे डाला है। अब ये मेरी सम्पत्ति हैं। मैं इनसे मनमाना व्यवहार करने को स्वतन्त्र हूं। तुम मेरे राज्य में विद्रोह कराना चाहते हो। ऐसे राजद्रोही को मेरे यहां मृत्युदण्ड दिया जाता है।" तत्काल भीमसेन ने उसे ललकारते हुए कहा, "अन्यायी को दण्ड देना क्षत्रिय का धर्म है। क्षत्रिय का तेज उसके बाहुबल मे रहता है। मैं तुम्हें द्वंद्वयुद्ध को ललकारता हूं।"

जरासन्ध बहुत अभिमानी था। वह किसी की ललकार को सहन नही कर सकता था। वह बोला, "भीमसेन, मैं तुम्हें अभी बन्दीगृह मे डाल सकता हू, परन्तु यह वीरोचित कर्म नही है। मैं तुम्हे युद्ध में मारकर दण्ड दूगा।"

श्रीकृष्ण बोले, "मगध-नरेश, राजा का धर्म प्रजा को सुख शांति प्रदान करना, पड़ोसी राज्यो से मैत्री स्थापित करना, उनकी स्वायत्तता में कोई हस्तक्षेप न करना तथा अपने राज्य मे कला-संस्कृति का विकास करना है। हम तुमसे युद्ध करने नही आये हैं। हमारे महाराज युधिष्ठिर ने तुम्हें यह संदेश भेजा है कि तुम इन दीन राजाओ को मुक्तिदान दे दो। दया करना वीरों का आभूषण है।"

"कृष्ण, तुमने मथुरा-नरेश कंस को मारकर अपने माता-पिता देवकी-वसुदेव को बदीगृह से मुक्त करा लिया है। तुम भ्रमवश आर्यावर्त्त में अपने को बलवान मानने लगे हो। मैं अकेला तुम तीनो से युद्ध करने का आह्वान करता हूं। वीर कभी दया की शिक्षा नहीं देता फिरता।" जरासन्ध अभिमान मे बोला। श्रीकृष्ण समझ गये कि दुष्ट को नीति-धर्म की शिक्षा देना रेत मे जल की बूदें डालने के समान है। उन्होंने भीमसेन को द्वद्वयुद्ध के लिए तैयार रहने को कहा।

भीमसेन ने महान गर्जना करते हुए जरासन्ध को युद्ध के लिए ललकारा। जरासन्ध तुरन्त ताल ठोककर भीमसेन के सम्मुख युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गया। दोनों वीर एक-दूसरे को बलपूर्वक खीचने और गिराने का प्रयास करने लगे। वे एक-दूसरे को दूर तक खदेड़ते, मुक्कों से प्रहार करते और एक-दूसरे की भुजा खीच कर गिराने की चेष्टा कर रहे थे। इस मल्लयुद्ध को देखने के लिए नगर-निवासी भी एकत्र हो गये थे। युद्ध करते-करते कई दिन बीत गये थे। नित्य दोनो वीर उत्साह भर कर युद्धक्षेत्र मे कूदते और विकट हुंकारें भरते हुए एक-दूसरे पर प्रहार करते थे। चौदहवें दिन जरासन्ध युद्ध करते-करते थककर चूर-चूर हो गया। तब श्रीकृष्ण ने कहा, "भीम, शत्रु को बार-बार पीड़ा देना ठीक नहीं। इसे पूर्ण विश्राम दो।" यह कहकर कृष्ण ने एक तृण उठाकर उसे बीच में से चीरकर फेंक दिया। भीमसेन कृष्ण के संकेत को समझ गये। उन्होंने बलपूर्वक उसे उठाकर पृथ्वी पर दे मारा। फिर पैर पकड़कर बीच मे से चीर दिया, जिससे रीढ़ की हड्डी

तड़तड़ाकर टूट गई। जरासन्ध का प्राणान्त हो गया।

श्रीकृष्ण अर्जुन-भीम सहित गिरिव्रज पर्वत पर पहुंचे। उन्होंने समस्त राजाओं को मुक्त करके उन्हें स्वतन्त्र करने की घोषणा की। जरासन्ध का पुत्र मणिरत्नों की भेंट लेकर श्रीकृष्ण के सम्मुख उपस्थित हुआ। श्रीकृष्ण ने उसे अभयदान देकर मगध के राज सिंहासन पर आसीन कराया। जरासन्ध के क्रूर शासन से मुक्ति पाकर प्रजा ने सुख-चैन की सांस ली और सर्वत्र श्रीकृष्ण एवं पाण्डवों की जयजयकार गूंजने लगी।

इक्कीस

यमुना-तट पर यज्ञशाला के लिए विशाल मण्डप का निर्माण कराया गया जिसमें एक सहस्र वेदिकाएं बनी थीं। यज्ञ के लिए आवश्यक वस्तुएं, वन-औषधियां, कद, मूल, फल आदि एवं अन्य मांगलिक द्रव्य एकत्र किए गये थे। यज्ञमंडप के आसपास अनेक अतिथिशालाएं बनाई गई थीं जिनमें समस्त सुख-सुविधाएं उपलब्ध थीं। राजसूय यज्ञ में आमंत्रित सभी राज्यों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं सेवकगण आये थे। सुदूर प्रदेशों के नरेश कश्मीर राज्य लोहित, कोकनद, चोल, दरद, कम्बोज, विदेह, दशार्ण राजा सुधर्मा, चेदिराज शिशुपाल, कौसलराज बृहद्-बल, काशिराज सुबन्धु, मगधराज जरासन्ध का पुत्र सहदेव, मत्स्य देश के राजा विराट, वत्सराज, निषादराज, बंगदेश के अनेक राजा, विविंशति, चित्रसेन सत्यव्रत, पुरुमित्र, शिवि देश का राजा कोटिकाश्व, सौवीर-नरेश, त्रिगर्त-नरेश सुशर्मा, केकय राजा बृहत्क्षत्र, गंधारराज शकुनि यज्ञ मण्डप की शोभा बढ़ा रहे थे। नकुल को हस्तिनापुर से समस्त कौरवों एवं आचार्य सहित भीष्म को लेने भेजा गया था। धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, दुर्योधन एवं उसके अन्य भाई, राजा शल्य, वाह्लीक नरेश, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कृतवर्मा, सिंधुराज जयद्रथ, राजा द्रुपद, शाल्वराज, प्राग्ज्योतिषपुर नरेश भगदत्त इस महान यज्ञ में शामिल हुए थे। युधिष्ठिर सहित सभी पाण्डवों ने अतिथियों की अगवानी की—अर्घ्य निवेदन किया। श्रीकृष्ण पहले से ही पाण्डवों के सहयोग में उपस्थित थे। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा, "राजन्, अपने स्वजन मित्रों को सत्कार सहित यथायोग्य कार्य-भार सौंप दो।" श्रीकृष्ण ने स्वयं ब्राह्मण, अतिथियों के चरण धोने का कार्य लिया था। धर्मज्ञ विदुर को धन के व्यय का भार सौंपा गया। राजा दुर्योधन को भेंटस्वरूप प्राप्त द्रव्य को संभालने का दायित्व सौंपा गया। वहां कोई ऐसा नरेश नहीं था जो एक सहस्र स्वर्ण मुद्राओं से कम भेंटस्वरूप लाया हो। महाराज युधिष्ठिर ने सर्वप्रथम ऋत्विज ब्राह्मणों की पूजा की। वहां ब्रह्मा के पद पर सत्यवती-नन्दन महर्षि

द्वैपायन व्यास सुशोभित थे। ब्राह्मणों ने यजनकार्य के मुख्य यजमान युधिष्ठिर को यज्ञकर्म की दीक्षा दी। भीष्म ने युधिष्ठिर से यज्ञभूमि में पधारे सभी भूपालों का सत्कार करने को कहा। आचार्य, ऋत्विक, स्नातक, सगे-सम्बन्धी राजा आदि सभी पूज्यनीय हैं। सर्वप्रथम अर्घ्य देकर पूजनीय, तेजस्वी, विचक्षणता में श्रेष्ठ वसुदेवनन्दन कृष्ण की पूजा की जाए। युधिष्ठिर ने अग्रपूजा हेतु श्रीकृष्ण को अर्घ्य निवेदन किया। तभी चेदिराज शिशुपाल सभामण्डप में खड़ा होकर उच्च स्वर में कहने लगा, "उपस्थित नरेशो, वृष्णिवंशी कृष्ण अग्रपूजा के अधिकारी नहीं हो सकते। यहां अनेक वीर भूपाल उपस्थित हैं। गंगानन्दन भीष्म की तो अधिक वृद्धावस्था के कारण मति मन्द पड़ गई है। कृष्ण तो अभी राजा भी नहीं है। वसुदेव वृष्णिवंशियों का राजा है। वृद्ध आचार्यों में द्रोण, ऋत्विकों में द्वैपायन व्यास हैं। शांतनुनन्दन भीष्म, कृपाचार्य, मद्रराज शल्य आदि धनुर्धर वीर वृद्धजनों के होते हुए कृष्ण की अग्रपूजा क्यों की जा रही है? क्या आपने सभी राजाओं को अपमानित करने के लिए यहां बुलाया है? कुंती-पुत्रो, तुम निपट कायर और डरपोक हो जो तुमने छत्रचंवर से हीन कृष्ण को अग्रपूजा के लिए चुना है।"

"अरे कृष्ण, तुमने अपने अहंकार की तुष्टि के लिए अपनी अग्रपूजा कराना स्वीकार कर लिया है, जैसे कोई श्वान पृथ्वी पर गिरे हुए घृत को चाटकर ही स्वयं को धन्य मानने लगे। जिस प्रकार किसी नपुंसक का विवाह करना और किसी अन्धे को दर्पण दिखाना उपहास मात्र है, वैसे ही इस सभा में तुम्हारी अग्र-पूजा उपहास का विषय है।" ऐसा कहते-कहते शिशुपाल कुछ अविवेकशील राजाओं को अपने साथ लेकर सभा से बाहर चला गया। मण्डप में हलचल मच गई।

युधिष्ठिर शीघ्र उठकर शिशुपाल के पास गये और उससे विनम्र होकर बोले—"राजन, आपने श्रीकृष्ण का कठोर वचनों से घोर अपमान किया है। पितामह भीष्म कुलवृद्ध और सामर्थ्यवान हैं। श्रीकृष्ण श्रेष्ठ, धैर्यवान और न्याय-विद् हैं।"

तत्काल भीष्म भी वहां आकर उसे समझाने लगे—"चेदिराज, तुम्हारा यह प्रलाप कायरों जैसा है। वीर योद्धा से पराजित पुरुष आंख नहीं मिला सकता। क्या तुम वसुदेवनन्दन से युद्ध करने को प्रस्तुत हो? उनमें साहस, बल, धैर्य; विचक्षणता, शौर्य, दया है। वे वेद-वेदांग के ज्ञाता और नीतिवान हैं। कृष्ण ही यहां ऋत्विक स्नातक, आचार्य के पद पर आसीन होने योग्य है।" ऐसा कहकर पितामह ने सहदेव को कृष्ण की पूजा करने की आज्ञा दी।

कृष्ण की पूजा होते देख शिशुपाल बौखला गया। वह बोला, "हे नरेशो, युधिष्ठिर की कूटनीति का मिलकर विरोध करो। वह स्वय सम्राट् बनना चाहता है और इस ग्वाले को पूजा का अग्रगण्य बनाना चाहता है। मैं तुम्हारा नेता हूं।

इस यज्ञभूमि को युद्धभूमि में बदल दो।" युधिष्ठिर यह कोलाहल देखकर पुनः भीष्म के पास जाकर बोले, "दादा जी, आप इस मूर्ख शिशुपाल को समझायें। यह यज्ञकर्म मे विघ्न डालने को प्रस्तुत है।" भीष्म बोले, "हे धर्मपुत्र, नदी, तालाब के उफान से समुद्र अशांत नही होता। यह दुष्ट सोते हुए सिंह को जगाने के लिए श्वान के समान भोंक रहा है। शिशुपाल विवेकहीन और अज्ञानी है। यह काल के मुख में प्रवेश करना चाहता है।"

भीष्म के वचन सुनकर शिशुपाल उत्तेजित होकर बोला, "भीष्म, तुमने कौरव-वंश को अन्धकूप मे ढकेल दिया है। अन्धा अन्धे की लाठी पकड़कर चले या एक नाव से दूसरी नाव बांध दी गई हो, वैसे ही कौरव तुम्हारे पीछे चल रहे हैं। तुमने इस सभा मे एक ग्वाले की अग्रपूजा कराकर अपने अज्ञान का परिचय दिया है। कृष्ण पूतना को मारकर, धेनुकासुर या केशी का वध करके वीर कहलाने लगा। स्त्री, गौ, ब्राह्मण को मारना धर्मविरुद्ध है। भीष्म, तुम ब्रह्मचारी होने का ढोंग करते हो, वैसे तुम नपुंसक हो।"

उसी समय भीष्म ने उठकर शिशुपाल को पकड़ लिया। भीम भी उसे मारने को उठे। भीष्म ने उन्हें रोककर कहा, "भीम, इसके सिर पर स्वयं काल मंडरा रहा है। यह अपने क्रोध मे स्वयं जल रहा है। यह स्वयं मृतक है।"

शिशुपाल पुनः भीष्म पर क्रोध में भरकर बोला, "भीष्म, तुम पाखण्डी हो। हिमालय पर रहने वाला भूलिंग पक्षी अपनी भाषा मे कहता है, किसी को मत मारो, परन्तु वह स्वयं सिंह के बचे हुए मांस के टुकड़े पर चोंच मारता है। भीष्म तुम कहते कुछ हो और करते कुछ हो। मैं तुमको और कृष्ण को युद्ध के लिए ललकारता हूं।"

कृष्ण ने भीष्म के प्रति इतने कटु वचन सुनकर कहा, "नरेशो, यह मूर्ख शिशु-पाल भीष्म को, मुझको और समस्त कौरवों को कटु वचन कहकर यह प्रकट कर रहा है कि इससे हमारी कोई पुरानी शत्रुता है। यह यदुकुल-कन्या का ही पुत्र है अतः मैंने इसके पहले समस्त अपराधों को क्षमा कर दिया था। एक बार बलराम जी प्राग्ज्योतिषपुर गये हुए थे। इसने अवसर पाकर द्वारका मे आग लगवा दी। मेरे पिता वसुदेव जी ने अश्वमेध यज्ञ करने को घोड़ा छोड़ा तो इसने वह घोड़ा चुरा लिया। मैंने इसे बुआ का पुत्र मानकर क्षमा कर दिया। अब यह अक्षम्य है।" यह कहकर कृष्ण ने सबके देखते-देखते चक्र सुदर्शन से शिशुपाल का मस्तक धड़ से काट डाला। दुष्ट राजा लोग पलायन कर गये। शिशुपाल के वध से सभी संतुष्ट थे। यज्ञ समाप्त होने पर कृष्ण द्वारका चले गये। दुर्योधन, शकुनि के साथ वहां कुछ दिन रहा।

बाईस

दुर्योधन उस सभाभवन को देखकर चकित रह गया था। युधिष्ठिर को सम्राट-पद ! उसका इतना वैभव !! सभागार !!! उसका मन ईर्षाग्नि में झुलसने लगा।

राजा सुयोधन सभाभवन में भ्रमण करता हुआ उस स्थल पर पहुंचा जहां स्फटिक मणियां जल की लहरों का भ्रम उत्पन्न कर देती थी। सुयोधन ने अपने वस्त्र ऊपर उठा लिए। इस भ्रम से वह मन मे लज्जित-सा हो गया। वह जल के भ्रम से स्थल में गिर गया। दूसरी ओर स्फटिक मणिमय जल से भरी बावली को स्थल समझकर उसमें प्रवेश कर गया जिससे वह जल मे गिर गया। उसके समस्त वस्त्र भीग गये। उसे जल में गिरा देख पास खड़े भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव सब भाई हंसने लगे। सेवकों से सुयोधन को नये वस्त्र मगवाकर दिए। दुर्योधन अपनी लज्जापूर्ण ग्लानि को प्रगट नही होने दे रहा था। कुछ दूर जाकर उसे स्फटिक मणियों से बना द्वार दिखाई दिया। वह द्वार में प्रवेश करने को आगे बढ़ा। तभी उसका सिर दरवाजे से जा टकराया। उसे चक्कर आ गया और वह वहां बैठ गया। भीमसेन ने कहा, "धृतराष्ट्र-पुत्र, द्वार इधर है।" आगे एक और दरवाजा दिखाई दिया जो खुला था। दुर्योधन उसे बन्द जानकर धक्का देने को आगे बढ़ा। वह द्वार से निकलकर चौक मे जा गिरा। दुर्योधन इस अपमान से मन ही मन जल उठा। पाण्डवों के पास यह राज्य लक्ष्मी···यह सम्राट-पद···यह वैभव···! मैं इसे सहन नही कर सकता। आर्यावर्त्त के नरेश उनके अनुगामी बने हैं। पाण्डवों ने मेरा तिरस्कार किया है। वे मेरे द्रोही हैं। दुर्योधन के नेत्र रक्तवर्ण के हो गये। उसके अन्दर द्वेषाग्नि सुलगने लगी।

गंधारराज मामा शकुनि ने पूछा—"वत्स, तुम चिंतित और उदास क्यों हो? क्या बात है?"

"मामाजी, अब इसी क्षण हस्तिनापुर को लौट चलिए। मैं आत्मदाह कर लूंगा अन्यथा मैं पाण्डवों से बदला लूंगा। मेरे मन में इस राज्य, वैभव, संपत्ति को देखकर अनेकों शूल छिद रहे हैं। भीम ने मुझे 'धृतराष्ट्र-पुत्र' कहकर अंधा होने का सम्बोधन किया है। पाण्डव मेरा उपहास करें और मैं निःसहाय होकर सहन करता रहूं? मैं अब सहन नही कर सकता।"

"ऐसा न समझो। तुम्हारा राज्य-वैभव पाण्डवों से कम नही है। तुम्हारे आज्ञाकारी भाई हैं, सेना है, सेवक हैं। तुम्हें ईर्ष्या क्यों हो रही है? पाण्डवों ने तो यह राज्य-वैभव अपने बाहुबल से ही तो अर्जित किया है। तुमने तो केवल खाण्डव वन का प्रदेश ही उन्हें सौंपा था। तुम्हारे पास भी उनसे अधिक सैन्य बल, कोष, दुर्ग, मंत्रीगण और मित्र हैं।" सुबलपुत्र शकुनि ने उसे धैर्य देते हुए कहा।

"नहीं मामाजी, क्षत्रिय को शत्रु का बल-वैभव शूल के समान चुभता है। पाण्डव मेरे शत्रु हैं। उनका उत्कर्ष मैं सहन नहीं कर सकता। तुम हस्तिनापुर लौट जाओ।" दुर्योधन निराश-सा बोला।

"सुयोधन, तुम उन्हें युद्ध में परास्त नहीं कर सकते। फिर उनसे बदला कैसे लोगे?" शकुनि बोला।

"इसीलिए मैं विनय कर रहा हूं कि मेरी आशा छोड़कर आप हस्तिनापुर लौट जाएं। मैं अग्नि में प्रवेश कर आत्महत्या करूंगा।" दुर्योधन बहुत हताश हो रहा था।

शकुनि ने दुर्योधन के मन में लहराते हुए शोक-समुद्र को पहचान लिया था। उसमें बदले की भावना का ग्राह छिपा बैठा था। ईर्ष्या की दावाग्नि जब वन को जलाती है तो वीरता के पुष्प झुलस जाते हैं। कपट, छल, प्रपंच की राख का ढेर बाकी रह जाता है।

शकुनि बोला, "वत्स, तुम चिंतित न हो। मैं जानता हूं कि तुम किस उपाय से उन्हें पराजित कर सकते हो।"

"मामाजी, अब आप ही मेरे सहायक बनो। पाण्डवों का कैसे पराभव होगा, इसका कोई उपाय आप ही बताओ।" दुर्योधन ने विनयपूर्वक कहा।

"सुनो वत्स! कुंतीपुत्र युधिष्ठिर को जुआ का खेल बहुत प्रिय है। मैं जुआ के खेल में बहुत प्रवीण हूं। तुम महाराज से कहकर पाण्डवों को द्यूतक्रीड़ा का निमंत्रण भिजवाओ। युधिष्ठिर उस निमंत्रण को स्वीकार कर लेंगे।"

शकुनि की इस गहरी चाल को सुनकर दुर्योधन को ढाढस बंधा। वह शकुनि के साथ हस्तिनापुर लौट गया।

तेईस

गंधार-नरेश शकुनि ने इन्द्रप्रस्थ से लौटकर राजकुमार सुयोधन की मानसिक पीड़ा धृतराष्ट्र को बता दी। धृतराष्ट्र ने सुयोधन को बुलाकर उसके चिंतित होने का कारण पूछा। उन्होंने कहा, "पुत्र, यह कुरुराज्य आर्यावर्त्त में श्रेष्ठ है जिसका दायित्व तुम्हारे कंधों पर आयेगा। फिर तुम्हारी मनोव्यथा का कारण क्या है?"

दुर्योधन ने धृतराष्ट्र को प्रणाम करके कहा, "इस श्रेष्ठ कुरुराज्य को नष्ट करने के लिए घर में ही शत्रु पैदा हो गये हैं। युधिष्ठिर को सम्राट-पद प्राप्त होते ही समस्त पाण्डव प्रमत्त हो गये हैं। उन्होंने सभाभवन में पग-पग पर मेरा अपमान किया है। मुझे धृतराष्ट्र-पुत्र कह कर अंधा बताया गया। यह अपमान असहनीय है।"

"पुत्र, सम्राट-पद पर तुम्हारे भाई युधिष्ठिर ही तो प्रतिष्ठित हैं। यह कौरव-कुल का यशवर्धन ही तो है जो देश-देशान्तर मे फैला है। पाण्डुपुत्रो ने तो अपने बाहुबल से ही राज्य-लक्ष्मी को अर्जित किया है। तुम्हें शोक क्यो है?" धृतराष्ट्र ने सान्त्वना देते हुए कहा।

"महाराज, मनुष्य धनमद, बलमद, राज्यमद के नशे मे अपना विवेक खो बैठता है। इनमें राज्यमद को संभालना बहुत कठिन है। पाण्डवो को जब से राज्य प्राप्त हुआ है, तभी से वे पड़ोसी राज्यों को जीतकर ऐश्वर्यवान हो गये है। सम्राट-पद प्राप्त होते ही पाण्डवों का विवेक नष्ट हो गया। वे मुझे अपना शत्रु मानने लगे हैं और कौरवकुल से पृथक् पाण्डव सामाज्य बनाना चाहते हैं। मैं अपमान का प्रतिशोध अवश्य करूंगा अन्यथा पिताश्री मेरे जीवित रहने की आशा छोड़ दें।"

"पुत्र, तुम जीवन से निराश हो रहे हो। पाण्डवों से भय तुम्हारे मन मे छिपी कुंठा का परिणाम है। वे धर्मनिष्ठ है, बलवान हैं और न्यायप्रिय हैं। घर की फूट विनाशकारी होती है।" धृतराष्ट्र ने समझाते हुए कहा।

"पिताश्री, मैं भरतकुल में उत्पन्न हुआ हूं। भरतवंश आर्यावर्त्त मे श्रेष्ठ माना जाता है। क्षत्रिय का धर्म है कि वह अपने शत्रु को परास्त करके अपने राज्य का वर्धन करे, प्रजा के क्लेश का हरण करे। संतोष मनुष्य की उन्नति मे बाधक होता है, वह निष्क्रिय हो जाता है। अपने शत्रु पाण्डवों की राज्य-लक्ष्मी को देखकर मेरे हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला जलने लगी है। मैं पाण्डवों के साथ द्यूतक्रीड़ा खेल कर उनका राज्य हरण करूंगा। इसमे गंधार-राजा शकुनि मेरे सहायक होगे। वे द्यूतक्रीड़ा में प्रवीण हैं।"

धृतराष्ट्र दुर्योधन की प्रकृति से परिचित थे। वह जानते थे कि दुर्योधन बहुत अमर्षशील है और पाण्डवो से बाल्यकाल से द्वेष करता है। उन्हे लाक्षागृह मे पाण्डवों के जलाने के षड्यंत्र का भी स्मरण हो आया। वह पाण्डवो से भयभीत है और छल से उन्हें नीचा दिखाना चाहता है। वे जानते थे कि पितामह भीष्म, विदुर आदि जुआ का कभी समर्थन नही करेंगे। वे बोले—"जुआ के खेल से वैर-विरोध का जन्म होता है। तुम पाण्डवों को जुआ मे हराकर शत्रुता के बीज बोओगे।"

"पिताश्री, क्षत्रिय के भाग्य का निर्णय रणभूमि में ही होता है। मैं पाण्डवों से अंतिम निर्णय रणभूमि में ही करूंगा। मैं जुए के द्वारा उनकी राज्य-लक्ष्मी का हरण करके उन्हें धन-बल से हीन कर दूंगा। फिर भला कौन उनका सहायक होता है?"

धृतराष्ट्र के सद्प्रयास का दुर्योधन पर कोई प्रभाव नही हुआ। उन्होंने पुनः कुलगौरव के प्रति सम्मान उत्पन्न करने का प्रयास किया, "तात्, कौरव और

पाण्डव तो एक ही कुल के हैं। पराया धन छल से हरण करना नीच मनुष्यों का काम है। धर्म से अर्जित किया हुआ धन पल्लवित होकर फल-फूल देने वाला होता है। कौरव-पाण्डव इस कुरुकुल की भुजाएं हैं। तुम कुरुकुल में विनाश के बीज मत बोओ।"

"महाराज, आप विदुर से सुनी हुई नीति का पाठ मुझे पढ़ा रहे हैं। जैसे एक नौका से बंधी हुई नौका उसी के साथ चलती है, वैसे ही आप विदुरजी की सम्मति पर चल रहे हैं। उन्होंने राजसूय यज्ञ में आपकी अग्रपूजा न करके कृष्ण की अग्र-पूजा कराई। वे शत्रु की भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। यदि आप उन्हें द्यूत-क्रीड़ा के लिए निमंत्रण नहीं भेजते, तो मैं ही सदैव के लिए आपके समक्ष से चला जाता हूं।" दुर्योधन ने धृतराष्ट्र को निरुत्तर कर दिया।

धृतराष्ट्र पुत्र का मोह न त्याग सके। वे पाण्डवों को जुआ खेलने के लिए आमंत्रित करने को तत्पर हो गये।

चौबीस

जुआ खेलने के लिए नवीन भवन का निर्माण कराया गया था। पांडवों का उस भवन में बहुत स्वागत किया गया। शकुनि युधिष्ठिर के साथ सभी पाडुपुत्रों को विचित्र चित्रकारी दिखाता हुआ उसकी प्रशंसा कर रहा था। मणि-निर्मित मंचों पर अन्य राजा विविंशत, चित्रसेन, सत्यव्रत, पुरुमित्र आदि विराजमान थे। एक ओर सभी कौरव बैठे थे। सभासद, मंत्रीगण, अपने स्थानों पर विराजमान थे। उसी समय महाराज धृतराष्ट्र के साथ भीष्म, द्रोण, विदुर, कृपाचार्य भी अपने-अपने मंचों पर आसीन हो गये। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव ने पितामह भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रोण, विदुर आदि की चरणवंदना की। महाराज धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा, "वत्स मैंने तुम्हारे सभाभवन की भांति यह सभा-भवन तैयार कराया है। कुछ समय तक तुम यहां निवास करो। अपने भाई सुयोधन एवं अन्य राजाओं के साथ द्यूतक्रीड़ा से मन बहलाओ। मैं तुम्हें यहां पाकर बहुत प्रसन्न हूं।"

युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र से कहा, "महाराज, आप मेरे पितातुल्य हैं। आपसे मिलकर हम सब बहुत प्रसन्न हैं। हम सदैव आपकी आज्ञा के अनुगामी हैं।"

उसी समय सुबलपुत्र शकुनि ने उठकर युधिष्ठिर से कहा, "महाराज युधिष्ठिर, हम सब आपकी प्रतीक्षा में थे। इस नवीन सभाभवन में हम तुम्हारे साथ पासे फेंककर जुआ खेलने को लालायित हैं। सामने चौक पर सुन्दर वस्त्र बिछा है। आइए हम तुम्हारे साथ जुआ खेलकर मनबहलाव करें।" युधिष्ठिर ने कहा—

"राजन, जुआ तो छलपूर्ण मनोविनोद है। इससे स्वजनों मे कलह होती है। तुम इसके प्रशंसक बन रहे हो ?"

शकुनि हंसकर बोला, "महाराज, जुआ राजाओं का मनोविनोद है। जय-पराजय वीरों का सदैव कर्म रहा है। क्या कोई पंगु विजय के सुख को भोग सकता है?"

"वीरों की जय-पराजय तो रणभूमि में होती है। यह तो धन हड़पने का छलपूर्ण कार्य है। जिस धन से राजा प्रजा की भलाई कर सकता है, उसे तुम जुए में हड़पने को मनोविनोद कहते हो?" युधिष्ठिर ने हंसते हुए कहा।

"महाराज युधिष्ठिर, क्या एक विद्वान दूसरे विद्वान को धूर्तता से जीतने जाता है? अस्त्रविद्या मे निपुण एक अनाड़ी को, विद्वान मूर्ख को अपनी चतुराई से ही जीतता है। इसको कोई धूर्तता क्यों नही कहता? आप तो द्यूतक्रीड़ा मे निपुण हैं। क्या आप सोचते हैं कि आपको धूर्तता से जीत लिया जायेगा? यदि आप हमसे द्यूत खेल खेलने से भयभीत हैं तो आप न खेलें।" शकुनि ने चुनौती-भरे स्वर में कहा।

युधिष्ठिर को लगा कि शकुनि मुझे द्यूतक्रीड़ा के खेलने में भयभीत मान बैठा है। उन्होने अपने मन मे जुआ खेलने का निर्णय ले लिया। वे बोले—"महाराज धृतराष्ट्र ने मुझे इस सभाभवन मे जुआ खेलने को निमन्त्रित किया है। मैं चुनौती देने पर पीछे नही हटूंगा। यह बताओ, मुझे किसके साथ जुआ खेलना है?"

दुर्योधन ने कहा, "महाराज, मैं जुआ खेलने को धन दांव पर लगाऊंगा, परंतु मेरी ओर से पांसे फेंकेंगे मामा शकुनि।"

"तात, यह उचित नही है। तुम स्वयं पांसे क्यों नही फेंकोगे?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"मैं पांसे फेंकने में कुशल नही हूं। अतः मेरी ओर से मामा पासे फेकेंगे। धन तो मेरा ही लगेगा। यदि आप भी किसी अन्य से पांसे फिकवाना चाहें तो मुझे स्वीकार है।" दुर्योधन ने प्रस्ताव रखा।

युधिष्ठिर निरुत्तर हो गये। उन्होने यह शर्त मान ली। पहले शकुनि को ही पांसे फेंकने को मिले। युधिष्ठिर ने कातिमय मणि-रत्नों से बना हार दांव पर लगा दिया। दुर्योधन ने भी बहुत-सी मणियां दांव पर लगा दी। शकुनि ने पांसे हाथ में लेकर हंसकर स्वच्छ वस्त्र पर फेंके। "लो यह दाव मैंने जीत लिया।" शकुनि बोला।

युधिष्ठिर बोले, "शकुनि, तुमने यह दांव छल से जीता है। लो यह मेरी सहस्रों निष्कों से भरी पेटी दांव पर है। अब मैं सावधान हूं।"

शकुनि ने फिर पांसे अपने हाथ मे ले लिए। उसने उछालकर पांसे फेंक दिए। "लो यह दांव भी मैंने जीत लिया। अब तो कोई छल नही किया?"

युधिष्ठिर लज्जित होकर उसकी ओर देखते रह गये। जैसे घृत डालने से अग्नि मे लपटें तीव्र होती हैं, वैसे ही हार में जुआरी का उत्साह जीत के लालच में और बढ़ जाता है। "गगाधर-नरेश शकुनि, मेरे एक सहस्र सुवर्ण-अम्बारी से विभूषित हाथी दाव पर लगे हैं।" युधिष्ठिर उत्कंठित होकर बोले।

शकुनि ने पुनः चतुराई से पांसे फेंके।

"लो कुतीनन्दन, यह दाव भी मुझे मिला।"

युधिष्ठिर दांव जीतने के लोभ मे जुए से हट नही रहे थे। इस सभागार मे राजाओ के सम्मुख वे कैसे मना करें? उन्होंने पुनः उत्साह में भरकर कहा—"हे सुबलपुत्र, मेरे एक सहस्र रथ हैं, जिनकी ध्वजाए स्वर्णदण्ड से मंडित हैं। मैं इन्हें दाव पर लगाता हूं।"

शकुनि ने कहा, स्वीकार है। पुनः उसने दांव पर पांसे फेंके। पुनः यह दांव शकुनि ने जीता। वह बोला, "महाराज, यह दांव भी मैंने जीत लिया।"

युधिष्ठिर लज्जा और ग्लानि से सकुचा रहे थे। उनकी प्रतिष्ठा जा रही थी। वे किसी तरह दांव को प्राप्त करने के लालच मे पुनः-पुनः अकुला कर दांव लगा रहे थे। जुआरियो की भाति युधिष्ठिर की प्रवृत्ति भी नीच हो गई थी। उन्होने तुरन्त एक सहस्र गंधार देश के घोड़े, जो चित्रसेन गंधर्व ने समर्पित किए थे, दांव पर लगा दिये। शकुनि ने पुनः पांसे फेंके।

"लो धर्मराज, यह दांव भी मैंने ही जीता।"

युधिष्ठिर ने आवेश मे आकर अपना खजाना, जिसमे चार-चार सौ लोहे-तांबे की पेटियों मे पाच-पाच द्रोण सोना भरा था, सभी दांव पर लगा दिया। शकुनि ने पूर्ण निश्चय के साथ पांसे फेंके और वह दांव भी जीत लिया। वह हर्ष मे भरकर बोला, "लो पाण्डुपुत्र, यह दांव भी मैंने ही जीता।"

धृतराष्ट्र इस जीत-हार को अपने कानों से सुनकर प्रसन्न हो रहे थे, क्योंकि उनके पुत्र दुर्योधन की जीत हो रही थी। विदुर जी इस जुए के खेल से भयभीत हो गये। वे बोले, "महाराज, रोकिए इस जुआ के खेल को। यह जुआ कुरुवंश के विनाश का कारण बनेगा। दुर्योधन जीत की खुशी मे अज्ञानवश वृक्ष पर मधु के लोभ में चढ़ रहा है। वह उस वृक्ष से नीचे भी गिर सकता है। धन के लोभ में दुर्योधन पाण्डवों से वैर करने पर तुला है। परधन विष के तुल्य है। यह शकुनि इस जुआ का मूल है जो दुर्योधन को उत्साहित कर रहा है। यह तो कुरुवंश का विनाश चाहता है। शकुनि को अपने राज्य गंधार देश भेज दीजिए।"

दुर्योधन आवेश मे भरकर बोला—"आप हमारे कुल मे सर्प के समान हो। हमारा अन्न खाकर हमारा ही अहित चाहते हो। जो शत्रु का पक्षपाती हो, स्वामी का अहित चाहता हो, ऐसे मनुष्य को घर मे नही रखना चाहिए। आप

उस कुलटा स्त्री के समान हो जो अपने पति को छोड़कर चली जाती है। आपकी जहां इच्छा हो चले जाइए।" विदुर ने पुनः दुर्योधन से कहा, "राजकुमार, तुम अपने हितैषियो की बात सुनना नही चाहते। विनाश काले विपरीत बुद्धि। जब रोगी का अन्तकाल आता है तो वह पथ्य की चिन्ता नही करता। ये मित्र बनकर प्रिय वचन कहने वाले तुम्हें मृत्युपाश में बांध रहे हैं।"

धृतराष्ट्र मौन बने थे। वह अपने पुत्र की जीत से सुख का अनुभव कर रहे थे। शकुनि ने युधिष्ठिर को उकसाते हुए कहा—"महाराज, अब तो तुम खजाना भी हार गये। अब दांव पर क्या लगाओगे?" युधिष्ठिर बोले—"शकुनि, मेरे पास अभी बहुत धन है। सिन्धु नदी के तट से पर्णाशा तक जो बैल, घोड़े, गाय, भेड़ एवं प्रदेश हैं, वह सभी मैं अपने पूर्व धन को जीतने के लिए दांव पर लगाता हूं।" शकुनि ने पुनः पासे हाथ में लिए। वह पासे को फेंककर बोला, "लो यह सिन्ध प्रदेश और उसका वैभव भी मैंने जीत लिया।" युधिष्ठिर अपनी हार से बेचैन हो उठे। परन्तु वे अब भी हार मानने को तैयार नही थे। उन्होने ब्राह्मणों को दान में दी हुई भूमि को छोड़कर अपने राज्य की समस्त भूमि दांव पर लगा दी। वह भूमि भी शकुनि ने पांसा फेंककर जीत ली।

अब युधिष्ठिर के पास कोई धन शेष नही बचा। हारे जुआरी की तरह वह सब कुछ दांव पर लगाने पर तुले हुए थे। उन्होंने अपने प्रिय भाई भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव को भी दांव पर लगा दिया। युधिष्ठिर उन्हे भी हार गये। शकुनि हर्ष में भरकर बोला—"राजन्, अब तो तुम सब कुछ हार चुके हो। अब तुम्हारे पास कौन-सा धन शेष रहा है?" युधिष्ठिर बोले, "अब मैं स्वय को दाव पर लगाता हूं। यदि मैं जीतता हूँ तो मेरे भाई, राज्यकोप, समस्त भूमि, धन-सम्पत्ति मुझे वापिस मिलनी चाहिए।"

शकुनि ने फिर पासे फेंके। "लो राजन्, "तुम स्वयं को भी हार गये।"

युधिष्ठिर लज्जित बैठे थे। शकुनि ने उन्हे और उकसाया, "राजन्, अभी तुम्हारा बहुमूल्य धन शेष है। तुम चाहो तो महारानी द्रौपदी को भी दाव पर लगा सकते हो।"

युधिष्ठिर को लज्जा के मारे कुछ नही सूझ रहा था। उन्होंने द्रौपदी को भी दाव पर लगाना स्वीकार कर लिया। उधर सभी राजाओं ने युधिष्ठिर को धिक्कारा। विदुर भी अपना मस्तक थाम कर बैठे थे। भीष्म ने इस घटना की निंदा की। शकुनि ने पांसे फेंककर कहा, "लो राजन्, तुम द्रौपदी को भी हार गये।"

कर्ण और दुःशासन हर्ष से नाचने लगे। दुर्योधन बहुत प्रसन्न था। उसके जीवन की सारी अभिलाषा पूरी हो गई। अब पाण्डव मेरे दास बनकर रहेगे। सभा मे सन्नाटा छा गया।

युधिष्ठिर लज्जित होकर उसकी ओर देखते रह गये। जैसे घृत डालने से अग्नि में लपटें तीव्र होती हैं, वैसे ही हार में जुआरी का उत्साह जीत के लालच में और बढ़ जाता है। "गंगाधर-नरेश शकुनि, मेरे एक सहस्र सुवर्ण-अम्बारी से विभूषित हाथी दांव पर लगे हैं।" युधिष्ठिर उत्कंठित होकर बोले।

शकुनि ने पुनः चतुराई से पांसे फेंके।

"लो कुंतीनन्दन, यह दांव भी मुझे मिला।"

युधिष्ठिर दांव जीतने के लोभ में जुए से हट नहीं रहे थे। इस सभागार में राजाओं के सम्मुख वे कैसे मना करें? उन्होंने पुनः उत्साह में भरकर कहा—"हे सुबलपुत्र, मेरे एक सहस्र रथ हैं, जिनकी ध्वजाएं स्वर्णदण्ड से मंडित हैं। मैं इन्हें दांव पर लगाता हूं।"

शकुनि ने कहा, स्वीकार है। पुनः उसने दांव पर पांसे फेंके। पुनः यह दांव शकुनि ने जीता। वह बोला, "महाराज, यह दांव भी मैंने जीत लिया।"

युधिष्ठिर लज्जा और ग्लानि से सकुचा रहे थे। उनकी प्रतिष्ठा जा रही थी। वे किसी तरह दांव को प्राप्त करने के लालच में पुनः-पुनः अकुला कर दांव लगा रहे थे। जुआरियों की भांति युधिष्ठिर की प्रवृत्ति भी नीच हो गई थी। उन्होंने तुरन्त एक सहस्र गधार देश के घोड़े, जो चित्रसेन गंधर्व ने समर्पित किए थे, दांव पर लगा दिये। शकुनि ने पुनः पांसे फेंके।

"लो धर्मराज, यह दांव भी मैंने ही जीता।"

युधिष्ठिर ने आवेश में आकर अपना खजाना, जिसमें चार-चार सौ लोहे-तांबे की पेटियों में पांच-पांच द्रोण सोना भरा था, सभी दांव पर लगा दिया। शकुनि ने पूर्ण निश्चय के साथ पांसे फेंके और वह दांव भी जीत लिया। वह हर्ष में भरकर बोला, "लो पाण्डुपुत्र, यह दांव भी मैंने ही जीता।"

धृतराष्ट्र इस जीत-हार को अपने कानों से सुनकर प्रसन्न हो रहे थे, क्योंकि उनके पुत्र दुर्योधन की जीत हो रही थी। विदुर जी इस जुए के खेल से भयभीत हो गये। वे बोले, "महाराज, रोकिए इस जुआ के खेल को। यह जुआ कुरुवंश के विनाश का कारण बनेगा। दुर्योधन जीत की खुशी में अज्ञानवश वृक्ष पर मधु के लोभ में चढ़ रहा है। वह उस वृक्ष से नीचे भी गिर सकता है। धन के लोभ में दुर्योधन पाण्डवों से वैर करने पर तुला है। परधन विष के तुल्य है। यह शकुनि इस जुआ का मूल है जो दुर्योधन को उत्साहित कर रहा है। यह तो कुरुवंश का विनाश चाहता है। शकुनि को अपने राज्य गंधार देश भेज दीजिए।"

दुर्योधन आवेश में भरकर बोला—"आप हमारे कुल में सर्प के समान हो। हमारा अन्न खाकर हमारा ही अहित चाहते हो। जो शत्रु का पक्षपाती हो, स्वामी का अहित चाहता हो, ऐसे मनुष्य को घर में नहीं रखना चाहिए। आप

उस कुलटा स्त्री के समान हो जो अपने पति को छोड़कर चली जाती है। आपकी जहां इच्छा हो चले जाइए।" विदुर ने पुनः दुर्योधन से कहा, "राजकुमार, तुम अपने हितैषियों की बात सुनना नहीं चाहते। विनाश काले विपरीत बुद्धि। जब रोगी का अन्तकाल आता है तो वह पथ्य की चिन्ता नही करता। ये मित्र बनकर प्रिय वचन कहने वाले तुम्हें मृत्युपाश में बांध रहे हैं।"

धृतराष्ट्र मौन बने थे। वह अपने पुत्र की जीत से सुख का अनुभव कर रहे थे। शकुनि ने युधिष्ठिर को उकसाते हुए कहा—"महाराज, अब तो तुम खजाना भी हार गये। अब दांव पर क्या लगाओगे?" युधिष्ठिर बोले—"शकुनि, मेरे पास अभी बहुत धन है। सिन्धु नदी के तट से पर्णाशा तक जो बैल, घोड़े, गाय, भेड़ एवं प्रदेश हैं, वह सभी मैं अपने पूर्व धन को जीतने के लिए दांव पर लगाता हूं।" शकुनि ने पुनः पांसे हाथ में लिए। वह पांसे को फेंककर बोला, "लो यह सिन्ध प्रदेश और उसका वैभव भी मैंने जीत लिया।" युधिष्ठिर अपनी हार से बेचैन हो उठे। परन्तु वे अब भी हार मानने को तैयार नही थे। उन्होने ब्राह्मणों को दान में दी हुई भूमि को छोड़कर अपने राज्य की समस्त भूमि दाव पर लगा दी। वह भूमि भी शकुनि ने पांसा फेंककर जीत ली।

अब युधिष्ठिर के पास कोई धन शेष नही बचा। हारे जुआरी की तरह वह सब कुछ दांव पर लगाने पर तुले हुए थे। उन्होंने अपने प्रिय भाई भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव को भी दांव पर लगा दिया। युधिष्ठिर उन्हे भी हार गये। शकुनि हर्ष मे भरकर बोला—"राजन्, अब तो तुम सब कुछ हार चुके हो। अब तुम्हारे पास कौन-सा धन शेष रहा है?" युधिष्ठिर बोले, "अब मैं स्वयं को दांव पर लगाता हूं। यदि मैं जीतता हूँ तो मेरे भाई, राज्यकोष, समस्त भूमि, धन-सम्पत्ति मुझे वापिस मिलनी चाहिए।"

शकुनि ने फिर पासे फेंके। "लो राजन्, "तुम स्वयं को भी हार गये।"

युधिष्ठिर लज्जित बैठे थे। शकुनि ने उन्हे और उकसाया, "राजन्, अभी तुम्हारा बहुमूल्य धन शेष है। तुम चाहो तो महारानी द्रौपदी को भी दांव पर लगा सकते हो।"

युधिष्ठिर को लज्जा के मारे कुछ नही सूझ रहा था। उन्होंने द्रौपदी को भी दाव पर लगाना स्वीकार कर लिया। उधर सभी राजाओं ने युधिष्ठिर को धिक्कारा। विदुर भी अपना मस्तक थाम कर बैठे थे। भीष्म ने इस घटना की निंदा की। शकुनि ने पांसे फेंककर कहा, "लो राजन्, तुम द्रौपदी को भी हार गये।"

कर्ण और दुःशासन हर्ष से नाचने लगे। दुर्योधन बहुत प्रसन्न था। उसके जीवन की सारी अभिलाषा पूरी हो गई। अब पाण्डव मेरे दास बनकर रहेंगे। सभा मे सन्नाटा छा गया।

युधिष्ठिर लज्जित होकर उसकी ओर देखते रह गये। जैसे घृत डालने से अग्नि मे लपटें तीव्र होती हैं, वैसे ही हार में जुआरी का उत्साह जीत के लालच मे और बढ़ जाता है। "गंगाधर-नरेश शकुनि, मेरे एक सहस्र सुवर्ण-अम्बारी से विभूषित हाथी दांव पर लगे हैं।" युधिष्ठिर उत्कंठित होकर बोले।

शकुनि ने पुनः चतुराई से पांसे फेंके।

"लो कुंतीनन्दन, यह दाव भी मुझे मिला।"

युधिष्ठिर दाव जीतने के लोभ मे जुए से हट नही रहे थे। इस सभागार मे राजाओं के सम्मुख वे कैसे मना करें? उन्होंने पुनः उत्साह मे भरकर कहा—"हे सुबलपुत्र, मेरे एक सहस्र रथ हैं, जिनकी ध्वजाएं स्वर्णदण्ड से मंडित हैं। मैं इन्हें दांव पर लगाता हूं।"

शकुनि ने कहा, स्वीकार है। पुनः उसने दांव पर पांसे फेंके। पुनः यह दांव शकुनि ने जीता। वह बोला, "महाराज, यह दांव भी मैंने जीत लिया।"

युधिष्ठिर लज्जा और ग्लानि से सकुचा रहे थे। उनकी प्रतिष्ठा जा रही थी। वे किसी तरह दांव को प्राप्त करने के लालच मे पुनः-पुनः अकुला कर दांव लगा रहे थे। जुआरियो की भांति युधिष्ठिर की प्रवृत्ति भी नीच हो गई थी। उन्होने तुरन्त एक सहस्र गंधार देश के घोड़े, जो चित्रसेन गंधर्व ने समर्पित किए थे, दाव पर लगा दिये। शकुनि ने पुनः पांसे फेंके।

"लो धर्मराज, यह दाव भी मैंने ही जीता।"

युधिष्ठिर ने आवेश मे आकर अपना खजाना, जिसमे चार-चार सौ लोहे-तांबे की पेटियों मे पाच-पाच द्रोण सोना भरा था, सभी दांव पर लगा दिया। शकुनि ने पूर्ण निश्चय के साथ पांसे फेंके और वह दांव भी जीत लिया। वह हर्ष मे भरकर बोला, "लो पाण्डुपुत्र, यह दांव भी मैंने ही जीता।"

धृतराष्ट्र इस जीत-हार को अपने कानों से सुनकर प्रसन्न हो रहे थे, क्योंकि उनके पुत्र दुर्योधन की जीत हो रही थी। विदुर जी इस जुए के खेल से भयभीत हो गये। वे बोले, "महाराज, रोकिए इस जुआ के खेल को। यह जुआ कुरुवंश के विनाश का कारण बनेगा। दुर्योधन जीत की खुशी में अज्ञानवश वृक्ष पर मधु के लोभ में चढ़ रहा है। वह उस वृक्ष से नीचे भी गिर सकता है। धन के लोभ मे दुर्योधन पाण्डवों से वैर करने पर तुला है। परधन विष के तुल्य है। यह शकुनि इस जुआ का मूल है जो दुर्योधन को उत्साहित कर रहा है। यह तो कुरुवंश का विनाश चाहता है। शकुनि को अपने राज्य गंधार देश भेज दीजिए।"

दुर्योधन आवेश मे भरकर बोला—"आप हमारे कुल में सर्प के समान हो। हमारा अन्न खाकर हमारा ही अहित चाहते हो। जो शत्रु का पक्षपाती हो, स्वामी का अहित चाहता हो, ऐसे मनुष्य को घर में नही रखना चाहिए। आप

उस कुलटा स्त्री के समान हो जो अपने पति को छोड़कर चली जाती है। आपकी जहां इच्छा हो चले जाइए।" विदुर ने पुनः दुर्योधन से कहा, "राजकुमार, तुम अपने हितैपियों की बात सुनना नही चाहते। विनाश काले विपरीत बुद्धि। जब रोगी का अन्तकाल आता है तो वह पथ्य की चिन्ता नही करता। ये मित्र बनकर प्रिय वचन कहने वाले तुम्हें मृत्युपाश में बांध रहे हैं।"

धृतराष्ट्र मौन बने थे। वह अपने पुत्र की जीत से सुख का अनुभव कर रहे थे। शकुनि ने युधिष्ठिर को उकसाते हुए कहा—"महाराज, अब तो तुम खजाना भी हार गये। अब दांव पर क्या लगाओगे?" युधिष्ठिर बोले—"शकुनि, मेरे पास अभी बहुत धन है। सिन्धु नदी के तट से पर्णाशा तक जो बैल, घोड़े, गाय, भेड़ एवं प्रदेश हैं, वह सभी मैं अपने पूर्व धन को जीतने के लिए दाव पर लगाता हूं।" शकुनि ने पुनः पासे हाथ में लिए। वह पांसे को फेंककर बोला, "लो यह सिन्ध प्रदेश और उसका वैभव भी मैंने जीत लिया।" युधिष्ठिर अपनी हार से बेचैन हो उठे। परन्तु वे अब भी हार मानने को तैयार नही थे। उन्होंने ब्राह्मणों को दान में दी हुई भूमि को छोड़कर अपने राज्य की समस्त भूमि दांव पर लगा दी। वह भूमि भी शकुनि ने पांसा फेंककर जीत ली।

अब युधिष्ठिर के पास कोई धन शेप नही बचा। हारे जुआरी की तरह वह सब कुछ दाव पर लगाने पर तुले हुए थे। उन्होंने अपने प्रिय भाई भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव को भी दांव पर लगा दिया। युधिष्ठिर उन्हे भी हार गये। शकुनि हर्ष मे भरकर बोला—"राजन्, अब तो तुम सब कुछ हार चुके हो। अब तुम्हारे पास कौन-सा धन शेष रहा है?" युधिष्ठिर बोले, "अब मैं स्वय को दाव पर लगाता हूं। यदि मैं जीतता हूँ तो मेरे भाई, राज्यकोष, समस्त भूमि, धन-सम्पत्ति मुझे वापिस मिलनी चाहिए।"

शकुनि ने फिर पासे फेंके। "लो राजन्, "तुम स्वयं को भी हार गये।"

युधिष्ठिर लज्जित बैठे थे। शकुनि ने उन्हें और उकसाया, "राजन्, अभी तुम्हारा बहुमूल्य धन शेप है। तुम चाहो तो महारानी द्रौपदी को भी दांव पर लगा सकते हो।"

युधिष्ठिर को लज्जा के मारे कुछ नही सूझ रहा था। उन्होने द्रौपदी को भी दाव पर लगाना स्वीकार कर लिया। उधर सभी राजाओं ने युधिष्ठिर को धिक्कारा। विदुर भी अपना मस्तक थाम कर बैठे थे। भीष्म ने इस घटना की निंदा की। शकुनि ने पांसे फेंककर कहा, "लो राजन्, तुम द्रौपदी को भी हार गये।"

कर्ण और दुःशासन हर्ष से नाचने लगे। दुर्योधन बहुत प्रसन्न था। उसके जीवन की सारी अभिलाषा पूरी हो गई। अब पाण्डव मेरे दास बनकर रहेंगे। सभा मे सन्नाटा छा गया।

पच्चीस

प्रातिकामी द्रौपदी के भवन मे पहुंचकर उन्हें अभिवादन करके बोला, "हे राजेश्वरी, महाराज युधिष्ठिर जुआ में समस्त राजपाट, भाई और स्वयं को हार गये हैं। वह जुआ में दाव पर लगाकर आपको भी हार गये हैं। अब राजा दुर्योधन ने आपको सभाभवन मे उपस्थित होने की आज्ञा दी है।"

द्रौपदी यह सुनकर भौचक्की रह गई। "हे सूतपुत्र, यह क्या सुना रहे हो? महाराज युधिष्ठिर धर्मनिष्ठ हैं। वह कैसे यह अधर्म का कार्य कर सकते हैं? तुम महाराज से यह पूछना कि जुआ में पहले आप स्वयं को हारे थे या मुझे? तुम जाओ।"

प्रातिकामी ने द्रौपदी के वचन सभाभवन मे जाकर सुना दिए। उस समय युधिष्ठिर सभा मे अचेत से मौन पड़े थे। दुर्योधन मदहोश हो रहा था। उसे सूतपुत्र से यह सुनकर क्रोध आ गया। वह गरजते हुए बोला, "यह प्रातिकामी मूर्ख है। दुःशासन, तुम जाओ और द्रौपदी को लाओ।"

दुःशासन यह आदेश सुनकर गर्व से द्रौपदी के भवन मे पहुंचा। उसके नेत्र लाल हो रहे थे। वह बोला, "पाञ्चालि, चलो, तुम्हें राजा सुयोधन ने बुलाया है। हमने तुम्हें जुआ मे जीत लिया है।"

दुर्योधन का कुटिल भाव समझ कर द्रौपदी काप गई। उसके मुख पर पसीने की बूदे झलक आईं। वह भयभीत होकर धृतराष्ट्र के भवन की ओर भागी जहा गांधारी के साथ रनिवास मे अन्य रानिया बैठी थी। दुःशासन गर्जता हुआ उसके पीछे भागा। उसने द्रौपदी के लम्बे लहराते केशो को पकड़ लिया। द्रौपदी चिल्लाई—"अरे दुष्ट दुःशासन, मैं रजस्वला हूं। एकवस्त्रा हू। तुझे नारी पर अत्याचार करते हुए लज्जा नही आती।"

दुःशासन ने कठोर स्वर मे कहा, "तू रजस्वला हो; एकवस्त्रा हो, चाहे नग्न हो। तू हमारी दासी है। तुझे राजमहल में दासियों के साथ रहना पड़ेगा।"

द्रौपदी चीख रही थी, "अरे नीच, क्या कुरुकुल की यही मर्यादा है? क्या वंश भरत का यही गौरव है? राजसभा में मेरे पिता तुल्य गुरुजन बैठे होंगे। अरे नीच, मैं उनके समक्ष कैसे जाऊंगी?"

दुःशासन के खीचने से द्रौपदी का वस्त्र भी खिसक गया था। वह इसी अवस्था मे द्रौपदी को खीचता हुआ राजसभा में ले आया।

द्रौपदी ने देखा, सभी पाण्डव लज्जित मौन बैठे हैं। युधिष्ठिर अचेत पृथ्वी पर पड़े हैं। भीष्म, विदुर, धृतराष्ट्र दूसरी ओर बैठे है। भीष्म ने द्रौपदी को देखकर नेत्र नीचे कर लिए। उन्हें बहुत पीड़ा हो रही थी। भीमसेन के नेत्र लाल हो रहे थे। वे मन ही मन युधिष्ठिर पर क्रुद्ध हो रहे थे। उन्होंने सहमा

सहदेव से कहा, "उठो सहदेव, अग्नि लाओ। आज मैं अपने धर्मज्ञ भाई की बाहुओं को अग्नि में जलाऊंगा। आज मैं धर्म के बंधन में बंधा हूं। अतः मुझे स्वयं पर ही क्रोध आता है। मैं दुःशासन को विध्वंस कर सकता हूं, परन्तु धर्म का सुमेरु मेरे सामने है।"

अर्जुन भीमसेन की मनोदशा देखकर कांप गये। वह भीम की बाहुओं को थामते हुए बोले, "भैया, यह तुम क्या कह रहे हो? मुख से ऐसी कठोर वाणी क्यों निकालते हो? भैया युधिष्ठिर पिता-तुल्य हैं। इन्हें क्षमा करो।"

"नही अर्जुन, यह भाई के रूप मे मुझे शत्रु दिखाई दे रहे हैं। इन्होने धन, वैभव, राजपाट, कोष, रथ, अश्व, गज, अपने भाई, सब कुछ दांव पर लगा दिए। इतने पर भी संतोष नही हुआ। द्रुपद कुमारी को भी हार गये। देखते नही हो द्रौपदी की दुरवस्था! बेचारी कदली दल सी काप रही हैं। आज मैं अपने भाई को ही दण्ड दूंगा।"

अर्जुन ने फिर भीमसेन को थामा—"भैया, जो विपत्ति में धैर्य नही खोते वही वीर होते हैं। दैव बहुत बलवान है। यह हमारी परीक्षा का अवसर है। देखो तुम्हारे वचन सुनकर कौरव हंस रहे हैं।"

अर्जुन की वाणी से भीमसेन शात हो गये। उनके नेत्रों मे अश्रु छलक आये।

द्रौपदी रुदन करती हुई बोली, "हे धर्मवेत्ता गुरुजन, हे महाराज धृतराष्ट्र, क्या कोई कुरुवंश में धर्म की बात कहने वाला नही है? नारी पर अत्याचार होते देख धर्म मौन क्यों है? यह दुष्ट दु.शासन अबला की प्रतिष्ठा भंग कर रहा है, इस सभा मे वीरों के मुख पर ताले पड़े हैं!"

कर्ण ने दु.शासन का साहस बढाते हुए कहा, "इन पाण्डवो के उत्तरीय उतार लो। द्रौपदी के वस्त्र खीच डालो।"

यह सुनकर पितामह भीष्म उठे। उनका मुखमण्डल क्रोध से तमतमा रहा था, "दुःशासन, द्रौपदी को छोड़ दो। धृतराष्ट्र, तुम इस राजसिंहासन पर आरूढ़ हो, तुम पर धर्म से राज्य चलाने का दायित्व है। युधिष्ठिर द्रौपदी को जुआ मे हारे हैं या नहीं, यह धर्म है या अधर्म, इसका निर्णय धर्मवेत्ता पुरोहित करें, परन्तु नारी के साथ यह निम्न आचरण घोर अनैतिक कर्म है। द्रौपदी कुरुकुल की वधू है। राजन्, इस अत्याचार को तुरंत रोकें।"

कौरवों के समूह से धृतराष्ट्र पुत्र विकर्ण खड़ा हो गया। उसने कहा, "पितामह ने धर्मयुक्त बात कही है। हे नरेशो! द्रौपदी ने हमारे सम्मुख प्रश्न उपस्थित कर दिया है। क्या पति स्वयं को हारकर अपनी पत्नी को दांव पर लगा सकता है? यहां धर्मधुरंधर मनीषी वृद्ध बैठे हैं। आप सब इसका निर्णय करें।"

सभा मे सब राजा लोग मौन बैठे थे। फिर विकर्ण ने कहा, "श्रेष्ठ भूपालो, राजाओ मे चार व्यसन होते हैं—शिकार खेलना, मदिरा पान करना, जुआ

खेलना, विषय-भोग में अनुरक्त होना। पाण्डुनंदन युधिष्ठिर जुए में ग्रस्त होकर स्वयं को हारकर देवी द्रौपदी को भी दांव पर लगाकर हार गये हैं। शकुनि ने ही युधिष्ठिर से द्रौपदी को भी दाव पर लगाने की बात कही थी। अतः मैं द्रुपदसुता कृष्णा को हारी हुई नही मानता।"

राजकुमार विकर्ण के वचन सुनकर वहां बैठे सभी लोग शकुनि को धिक्कारने लगे। कौरवगण कानाफूसी करने लगे। दुर्योधन का रंग फीका पड़ गया। शकुनि इधर-उधर देखने लगा। कर्ण ने तुरंत विकर्ण की भुजा पकड़ कर अपने पास बिठाया, "विकर्ण, तुम जिस वृक्ष पर बैठे हो, उसी को काटना चाहते हो? अरणि से उत्पन्न अग्नि उसी को जलाकर क्षार कर देती है। तुम धर्म का निर्णय करने वाले कौन हो? आचार्य द्रोण, भीष्म, विदुर, राजा धृतराष्ट्र सभी तो बैठे हैं।" धर्मपुत्र युधिष्ठिर अपने विषय मे ऐसी बातें सुनकर निस्तेज हो रहे थे।

उसी समय दुःशासन पुनः द्रौपदी को बलपूर्वक खीचने लगा। भीमसेन के नेत्र अंगारे के समान लाल हो गये। वे बोले—"हे नरेशो, यह दुष्ट दुःशासन भरतवंश का कलंक है। मैं धर्म से प्रतिबद्ध हूं अन्यथा मैं इसे अभी यमलोक पहुंचा देता। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं रणभूमि मे इसकी छाती फाड़कर रक्तपान करूंगा। यदि मैं ऐसा न करूं तो मुझे सद्गति प्राप्त न हो।"

युधिष्ठिर मौन बैठे थे। दुर्योधन भीम की प्रतिज्ञा सुनकर सहम गया। वह युधिष्ठिर के पास आकर बोला, "राजन् तुम्ही इसका निर्णय करो, क्या तुम द्रौपदी को दांव पर लगाकर नही हारे हो?" युधिष्ठिर निरुत्तर बने थे। दुर्योधन ने भीमसेन की वाणी का तिरस्कार करके अपनी बायी जंघा का वस्त्र उठाकर द्रौपदी को उस पर बैठने का संकेत किया। भीमसेन का क्रोध भभक उठा। वह बोले, "दुर्योधन, यदि रणभूमि मे इसी जघा को गदा से विदीर्ण करके यमलोक न भेजूं तो मुझे वीरो के पुण्यलोक प्राप्त न हो।"

धृतराष्ट्र अपने पुत्र की काली करतूत सुनकर क्रुद्ध स्वर में बोले, "हे मंदबुद्धि दुर्योधन, तू तो जीवित ही मृतक के समान है। तू अपने कुल की सती-साध्वी नारी, कुंतीपुत्र युधिष्ठिर की पत्नी द्रौपदी से पापपूर्ण व्यवहार करता है?" उन्होंने द्रौपदी को धैर्य देते हुए कहा, "श्रेष्ठ वधू द्रौपदी, तुम मेरी पुत्रवधुओं में सबसे बड़ी हो। तुम मुझसे वरदान मागो।"

द्रौपदी हाथ जोड़कर बोली—"हे भरतवंश-शिरोमणि महाराज, यदि आप प्रसन्न होकर वर दे रहे हैं, तो मैं चाहती हूं कि धर्मपरायण राजा युधिष्ठिर दासभाव से मुक्त कर दिए जाएं।"

धृतराष्ट्र बोले, "कल्याणी, ऐसा ही हो। मैं तुम्हें दूसरा वरदान मांगने की अनुमति देता हू।"

"हे राजन्, दूसरा वर यह प्रदान करें कि भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव भी दास-

भाव से मुक्त किए जाएं।"

"ऐसा ही होगा। देवी, तृतीय वर मांगो।"

"महाराज, क्षत्रिय कुमारी को दो वरदान मांगने का ही अधिकार है।"

"देवी, तृतीय वरदान मैं स्वयं अपनी ओर से तुम्हें प्रदान करता हूं। तुम्हारे पति और पाण्डुपुत्र हारे हुए राज्य, धन, वैभव को पुनः प्राप्त कर राजधानी को लौट जाएं और कुशलता से राज्य करें।"

द्रौपदी डूबते हुए जहाज की नाविक बनी। युधिष्ठिर ने दृष्टि ऊंची करके अपने ताऊ महाराज धृतराष्ट्र के चरणों में मस्तक रख दिया। धृतराष्ट्र बोले, "हे अजातशत्रो! तुम्हारे साथ दुर्योधन ने जो बर्ताव किया है वह अज्ञान के कारण किया है। उसे तुम हृदय से निकाल देना।"

धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को उचित सम्मान देकर रथ में बिठाकर इन्द्रप्रस्थ को विदा किया।

छब्बीस

दुर्योधन के मंत्रणाकक्ष मे कर्ण, शकुनि, दुःशासन बैठे महाराज धृतराष्ट्र की दयालुता पर शोक प्रगट कर रहे थे। कभी वे धृतराष्ट्र पर क्षोभ व्यक्त करते, कभी विदुर को दो जीभ वाला सर्प बताते। शकुनि बोला, "राजकुमार, पाण्डवों को मैंने चातुर्य के बल से हराया था। महाराज की बुद्धि बुढ़ापे के कारण शिथिल हो गई है।" कर्ण बोला, "महाराज पाण्डवों के प्रति सहृदयता दिखाते हैं। यह कौरवकुल को घातक सिद्ध होगा। विषधर सर्प को दूध पिलाने से भी वह काट लेता है।" दुर्योधन बोला, "गंधार-नरेश, अब तो भयंकर स्थिति है। वह धूर्त भीमसेन अपमान का बदला लेगा।" दुःशासन ने भी कहा, "मामाजी, यह बूढ़ा बाप तो हमारा विनाश ही कर देगा। अब कोई और उपाय सोचो।"

"राजकुमार, हम सब महाराज से कहें कि वे पुनः पाण्डवों को जुआ खेलने को बुलायें।" शकुनि ने दुर्योधन को उत्साहित किया।

ये चारों मंत्रणा करके महाराज धृतराष्ट्र के भवन में पहुंचे। दुर्योधन विनय-पूर्वक बोला, "पिताश्री, आपने पाण्डवों को राज्य लौटाकर कौरवों के मार्ग मे काटे बो दिए हैं।"

"हा वत्स, मैं भी तुम्हारी तरह सोच रहा हूं। मुझे बेचारी पुत्रवधू कृष्णा पर दया आ गई।" धृतराष्ट्र ने कहा।

"महाराज, नीति का वाक्य है कि शत्रुओ को छल-बल से समाप्त कर देना चाहिए। ये पाण्डव बिना अस्त्र-अस्त्र के तो सभागृह में सर्प के समान फुंकार रहे

थे, अब राज्य-बल प्राप्त करके तो हमारे विनाश का चक्र रचेंगे। पाण्डवों का जो तिरस्कार हुआ है, वह उसे किसी प्रकार नहीं भूलेंगे। वे हमसे अवश्य बदला लेंगे।" दुर्योधन बोला।

"अब क्या हो सकता है? पाण्डवों को तो मैंने मुक्त कर दिया है।"

"महाराज, आप धैर्यवान हैं। अब भी उन्हें जीता जा सकता है। आप उन्हें आज ही पुनः जुआ खेलने को बुला ले।" दुर्योधन ने सलाह दी।

"परन्तु वत्स, मेरी बात का कोई समर्थन नहीं करेगा। विदुर, द्रोण, भीष्म सभी उनके हितैषी हैं।" धृतराष्ट्र बोले।

"पिताश्री, शासन की बागडोर आपके हाथ में है। आप उनकी सलाह लेने को बाध्य नहीं हैं।" दुर्योधन ने कहा।

धृतराष्ट्र दुर्योधन के सामने पंगु बन गये थे। इस बार भी दुर्योधन ने उन्हे पक्ष मे कर लिया। उन्होने राजदूतों को घोड़ों पर शीघ्र जाने की आज्ञा दी कि महाराज ने उन्हें पुनः राजसभा में बुलाया है। वे तुरंत लौट आवें।

पाण्डवो ने अभी इन्द्रप्रस्थ मे प्रवेश नहीं किया था कि मार्ग में दूतों ने धृतराष्ट्र का सदेश उन्हें कह सुनाया। युधिष्ठिर अपने भाइयो से बोले, "महाराज धृतराष्ट्र का हमे पुनः राजसभा मे निमंत्रण देना किसी गूढ़ मन्तव्य का द्योतक है। सभी प्राणी अपने शुभ-अशुभ कर्मों का फल प्राप्त करते हैं। मैं जानता हूं, परोक्ष में दुर्योधन का षड्यंत्र ही काम कर रहा है। फिर भी मैं महाराज की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता।"

पाण्डवो को पुनः जुआ खेलने के लिए सभाभवन आया देख सभी गुरुजनों को पीड़ा हुई। सबने इसका विरोध किया। गांधारी ने कहा, "महाराज, दुर्योधन मोहग्रस्त हो रहा है। इसे जुआ खेलने से रोकिए।" धृतराष्ट्र स्वयं दुर्योधन के वश मे हो चुके थे। वे भी यह चाहते थे कि पाण्डवों को दिया हुआ राज्य पुनः ले लिया जाय। उन्होंने दुर्योधन को जुआ खेलने की आज्ञा प्रदान कर दी। पाण्डुपुत्रों की ओर मुस्कराते हुए शकुनि बोला, "हे पाण्डुनन्दन, आपको हमारे महाराज ने हारा हुआ राज्य लौटा दिया, यह बहुत अच्छा किया। हमारे मन मे अब भी जुआ खेलने की लालसा शेष है। कहो तुम्हें स्वीकार है?"

युधिष्ठिर गंभीर स्वर में बोले—"शकुनि, जुआ के कारण मुझे कितना तिरस्कार मिला है! तुम फिर मुझे जुआ खेलने को चुनौती दे रहे हो? मैं चुनौती देने पर पीछे नहीं हटता।"

"अच्छा तो तुम जुआ खेलने को तैयार हो। हे भरतश्रेष्ठ; इस बार जीत-हार या निर्णय एक ही बार पांसा फेंककर हो जायेगा। यदि जीत आपके हाथ रही, तो दुर्योधन बारह वर्ष के लिए घोर वन मे रहेंगे। तेरहवें वर्ष मे अज्ञातवास करेंगे। यदि इस बीच हम पहिचान लिए गये, तो पुनः बारह वर्ष को वनवास

जायेंगे। यही नियम आपके ऊपर भी लागू होगा।" शकुनि ने शर्त रख दी।

युधिष्ठिर शकुनि की चुनौती को स्वीकार कर पुनः जुआ खेलने को प्रस्तुत हो गये। दुर्योधन हर्षित हो रहा था। शकुनि ने पांसे अपने हाथ मे लिए। उसने उछालकर पासे फेंके। "लो जीत हमारी हुई।" समस्त कौरव दल मे हर्ष की लहर छा गई। दु:शासन सभा मध्य बोला, "कुंतीपुत्रो, तुमने राजमद मे प्रमत्त होकर राजा सुयोधन का उपहास किया है। उसका परिणाम अब बारह वर्ष वन मे रहकर भोगो। द्रुपदसुता! पाण्डव पुत्र तो अब तपस्वी बन गये। वे तुम्हें सुन्दर रेशमी वस्त्राभूषण कहां से लायेंगे? अब तुम इन्हें छोड़कर किसी अन्य को अपना पति चुन लो।"

दु:शासन के व्यंग्यपूर्ण वचन सुनकर भीमसेन को बड़ा आक्रोश हुआ। भीमसेन रोष में बोले—"कुटिल दु:शासन, क्षत्रिय की जीत-हार रणभूमि में होती है। तुमने हमे बाहुबल से नही जीता है, छल से जीता है। तू इन वचनों का परिणाम युद्धभूमि मे भोगेगा। जब मैं तेरा हृदय विदीर्ण कर रक्तपान करूंगा, तब तेरे वक्षस्थल पर बैठकर तुझे इन वचनो का स्मरण कराऊंगा।"

तभी दुर्योधन सभाभवन में मस्तानी चाल से चलता हुआ हंसकर भीमसेन की खिल्ली उड़ाने लगा। भीमसेन ने पुनः कहा, "हे दुरात्मा, केवल दु:शासन के रक्त-पान से ही मुझे शांति नही मिलेगी। तेरी जंघा भी गदा से तोड़कर तुझे यमलोक भेजूंगा। दुर्योधन, तेरा वध मैं ही करूंगा।"

युधिष्ठिर ने भीमसेन को शांत किया। वे सभी भाई विदा लेने धृतराष्ट्र के पास गये। युधिष्ठिर ने सभी वृद्धजनों को प्रणाम करके वन जाने की आज्ञा मांगी। वहा भीष्म, विदुर, द्रोण, कृपाचार्य आदि अनेक वृद्धजन खड़े थे। भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा—

"हे कुंतीपुत्रो, दैव की गति बड़ी विचित्र है। यह जीव संसार की नाट्यशाला में अभिनय करने आता है। जो धैर्यवान कर्मपथ मे वीरता से निस्पृह रहकर भूमिका का निर्वाह करते हैं, विजय उन्ही को प्राप्त होती है। रंगशाला का निदेशक सबको अपनी भूमिका निर्वाह करने का आदेश देता है। कुछ तो भूमिका निर्वाह करने के अयोग्य होते हैं—कायर कहलाते हैं, कुछ उपहास के पात्र बन जाते हैं, कुछ खलनायक बनते हैं और कुछ नायक बनकर कर्मपथ पर विजय प्राप्त करते हैं। पुत्र, हम सबने जुआ का विरोध किया परन्तु दैव बलवान है।"

विदुर जी के नेत्रों मे अश्रुजल छलक रहा था। उन्होंने पाण्डवों को हृदय से लगा लिया। उन्होंने कहा, "पाण्डुपुत्रो, तुम्हारे लिए दैव अत्यन्त क्रूर है। तुम धर्म के पथ पर आरूढ़ हो अतः अमंगलकारी शक्तियां तुम्हारे सम्मुख क्षीण हो जायेंगी। तुम जुआ में हार गये हो परन्तु तुमने नीति-धर्म के पथ से मुह नही मोड़ा है, अतः तुम सदैव संकटो पर विजय प्राप्त करोगे। तुम्हारी माता कुंती अब वन

के कष्ट झेलने के योग्य नहीं हैं अतः वह मेरे पास निवास करेंगी।"

कुंती को अपने पुत्रों और द्रुपदसुता कृष्णा को वनवासी वेश में देखकर बहुत दुःख हुआ—"पुत्रो ! तुम जैसे गुणवान पुत्रों को जन्म देकर मैं सनाथ हो गई हूं, परन्तु क्या मैंने तुम्हें कष्ट सहन करने के लिए ही जन्म दिया है ? मैं भी तुम्हारे साथ वन में कन्द-मूल-फल खाकर रहूंगी। हे द्रुपदसुता ! ये कौरव तेरी क्रोधाग्नि में जलकर भस्म हो जायेंगे। जिस राज्य में नारी का अपमान होता है, वह राज्य कालाग्नि मे झुलस जाता है। पुत्री, धैर्य रखो, तुम्हारे रक्षक वनदेवता हैं।" द्रौपदी ने माता कुंती के चरणो में मस्तक नवाया। सभी पाण्डव शोकग्रस्त वन जाने को प्रस्तुत थे। नगर-निवासी उनको इस वेश में देख दुर्योधन की निन्दा कर रहे थे। दुर्योधन अपने भाइयों के साथ प्रसन्न दिखाई दे रहा था।

उत्तरार्ध

के कष्ट झेलने के योग्य नहीं हैं अतः वह मेरे पास निवास करेंगी।"

कुंती को अपने पुत्रो और द्रुपदसुता कृष्णा को वनवासी वेश में देखकर बहुत दुःख हुआ—"पुत्रो ! तुम जैसे गुणवान पुत्रों को जन्म देकर मैं सनाथ हो गई हूं, परन्तु क्या मैंने तुम्हें कष्ट सहन करने के लिए ही जन्म दिया है ? मैं भी तुम्हारे साथ वन में कन्द-मूल-फल खाकर रहूंगी। हे द्रुपदसुता ! ये कौरव तेरी क्रोधाग्नि मे जलकर भस्म हो जायेंगे। जिस राज्य मे नारी का अपमान होता है, वह राज्य कालाग्नि में झुलस जाता है। पुत्री, धैर्य रखो, तुम्हारे रक्षक वनदेवता हैं।" द्रौपदी ने माता कुंती के चरणों में मस्तक नवाया। सभी पाण्डव शोकग्रस्त वन जाने को प्रस्तुत थे। नगर-निवासी उनको इस वेश में देख दुर्योधन की निन्दा कर रहे थे। दुर्योधन अपने भाइयों के साथ प्रसन्न दिखाई दे रहा था।

उत्तरार्ध

एक

पाण्डवों के अज्ञातवास का तेरहवां वर्ष, परीक्षण-काल का वर्ष था। अज्ञातवास में उन्हें संयमित होकर जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। वनवास के समय उन्होंने सभी आपदाओं को साहस, बल, पराक्रम और धैर्य से व्यतीत किया। पाण्डवों ने वनवास-काल में क्षत्रिय धर्म की रक्षा करते हुए कुलधर्म की भी रक्षा की थी। द्वैतवन के सरोवर पर गंधर्वों ने युद्ध में दुर्योधन को एवं साथ आई कौरव महिलाओं को बन्दी बना लिया था। वे इन सबको गंधर्वलोक ले जा रहे थे। उस समय युधिष्ठिर की आज्ञा से भीम, अर्जुन ने चित्रसेन को जीतकर दुर्योधन को मुक्त कराया था। दुर्योधन के हृदय में यह उपकार की भावना उसी प्रकार सूख गई जैसे मरुभूमि में डाली गई जल की बूंदें। काम्यक वन में निवास करके पाण्डुपुत्रों ने अनेक राक्षसों का वध किया। द्रौपदी को हरण कर ले जाते हुए जटासुर को भीम केश पकड़कर घसीटते हुए लाये और युधिष्ठिर के समझाने पर भीम ने जटासुर को प्राण-दान दिया। अर्जुन दिव्य अस्त्रों को प्राप्त करने रुद्र तथा इन्द्र के पास गये। अंतिम दिनों में जलाशय पर जल पीने के लिए आतुर चारों भाइयों को यक्ष ने सरोवर तट पर ही मूर्छित कर दिया था। उस समय युधिष्ठिर ने यक्ष के सारे प्रश्नों का उत्तर देकर उसे प्रसन्न करके अपने भाइयों को पुनः जीवनदान दिलवाया। युधिष्ठिर को ये सब बातें भली भांति स्मरण थीं। इन सब बातों को याद कर युधिष्ठिर विह्वल हो जाते थे। उन्हें धर्म को सर्वोपरि मानकर धैर्य धारण करना पड़ता था। यह उनकी धर्म-परीक्षा का अन्तिम चरण था। उन्होंने धनुर्धर अर्जुन से कहा, "तात्, हमें यह तेरहवां वर्ष अज्ञातवास में काटना है। तुम्हीं बताओ हमें किस नगर में रहकर यह समय व्यतीत करना चाहिए।" अर्जुन जानते थे कि धर्मराज युधिष्ठिर सब कुछ त्याग सकते हैं, परन्तु अपना धर्मपथ नहीं छोड़ेंगे। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा, "हे धर्मज्ञ शिरोमणि, कुछ कुटिल राजाओं को छोड़कर सभी नरेश यह मानते हैं कि दुर्योधन ने छल के द्वारा हमारे राज्य, धन, सम्पत्ति का हरण किया है, तो भी सौराष्ट्र, पाञ्चाल, मत्स्य, चेदि, अवन्ती आदि हमारे मित्र राष्ट्र हैं। आप इनमें से किसी राज्य में रहकर अज्ञातवास काटने का फैसला कर लें।"

अर्जुन के वचन सुनकर युधिष्ठिर को बल प्राप्त हुआ। वह सोचने लगे,

सौराष्ट्र दूर का प्रदेश है, पाञ्चाल हमारे स्वजन सम्बन्धियों का राज्य है; मत्स्य देश के राजा विराट हमारे मित्र रहे है। अतः युधिष्ठिर ने सभी बातों पर विचार कर मत्स्य राष्ट्र के विराटनगर मे रहने का निर्णय किया। युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा, "हम सब परस्पर अपने को संकेत नामों से सम्बोधन करेंगे। मेरा नाम जय, भीमसेन को जयन्त, अर्जुन को विजय और नकुल-सहदेव को जयत्सेन और जयत्बल नामो से पुकारेंगे। ये हमारे संकेत नाम रहेंगे।" युधिष्ठिर ने कहा, "मैं स्वयं को विराटराज के सम्मुख पांसा खेलने वाले के रूप मे प्रकट करूंगा। मैं अपना नाम कङ्क बताऊंगा। भीमसेन, तुम्हें भोजन बनाने के कार्य मे पाकशास्त्री बताऊंगा। तुम्हारा नाम वल्लव रहेगा। अर्जुन, तुम्हारा शौर्य तो सर्वत्र प्रकाशित है। तुम क्या कार्य करोगे?" अर्जुन बोला, "महाराज, मुझे स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी ने एक वर्ष तक पुरुषत्वहीन होने का शाप दिया है। मैंने वहां नृत्यगान-कला सीखी है। अत नपुंसक के रूप मे नृत्य-संगीत सिखाने के लिए मैं स्वयं को प्रस्तुत करूंगा। मेरा नाम बृहन्नला होगा।" नकुल ने अपने को घोड़ों का रक्षक बनना स्वीकार किया। उन्होने अपना नाम ग्रंथिक रखा। सहदेव ने स्वयं को गोपालक बनना स्वीकार किया और अपना नाम तन्तिपाल रखा। युधिष्ठिर ने कहा, "द्रौपदी को किस प्रकार राजभवन मे प्रवेश मिले? यह तो रूप-सौदर्य मे अन्य रानियों से भी सुन्दर है।" द्रौपदी बोली, "महाराज, मैं अपनी वेशभूषा दासी की तरह बनाकर राजभवन में प्रवेश करूंगी। मैं अपना नाम सैरन्ध्री रखूंगी।"

पाण्डवों के साथ उनके पुरोहित धौम्य थे। उन्होने पाण्डवो को इस कठिन परीक्षण मे सफल होने का आशीर्वाद दिया, "राजन्! राजाओं का प्रिय बनने के लिए सदैव उनका प्रशंसक रहना पड़ेगा। जितेन्द्रिय, प्रियवादी, कोमल स्वभाव वाला होकर राजा से कोई कार्य छिपाकर नही करना चाहिए। राजा की गुप्त मंत्रणा किसी के समक्ष प्रकट नही करनी चाहिए। राजा का कार्य करने को सदैव प्रस्तुत रहना पड़ेगा।" युधिष्ठिर ने सभी बातों को ध्यान से सुना। सभी पाण्डव द्रौपदी सहित यमुना तट पर आ गये। वहां अर्जुन ने कहा, "भैया, हमारे पास अस्त्र, शस्त्र और आयुध हैं। नगर-निवासी और राजा हम पर संदेह करेंगे। इन्हें वन मे किसी सुरक्षित स्थान पर रख दिया जाय।" भीमसेन ने दूर श्मशान के एक टीले पर सघन शमी वृक्ष देखा। उसके तने में बहुत बड़े-बड़े कोटर थे। उन्होने अपने सभी आयुधों को वृक्ष के एक कोटर मे रख दिया।

पाण्डुपुत्रों की वेशभूपा ब्राह्मणो के समान थी, परन्तु उनका शौर्य, तेजस्विता मेघाच्छादित सूर्य के समान प्रस्फुटित हो रही थी। राजभवन में प्रवेश करके युधिष्ठिर विराटराज के समीप गये। उनकी पांसा खेलने की गोटें भी उनकी बगल में दबी थी। विराट-नरेश को वे ब्राह्मण वेश मे दिव्य पुरुष जान पड़े। उन्नत ललाट, दीर्घ बाहुएं, विशाल वक्षस्थल उनके वीर पुरुष होने का संकेत कर रहे थे।

युधिष्ठिर ने राजा को स्वस्तिवाचन करके कहा, "हे राजन्, हम इन्द्रप्रस्थ प्रदेश से आये हुए ब्राह्मण हैं। मेरे साथ अन्य चार साथी और हैं। हम सभी महाराज युधिष्ठिर के यहां कार्यकुशल, सलाहकार राज्यकर्मी थे। राजा युधिष्ठिर काल-चक्र से वन-वन भटक रहे होंगे। दुर्योधन ने उन्हें भिक्षु बना दिया। हम आपके यहां जीविका प्राप्त करने आये हैं। मैं चौपड़ के खेल में निपुण हूं। मैं पासा फेंकना जानता हूं। मैं आपको राज्य-कार्य मे भी मदद करूंगा।" विराट-नरेश ने उन्हें आसन ग्रहण करने को कहा, "हे ब्रह्मन्, मैं जानता हू धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन बहुत कुटिल है। पाण्डुपुत्रों को उसने छल से जुआ में हराकर देशनिकाला दे दिया है। हे विप्रवर, तुम्हारे अन्य साथी कौन है?" युधिष्ठिर ने अपने चारों भाइयो को प्रस्तुत किया। भीमसेन को अखाड़े का मल्ल बताते हुए कहा, "राजन्, यह सुन्दर भोजन बनाने में निपुण है। इसका नाम बल्लव है। यह दूसरा युवक जो आपके सामने मुस्काता दिखाई दे रहा है यह राजभवन मे नृत्य-सगीत सिखाने का कार्य करेगा। इसका नाम वृहन्नला है। यह दीर्घबाहु युवक घोड़ों के पालन में निपुण है। इसका नाम ग्रन्थिक है। यह चौथा युवक गोपालक है। यह आपके गोष्ठ की देखभाल करेगा। इसका नाम तंतिपाल है।"

राजा विराट उन युवकों को देखकर प्रभावित हुए और उन्होने उन सभी युवकों को राज्यसेवा मे रख लिया।

द्रौपदी मलिन वेश में अन्तःपुर के द्वार पर पहुंची और दासियों से महारानी के सम्मुख ले जाने की प्रार्थना करने लगी। महारानी को विनम्र अभिवादन करके द्रौपदी ने बताया कि उसका पति उसे छोड़कर परदेस चला गया है। वह महा-राज युधिष्ठिर की सेवा में रहता था। युधिष्ठिर के वनवास काल से वह घर नही आया है। वह कष्टमय जीवन बिताते आजीविका खोजती हुई आई है। उसने अपना नाम सैरन्ध्री बताया।

रानी सुदेष्णा उसके रूप को देखकर बोली, "भद्रे, तुम रूपवती युवा बाला हो। तुम सत्य बताओ कि इस वेश में तुम क्यों भटक रही हो?"

"महारानी, मैं एक दुखी स्त्री हूं। मैं आपकी सेवा करने को जीविका खोजती हुई आई हूं। मैं केशो का शृंगार करना जानती हूं। कमल, चम्पा, मल्लिका के सुन्दर गजरे बनाना जानती हूं। मैं मेहदी लगाने मे भी प्रवीण हूं।" द्रौपदी बोली।

"हे शुभे, मैं तुम्हे अपनी सेवा मे अवश्य रख लेती, परन्तु तुममे भारी आकर्षण है इसलिए मैं ऐसा नही कर सकती। यदि महाराज तुम्हारे दिव्य रूप पर मोहित हो गए तो तुम मुझे ही पीड़ा दोगी।"

"नही देवी ऐसा न कहो! मैं आपकी सेवा मे ही रहूंगी। महाराज के सम्मुख मैं कभी नही जाऊंगी। कोई भी पुरुष मुझे मेरे सतीत्व से विचलित नही कर सकता। यदि कोई दुर्बुद्धि मुझे बलपूर्वक चाहेगा तो उसका उसी रात परलोकगमन

हो जाएगा। मेरे रक्षक पाच गन्धर्व हैं। आप मेरी बात पर विश्वास करें।" द्रौपदी ने रानी से आग्रह करते हुए विनय की।

महारानी सुदेष्णा को उसकी बातो से सहानुभूति हुई। उन्होंने सैरन्ध्री को अपनी सेवा मे रखकर कहा, "सैरन्ध्री, मैं तुम्हें निजी दासी के रूप मे रखती हूं। तुम्हें किसी के पैर छूने की आवश्यकता नही है। तुम्हे किसी की जूठन नही उठानी पड़ेगी। तुम निजी दासी के रूप मे मेरे कक्ष मे ही रहोगी।" रानी की बातों से द्रौपदी को बहुत संतोष हुआ।

दो

कीचक मत्स्य देश का प्रधान सेनापति था और महारानी सुदेष्णा का छोटा भाई था। वह बहुत बलवान था। उसे श्रेष्ठ धनुर्धर और वीर माना जाता था। कीचक का राजा पर बहुत प्रभाव था। वह स्वय को राजा के समान मानता था। राजा विराट उसकी बात को टाल नही सकते थे। महारानी सुदेष्णा उसके हठी स्वभाव से भयभीत रहती थी। कीचक मदोन्मत्त, कामी, क्रूर स्वभाव का था। एक दिन वह अपनी बहिन सुदेष्णा के कक्ष में पहुंच गया। महारानी ने सैरन्ध्री को जलपान लेकर कीचक के पास भेजा। कीचक स्वभाव से कामुक तो था ही। वह द्रौपदी के रूप-सौन्दर्य को निहारता रह गया। उसकी कामुक वासना उद्दीप्त हो उठी। वह बोला—

"सुन्दरी, तुम्हे दासी का काम किसने सौपा है? तुम तो हृदयेश्वरी होने योग्य हो। तुम्हारे चंचल नेत्र कमल और मीन को भी लज्जित करने वाले हैं। तुम्हारे लहराते हुए काले केश विषधर के समान कामपाश में बाधने वाले हैं। तुम तो मेरे हृदय-मन्दिर की रानी बनने के योग्य हो। चलो मै आज ही बहिन सुदेष्णा से कहकर तुम्हें मुक्त कराता हू।"

द्रौपदी उसकी कामुक बातें सुनकर हतप्रभ हो रही थी। वह बोली, "राजकुमार! मैं महारानी की निजी दासी हू। मैं अत्यन्त दीन और दुखी हू। अबला नारी हूं। विवाहित हू। आपको परनारी से ऐसे वचन कहना शोभा नही देता।"

"सुन्दर नारी का सहारा पुरुष होता है। जिस पुरुष ने तुम्हें यह नीच काम करने को विवश किया है, वह पुरुष न होकर मिट्टी या पत्थर का ढेला है। तुम्हें ऐसे पुरुष का मोह छोड़कर इन्द्रासन का सुख प्राप्त होगा। आओ तुम मेरे बाहुपाश में। मैं तुम्हें हृदयदेवी बनाऊंगा।" यह कहते हुए कीचक ने द्रौपदी का हाथ पकड़ने की चेष्टा की। द्रौपदी ने उसका हाथ झटक कर जलपान-सामग्री वही फेंक दी। वह चिल्लाती हुई रानी सुदेष्णा के पास भागी। उसके पीछे-पीछे कीचक भी

आया। रानी सुदेष्णा ने भाई को सांत्वना देकर पास बिठा लिया "भैया, यह दासी कुछ समय से मेरे पास साज-श्रृंगार करने के लिए यहां रह रही है। तुमने इसके साथ क्रूर व्यवहार क्यों किया ? यह अत्यन्त दीन परन्तु स्वाभिमानी है।" रानी ने सैरन्ध्री को अपने कक्ष मे जाने की आज्ञा दी। कीचक अपनी बहिन से बोला, "बहिन, मैं इसके रूप-सौन्दर्य पर मोहित होकर स्वय पर काबू नही पा सका। तुम उसे मुक्त करके मेरे सुपुर्द कर दो। तुम जानती हो, मेरी इच्छा को स्वय महाराज नही रोक सकते।"

रानी सुदेष्णा अपने हठी भाई के स्वभाव से परिचित थी। उसने कीचक से कहा, "भाई, नारी को अत्याचार से वश में नही किया जा सकता। उसे प्रेम एव लोभ से अपने वश में करने की चेष्टा करो। तुम अपने यहां किसी पर्व पर भोजन और सुरापान का आयोजन करो। मैं सैरन्ध्री को तुम्हारे यहा सुरा लाने को भेजूगी। वहां अनुकूल अवसर पाकर तुम उससे प्रणय-निवेदन करना। स्त्रियां बह-लाने-फुसलाने से वश मे हो जाती हैं। उसके साथ कठोर व्यवहार मत करना।"

कीचक कामबाण से पीड़ित होकर अपने भवन को चला गया।

द्रौपदी कीचक से भयभीत हो गई थी। नारी गिरिश्रृंग से निकलकर बहने वाली स्रोतस्विनी है जो समतल भूमि को सुधामृत से सींचकर अगाध समुद्र मे जाकर स्वयं को विलीन कर देती है। श्रद्धा की धारा क्षमा की धरणी पर समर्पण की तरंगों से जीवन को शांति-आनन्द का कलकल नाद सुनाती हुई सदैव से प्रवाहित हो रही है। क्रूर मानव उसके प्रवाह को अवरुद्ध करके घोर जलप्लावन लाने को आतुर है। मानव की लोलुपता नारी को सदैव झकझोरती रही है। द्रौपदी मन के विचारों में खोई भीमसेन की पाकशाला मे जाकर बोली, "जयन्त, तुम स्वादिष्ट भोजन खाकर सुख से सो रहे हो। क्या तुम्हे मेरी भी चिन्ता है?" भीमसेन ने द्रौपदी को सान्त्वना देकर उसके रात्रि मे आने का कारण पूछा। द्रौपदी ने कीचक के साथ हुई घटना कह सुनाई। भीमसेन कुछ गंभीर हो गए। वे बोले, "देवी, हम सब काल की प्रतीक्षा मे हैं। दैव ने सबको गतिमान कर रखा है। तुम भयभीत न होओ। मैं उसे यमलोक भेज दूगा, परन्तु तुम्हे कुछ अभिनय करना पड़ेगा। अब जब वह तुम्हारे सामने प्रणय-निवेदन करे तो तुम यह दिखाना कि तुम उसके वश में होने को तैयार हो। तुम उससे एकान्त स्थान मे उसकी मनोकामना पूरी करने की बात कहना। यह पास मे जो नाट्यशाला है, रात्रि मे सूनी पड़ी रहती है। तुम उसमे कहना कि वह उसी नाट्यशाला में रात्रि में उसके पास आए। मैं वहा पहले से मौजूद रहूंगा।" भीमसेन से बात करके द्रौपदी अपने कक्ष को लौट गई। उसके मन में कीचक की कामुकता शूल की तरह चुभ रही थी। पुरुष के लिए नारी मनोविनोद और कामपिपासा शात करने के अतिरिक्त कुछ नही है? कामुकता की प्रचण्ड ज्वाला में उसने मातृत्व-प्रेम, भगिनी का स्नेह

जलाकर भस्म कर दिया है। काम-क्षुधा को शांत करने के लिए वह व्याध बना हरिणी का शिकार करता फिरता है। पुरुष क्रूरता, पशुता और हिंसा का पुतला मात्र बन गया है।

तीन

सुदेष्णा ने सैरन्ध्री को संध्या समय बुलाकर कहा, "सैरन्ध्री, जाओ, सेनापति कीचक के भवन से मुझे सुरा ले आओ। मैं बहुत प्यासी हूं। आज राजकुमार ने अपने यहां सहभोज और सुरापान का आयोजन किया है।"

"महारानी जी···" द्रौपदी ने हिचिकिचाते हुए अस्पष्ट शब्दों में कहा।

"नहीं, तुम भयभीत न होओ। मैं तुम्हें भेज रही हूं। कीचक तुम्हारे साथ अभद्र व्यवहार नहीं करेंगे। लो यह स्वर्ण पात्र ले जाओ।" सुदेष्णा ने आदेश देकर कहा।

द्रौपदी भीमसेन की बात का स्मरण कर जाने के तैयार हो गई।

कीचक का भवन दीप-ज्योति से जगमगा रहा था। वाद्यगान की मधुर ध्वनि गूंज रही थी। सेवकगण अतिथियों का स्वागत कर रहे थे। उसी समय सैरन्ध्री को स्वर्णपात्र लेकर आते देख कीचक बहुत हर्षित हुआ। कीचक कामुक गति से उसकी ओर जाते हुए बोला, "आओ प्रिये, तुम्हारे आगमन से यह उत्सव मेरे लिए बहुत मधुर हो गया है।" सैरन्ध्री ने ठिठक कर नेत्र नीचे कर लिए। वह बोली, "राजकुमार, तुम्हारा वैभव देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूं। परन्तु मैं महारानी को सुरापान लेने आई हूं। आपके प्रेम का प्रतिदान मैं समय पर करूंगी।"

"इससे सुन्दर समय कब होगा। आज तुम मेरे भवन में निवास करो।" कीचक बोला।

"राजकुमार, इस अवसर पर आपके अतिथिगण उपस्थित हैं। आप इनका स्वागत कर आनन्द मनाओ। मैं तुम्हें आज प्रणयदान नहीं कर सकती। कल रात्रि के द्वितीय प्रहर में आप नाट्यशाला के कक्ष में मुझसे मिलना। परन्तु शर्त यह है कि तुम मुझसे मिलने अकेले ही आना।" द्रौपदी ने मुस्काकर नेत्र नीचे कर लिए।

कीचक कामांध हो गया था। वह सैरन्ध्री को प्राप्त करने के लिए उसकी प्रत्येक इच्छा पूर्ण कर सकता था। उसने नाट्यशाला में जाना स्वीकार कर लिया। सैरन्ध्री को सुरापान देकर उसने विदा कर दिया। वह रानी के भवन को लौट गई। उसने सोने से पहले पाकशाला में जाकर भीमसेन को सूचित कर दिया कि कल रात्रि में कीचक नाट्यशाला में अकेले ही आयेगा।

रात्रि के घने अंधकार में कीचक झूमता हुआ नाट्यशाला में पहुंच गया। कामुक को दुर्गम शिलाएं, घनघोर वर्षा, प्रचण्ड आतप, कण्टकाकीर्ण मार्ग भी सुगम लगता है। कीचक ने प्रवेश करके उस कक्ष की ओर कदम बढ़ाये जहां सैरन्ध्री ने मिलने का स्थल बताया था। भीमसेन की काली छाया को देखकर वह उसे सैरन्ध्री समझ बैठा। वहा पहुंचकर कीचक कामुक वाणी मे बोला, "हृदयेश्वरी, आज तुम्हें पाकर मुझे स्वर्ग का राज्य भी तुच्छ है। मैं तुम्हे हृदय के सिंहासन पर बिठाऊंगा।" ऐसा कहते हुए वह भीमसेन को स्पर्श करने लगा। भीम पलंग से उठकर उसे ललकारते हुए बोले, "अरे नीच, तेरा काल सिर पर मडरा रहा है। तू युद्ध के लिए तैयार हो जा।" कीचक का सारा नशा हिरन हो गया। वह सम्मुख आये हुए संकट को देखकर चीखकर बोला—"सैरन्ध्री ने मेरे साथ छल किया है। आज मैं तुझे काल के हवाले करके ही सैरन्ध्री से निबटूंगा।" ऐसा कहते हुए कीचक भीमसेन को पकड़ने को दौड़ा। भीम ने मदोन्मत्त कीचक को दोनो बाहुओ से पकडकर पैर के झोले से प्रागण में ढकेल दिया। उसके गले में पड़ी मुक्तामाला और पुष्पमाला टूट कर जा पड़ी। भीम ने उसकी छाती पर मुष्टिप्रहार किया। कीचक भी बहुत बलवान था। उसने संभलकर भीम को पकड़ लिया और प्रांगण में खींच लाया। दोनो एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। भीमसेन ने अपने मुष्टिप्रहारों से कीचक को भूमि पर गिरा दिया। फिर उसे बलपूर्वक उठाकर भूमि पर दे मारा। उसके मुख से घोर शब्द निकला। भीम ने उसकी पीठ पर चढ़कर रीढ़ की हड्डी तोड़ डाली और उसका प्राणान्त हो गया। भीम भी उससे युद्ध करते चूर-चूर हो गये थे। उन्होंने कीचक के शव को खींचकर नगर के मुख्य द्वार के समीप डाल दिया। वे अपने शयनकक्ष में जाकर सो गये।

चार

प्रातःकाल होते ही विराट नगर मे यह चर्चा सर्वत्र हो रही थी कि "सेनापति कीचक को गंधर्वों ने मार डाला है। पापी कीचक महारानी की दासी सैरन्ध्री से बलात्कार करने को तत्पर था।" एक दूसरा बोला, "सेनापति अपनी इच्छा पूरी करने को दासी को खीचकर लाया होगा। दासी सैरन्ध्री भी कोई देवी है, जिसके रक्षक गधर्व हैं।" कुछ अन्य बोले—"सेनापति के मरने से राजा को बहुत दुःख होगा। वह तो इतना बलशाली था कि बग, कलिग और कुरु राज्य भी हमारे राज्य पर आक्रमण करने का साहस नही कर सकते थे।" सेनापति कीचक की अचानक मृत्यु के सबध मे विराटनगर के नागरिको मे तरह-तरह

थे। विराटराज के महाबलशाली सेनापति कीचक की मृत्यु से दुर्योधन चिंता में पड़ गया। ये गंधर्व कौन हैं ? कीचक को द्वंद्वयुद्ध में कौन हरा सकता है ? गंधर्वों से सेनापति कीचक का वैमनस्य तो था नही। यह तो रहस्यमय मृत्यु है। संभव है पाण्डव ही गंधर्व बनकर विराटनगर मे छिपे हों। दुर्योधन ने कर्ण, दुःशासन, शकुनि को अपने मंत्रणागृह में बुलवाया। दुःशासन ने कहा, "कीचक का वध कैसे हुआ ? मुझे तो यह पाण्डवो की ही करतूत लगती है।" कर्ण और शकुनि ने भी इस बात का समर्थन किया। दुर्योधन बोला कि पाण्डवों का पता लगाना चाहिए। कर्ण ने उत्साह से कहा, "अब पाण्डवो को खोज निकालने का अवसर आ गया है। मत्स्य देश पर आक्रमण कर दिया जाय। यदि पाण्डव वहा छिपे होंगे, तो वे युद्धभूमि मे सामने आ जायेंगे। शर्त को पुनः जीतने का यही उपाय है।"

दुर्योधन कर्ण के प्रस्ताव से सहमत हो गया। उसने सैन्यबलो को मत्स्य राज्य की ओर कूच करने की आज्ञा दे दी। समस्त कौरव, कर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा, शकुनि आदि महारथी उसके सहयोगी थे। दुर्योधन के आक्रमण का उद्देश्य पाण्डवों की खोज करना था ताकि वह पाण्डवों को पुनः बारह वर्ष वनवास के लिए विवश करे। विराटनगर के समीप राज्य का बहुत बड़ा गोष्ठ था जिसमे साठ हजार गौएं थी। दुर्योधन ने इस गोष्ठ पर ही आक्रमण किया। गोशाला के गोपालक एव सेवकगण भयभीत होकर नगर की ओर भागे। उन्होने अन्तःपुर में राजकुमार भूमिजय को यह समाचार दिया कि दुर्योधन की सेना ने समस्त गोष्ठ को रोंद डाला है। भूमिजय उस समय माता सुदेष्णा के भवन में था। वह माता से बोला, "मा, पिताजी तो सुशर्मा से युद्ध करने गये हुए है। अब नगर की रक्षा का भार मेरे ऊपर है। मेरे पास कोई ऐसा सारथि नही है जो युद्ध मे रथ का संचालन कर सके। बताओ मां मैं कौरव दल का युद्ध मे कैसे सामना करूं?" वहां पास मे सैरन्ध्री बैठी थी। उसने कहा, "राजकुमार, यह बृहन्नला अर्जुन के रथ का सचालन करता रहा है। इसी को रथ का सारथि बना लो।"

राजकुमार बृहन्नला की ओर देखने लगा—"बृहन्नला, क्या तुमने पाण्डुपुत्रों के यहा सारथी का कार्य किया है ?"

"राजकुमार, मैं युद्ध मे घोड़ा नचाना क्या जानू ? मैं तो तुम्हे नाच-गाना सिखा सकता हूं।" बृहन्नला ने नेत्र मटकाते हुए कहा।

"बृहन्नले, गम्भीर बात को हसी मे उड़ाने का यह समय नही है। मत्स्य देश की मान-मर्यादा इस समय संकटपूर्ण स्थिति में है। तुम मेरे सारथि बन सकते हो अथवा नही ?"

"अगर तुम आज्ञा दे रहे हो तो मुझे तुम्हारा सारथी बनना स्वीकार है राजकुमार। यह बताओ कि युद्धभूमि मे जाकर नाचने तो नही लगोगे ?"

बृहन्नला की व्यग्यपूर्ण उक्ति सुनकर राजकुमार उत्साहित होकर बोला,

थे। विराटराज के महाबलशाली सेनापति कीचक की मृत्यु से दुर्योधन चिंता में पड़ गया। ये गंधर्व कौन हैं ? कीचक को द्वंद्वयुद्ध में कौन हरा सकता है ? गंधर्वों से सेनापति कीचक का वैमनस्य तो था नहीं। यह तो रहस्यमय मृत्यु है। संभव है पाण्डव ही गधर्व बनकर विराटनगर में छिपे हों। दुर्योधन ने कर्ण, दुःशासन, शकुनि को अपने मंत्रणागृह में बुलवाया। दुःशासन ने कहा, "कीचक का वध कैसे हुआ ? मुझे तो यह पाण्डवों की ही करतूत लगती है।" कर्ण और शकुनि ने भी इस बात का समर्थन किया। दुर्योधन बोला कि पाण्डवों का पता लगाना चाहिए। कर्ण ने उत्साह से कहा, "अब पाण्डवों को खोज निकालने का अवसर आ गया है। मत्स्य देश पर आक्रमण कर दिया जाय। यदि पाण्डव वहां छिपे होंगे, तो वे युद्धभूमि में सामने आ जायेंगे। शर्त को पुनः जीतने का यही उपाय है।"

दुर्योधन कर्ण के प्रस्ताव से सहमत हो गया। उसने सैन्यबलों को मत्स्य राज्य की ओर कूच करने की आज्ञा दे दी। समस्त कौरव, कर्ण, द्रोण, अश्वत्थामा, शकुनि आदि महारथी उसके सहयोगी थे। दुर्योधन के आक्रमण का उद्देश्य पाण्डवों की खोज करना था ताकि वह पाण्डवों को पुनः बारह वर्ष बनवास के लिए विवश करे। विराटनगर के समीप राज्य का बहुत बड़ा गोष्ठ था जिसमे साठ हजार गौएं थी। दुर्योधन ने इस गोष्ठ पर ही आक्रमण किया। गोशाला के गोपालक एव सेवकगण भयभीत होकर नगर की ओर भागे। उन्होने अन्तःपुर मे राजकुमार भूमिजय को यह समाचार दिया कि दुर्योधन की सेना ने समस्त गोष्ठ को रौंद डाला है। भूमिजय उस समय माता सुदेष्णा के भवन मे था। वह माता से बोला, "मां, पिताजी तो सुशर्मा से युद्ध करने गये हुए है। अब नगर की रक्षा का भार मेरे ऊपर है। मेरे पास कोई ऐसा सारथि नही है जो युद्ध मे रथ का संचालन कर सके। बताओ मां मैं कौरव दल का युद्ध मे कैसे सामना करूं?" वहां पास मे सैरन्ध्री बैठी थी। उसने कहा, "राजकुमार, यह वृहन्नला अर्जुन के रथ का सचालन करता रहा है। इसी को रथ का सारथि बना लो।"

राजकुमार वृहन्नला की ओर देखने लगा—"वृहन्नला, क्या तुमने पाण्डुपुत्रो के यहां सारथी का कार्य किया है ?"

"राजकुमार, मैं युद्ध में घोड़ा नचाना क्या जानू ? मैं तो तुम्हे नाच-गाना सिखा सकता हूं।" वृहन्नला ने नेत्र मटकाते हुए कहा।

"वृहन्नले, गम्भीर बात को हंसी मे उड़ाने का यह समय नही है। मत्स्य देश की मान-मर्यादा इस समय संकटपूर्ण स्थिति में है। तुम मेरे सारथि बन सकते हो अथवा नही ?"

"अगर तुम आज्ञा दे रहे हो तो मुझे तुम्हारा सारथी बनना स्वीकार है राजकुमार। यह बताओ कि युद्धभूमि में जाकर नाचने तो नही लगोगे ?"

वृहन्नला की व्यंग्यपूर्ण उक्ति सुनकर राजकुमार उत्साहित होकर बोला,

"बृहन्नले, तू मेरी वीरता से परिचित नही है। मैं युद्ध में देव-दानवों से भी मोर्चा ले सकता हूं। तुम कवच पहन कर शीघ्र रथ की बागडोर संभालो।"

बृहन्नला के रूप मे अर्जुन भूमिजय को युद्ध के लिए प्रेरित करना चाहता था। इस समय तक पाण्डवो के अज्ञातवास का समय भी समाप्त हो गया था। अर्जुन को यह भी मालूम था कि दिन-रात अन्तःपुर में नृत्य-गान मे फंसा रहने वाला राजकुमार भूमिजय कौरव सेना से लोहा नही ले पायेगा।

रथ पर बैठकर अर्जुन ने घोड़ों की वाग ढीली कर दी और कुछ ही समय में रथ कौरव सेना के निकट पहुंच गया। राजकुमार गौओ की चिंघाड़ सुन रहा था, परन्तु अश्वो के टाप से उड़ती हुई धूल के अम्बार को देखकर और कौरवों की विशाल सेना को देखकर वह बोला, "बृहन्नला, रथ को नगर की ओर ले चलो। मैं गोधन के अपहरण को सहन कर लूंगा, परन्तु इस विशाल सेना से अकेला कैसे लड़ूंगा? रथ को वापस ले चलो।"

"यह क्या कह रहे हो राजकुमार! तुम शूरवीर हो, क्षत्रिय को रणभूमि से पलायन करना शोभा नही देता। रथ वापिस नही लौटेगा।" बृहन्नला ने दृढ़ता से कहा।

बृहन्नला की ओजपूर्ण वाणी सुनकर उसके हृदय में वीरता जाग्रत नही हुई। वह भयभीत हो रहा था। रथ से उतरकर वन की ओर जाने लगा। बृहन्नला ने उसे आवाज दी। राजकुमार और तीव्रगति से भागने लगा। बृहन्नला के रूप में अर्जुन ने समझ लिया, यह राजकुमार अत्यन्त कायर है। अर्जुन ने उसका शीघ्रता से पीछा करके रोका और कहा, "राजकुमार, तुम पीछे नही लौट सकते। आओ युद्ध मैं करूगा। तुम सारथि बनकर रथ का संचालन करो। चलो देर न करो।"

राजकुमार ठगा-सा बृहन्नला के मुख की ओर देखने लगा। अन्त में उसे रथ पर बैठकर घोड़ों की बाग संभालनी पड़ी। अर्जुन ने स्वयं को प्रकट करते हुए उससे कहा, "मैं अर्जुन हू। श्मशान मे शमी वृक्ष के पास हमारे अस्त्र-शस्त्र रखें हैं। तुम वहां चलो।"

राजकुमार बृहन्नला की बातें सुनकर आश्चर्य में पड़ गया। वह बोला, "तुम अर्जुन कैसे हो सकते हो? तुम्हारे अन्य भाई कहां हैं?"

"राजकुमार, मेरे बड़े भाई युधिष्ठिर कक के रूप में राजा विराट को चौपड़ का खेल सिखाते हैं। बल्लव के रूप मे भीमसेन हैं। नकुल-सहदेव ग्रन्थिक और तन्तिपाल नामधारी हैं। राजकुमार, अब हमारा अज्ञातवास समाप्त हो रहा है। तुम निर्भय बने रहो।"

अर्जुन ने शमी वृक्ष की कोटर से गांडीव धनुष और बाणो से भरा तरकस लेकर शख की घोर ध्वनि की जिसे सुनकर कौरव दल सचेत हो गया। सैनिको मे भय व्याप्त हो गया। दुर्योधन हर्षित होकर कर्ण के साथ भीष्म के पास आकर

बोला, "पितामह, मेरा उद्देश्य पूर्ण हो गया। अर्जुन ने महान शंखनाद करके युद्ध-घोषणा की है। पाण्डव इसी राज्य में छिपे हैं। वे अज्ञातवास मे पहिचान लिये गए हैं। अतः शर्त के अनुसार अब उन्हें पुनः बारह वर्ष के लिए वन जाना पड़ेगा।"

भीष्म ने दुर्योधन को समझाया, "हे नरेन्द्र, धर्मपथ में आरूढ़ रहकर पाण्डवों ने वनवास एवं अज्ञातवास का समय पूरा कर लिया है। उन्होंने निश्चित समय से[1] पांच मास बारह दिन अधिक व्यतीत किए हैं। तुम्हें पांडवों को उनका राज्य सहर्ष लौटा देना चाहिए। तुमने जुआ में चतुराई मे तेरह वर्ष उन्हें घोर संकट में रखा है। तुम परभाग भोगकर सुखी होना चाहते हो। परभाग भोगने से बुद्धि का नाश होता है। बुद्धि के नाश से मनुष्य दुष्कर्म में प्रवृत्त होता है। दुष्कर्म से यह लोक और परलोक नष्ट हो जाते हैं।"

दुर्योधन तीव्र स्वर मे बोला, "पितामह, मैं पाण्डवों को राज्य नही दूगा। उन्होंने अज्ञातवास अभी पूरा नही किया है।" युद्ध का बिगुल बज उठा। शंखनादों से रणस्थल गुंजरित हो उठा। भीष्म दुर्योधन की दुर्विनीति से आहत होकर बोले, "सुयोधन, तुम लोभ की शृंखला मे बंधकर सांकर्यभाव से दुर्नीति का जाल बुन रहे हो। कुरुराज्य के वृक्ष पर बैठकर उसकी शाखाओं को काट रहे हो। जाओ, गाण्डीव की टंकार तुम्हें बुला रही है।" कर्ण बोला, "पितामह, आप अर्जुन से युद्ध करने के कारण भयभीत हैं या पाण्डवों का पक्ष ले रहे हैं?"

"सूतपुत्र, मैं युद्ध से भयभीत नही हूं। क्षत्रिय शौर्य कर्म का उपासक होता है। युद्धभूमि मे शंकित होना या पीठ दिखाना कायरो का गुण है। क्षत्रिय केवल धर्म से भय खाता है। तुम्हें कालाग्नि के समान अर्जुन के बाणो का अभी अनुभव नही है।" भीष्म बोले।

कर्ण ने युद्ध की शंखध्वनि की। सभी सैनिक युद्ध की शंखध्वनि सुनकर लौट पड़े। अर्जुन का रथ घरघर नाद करता हुआ समीप आ पहुचा। रथ मे श्वेत घोड़े जुते हुए थे। ऊपर कपिध्वज फहरा रहा था। अर्जुन ने दो बाण गुरु द्रोण को प्रणाम के प्रतीक के रूप में छोड़े। गुरु द्रोण अपने शिष्य से रणभूमि मे भी अभिवादन पाकर पुलकित हो गये। अर्जुन का रथ और समीप आ गया था। अर्जुन की आंखें किसी की खोज में थी। गाण्डीव पर बाण चढ़ाये अर्जुन अपने निशाने को खोज रहा था। वह निशाना था दुर्योधन। उसी ने पाण्डवों को वन-वन भटकाया था। बेचारी द्रौपदी को सभामध्य खीच लाने की आज्ञा दी थी। हे कुरुकुल-कलंक, तू कहां छिपा है? वह इस समय गायों को हांककर हस्तिनापुर ले जा रहा

---

1. महाभारत काल मे ज्योतिष विज्ञान के अनुसार पांच वर्ष के बाद दो मास को बढ़ाकर चन्द्रमास को सौरमास के बराबर कर लिया जाता था। अतः पाण्डवो ने तेरह वर्ष पांच मास बारह दिन वनवास में बिताए।

था। अर्जुन का रथ उधर ही मुड़ गया जिधर दुर्योधन गायों को हंकवा कर ले जा रहा था। अर्जुन के रथ की भयंकर ध्वनि सुनकर गायें दक्षिण दिशा को पूंछ उठाकर भागीं। दुर्योधन ने युद्ध को सिर पर आया जान घोड़ों की बाग मोड़ दी। पीछे से कर्ण, अश्वत्थामा आदि को देखकर उसे साहस बंधा। सबने मिलकर अर्जुन के रथ को घेर लिया। अपनी रक्षा के लिए अर्जुन ने चक्रवाण छोड़ने शुरू कर दिये। उन बाणों से सेना विदीर्ण होने लगी। सैनिकों में भगदड़ मच गई। अर्जुन ने एक तीक्ष्ण बाण से कर्ण के सारथि को घायल कर मूर्छित कर दिया। अर्जुन ने धुरन्ध बाणों की ऐसी झड़ी लगाई कि द्रोण, दुःशासन, अश्वत्थामा, कृपाचार्य के रथ आगे न बढ़ सके। उन सब महारथियों ने एक साथ अर्जुन पर तीखे बाणों की वर्षा करनी प्रारम्भ कर दी। अर्जुन ने बहुत दिनों बाद गाण्डीव को हाथ में लिया था। वह विद्युत् गति से अकेला ही इन वीरों से युद्ध कर रहा था। जब समस्त महारथी एक साथ उस पर टूट पड़े तो उसने हंसकर अपने पिता इन्द्र द्वारा प्रदत्त ऐन्द्रास्त्र धनुष पर चढ़ा लिया और उसे सम्मोहन मंत्र से अभिमंत्रित किया। सम्मोहन अस्त्र के छूटते ही समस्त रथी, अश्वारोही, गजारोही मूर्छित होकर धरणि पर गिर गये। इन सब वीरों को मूर्छित देख भीष्म ने धनुष-बाण उठा लिए। भीष्म क्षात्रधर्म को वीरधर्म से ओढ़कर दिव्यधर्म मानते थे। रण में वीर केवल शौर्य से ही श्रेष्ठ बनता है। अर्जुन के प्रति पितामह का अपार प्रेम था, परन्तु युद्धभूमि में वे अर्जुन से भी युद्ध करेंगे। अर्जुन ने समस्त कौरवों को धराशायी कर दिया था। यह कुरुराज्य की पराजय का प्रश्न था।

पितामह को देख अर्जुन ने एक बाण पितामह के रथ की ओर छोड़ा जो रथ को स्पर्श करता हुआ भूमि में समा गया। प्रणाम करने के उपरान्त अर्जुन ने पितामह के ऊपर विजय की भांति बाणवर्षा प्रारम्भ की। भीष्म भी प्रचण्ड शस्त्रों से उसका प्रतिकार करने लगे। भीष्म ने वारुण अस्त्र का प्रयोग करके आकाश को बाणों से आच्छादित कर दिया। दोनों ओर से आग्नेय अस्त्र चलाये दिखाई दिए। अर्जुन ने घोर, दारुण अस्त्रों का प्रयोग करके भीष्म को हतप्रभ कर दिया। अर्जुन ने एक तीक्ष्ण धार वाला बाण छोड़कर भीष्म के धनुष को खण्ड-खण्ड कर डाला। भीष्म ने दूसरा धनुष लेकर उस पर बाण चढ़ाकर प्रहार की। अर्जुन के बाईं पार्श्व को बाणों से बींध डाला। अर्जुन ने क्रुद्ध होकर भीष्म के कवच को दस बाणों से आघात किया। भीष्म उस प्रहार से विचलित होकर रथ में बैठ गये। सारथि भीष्म को मूर्छित जानकर तत्काल भूमि से दूर हटा ले गया। उसी समय दुर्योधन अर्जुन की ओर [illegible] से आक्रमण करने लगा। [illegible] दुर्योधन का [illegible] देख [illegible] प्रहार करने लगा। अर्जुन ने [illegible] दुर्योधन के [illegible] को विदीर्ण कर दिया। दुर्योधन [illegible] भूमि पर गिर पड़ा। अर्जुन ने दुर्योधन का [illegible] बाणों से [illegible] । वह मूर्छित

वमन करने लगा। सारथि तीव्रता से उसे लेकर रणभूमि से भागा। अर्जुन ने ललकारते हुए कहा, "अरे धृतराष्ट्र के सपूत, मैं तुम्हारा स्वागत करना चाहता हूं। तुम भागे जा रहे हो!" युद्धस्थल में अब कोई अर्जुन का सामना करने वाला नहीं था। सभी महारथी सम्मोहनास्त्र से मूछित पड़े थे। अर्जुन ने भूमिजय से कहा, "राजकुमार, तुम कर्ण के पीले वस्त्र, अश्वत्थामा के श्वेत वस्त्र, दुःशासन आदि कौरवों के वस्त्र उतारकर राजधानी को लौट चलो। ये तुम्हारी विजय के प्रतीक बनेंगे। मूछित व्यक्ति पर शस्त्र चलाना वीरता नहीं है इसलिए हम इन्हें जीवनदान देते हैं। पितामह मूछित नहीं हुए हैं। वे सम्मोहनास्त्र के निवारण की विधि जानते हैं।"

होश में आने पर समस्त वीर वस्त्रविहीन थे। दुर्योधन बोला, "पितामह, ये सब वीर मूछित थे। फिर आपने अर्जुन को जीवित क्यों जाने दिया?" भीष्म बोले, "दुर्योधन, अर्जुन वीर है। मूछित व्यक्ति पर शस्त्र चलाना शौर्य कर्म नहीं है। अतः अर्जुन ने तुम सबको जीवित छोड़ दिया है। अर्जुन अपना धर्म नहीं छोड़ सकता। वह तुम्हारे वस्त्रों की विजय पताका बनाकर विराटनगर में प्रवेश करेगा। यदि तुममें साहस है तो युद्ध करके वस्त्र छीन लाओ। मेरा मत है कि तुम सब अब लौटकर हस्तिनापुर को चलो और बैठकर यह निर्णय करो कि पाण्डु-पुत्रों से शान्ति-मैत्री करनी है अथवा युद्ध।"

छह

राजा विराट को सूचना मिली कि राजकुमार भूमिजय कौरवों की सेना को विजय करके समस्त गौओं को उनसे छुड़ाकर नगर मे प्रवेश करने वाले हैं। राजा के मन में हर्ष का सागर लहराने लगा। समस्त नगर को राजकुमार के स्वागत के लिए सजाया गया। जगह्-जगह् तोरणद्वार बनाये गए; बन्दनवार बांधे गए। राजमार्गों को जल से सींचा गया। राजभवन को सुन्दर ढंग से सजाया गया। अगरु मेद से प्रांगण सींचा गया। कंगूरों को पुष्प-गुम्फित किया गया। मधुर ध्वनि में वाद्यगान होने लगे। राजा के मन मे आशंका कौंध रही थी कि बृहन्नला जैसे नपुंसक के साथ राजकुमार ने युद्धभूमि में द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा और वीरश्रेष्ठ भीष्म का कैसे सामना किया होगा?

राजद्वार पर राजकुमार का स्वागत करने के लिए राजा के साथ मंत्रीगण, सभासद और वेदध्वनि उच्चारण करते हुए ब्राह्मण थे। मंगल थालों को सजाये हुए राजमहिषी सुदेष्णा के साथ अनेक महिलाएं थीं। उत्तर कुमार के प्रवेश करते ही राजा ने उसके मस्तक पर विजय तिलक किया। पुष्प-वर्षा की गई। राजकुमार को अपने समीप राजसिंहासन पर बैठाया। राजा ने घोषणा की कि राजकुमार

मत्स्य राष्ट्र के रक्षक और वीरशिरोमणि हैं। उन्हें मत्स्य राष्ट्र का उत्तराधिकारी युवराज-पद सौंपा जाता है। हर्षध्वनि से इस घोषणा का स्वागत किया गया। राजकुमार ने कौरव वीरों के वस्त्राभूषण प्रस्तुत किए जो युद्धभूमि में मूर्छित महारथियों के बदन से उतारे गये थे। राजसभा इस वीरता के कार्य से चकित रह गई। राजा भावविभोर होकर राजकुमार को हृदय से लगाकर बोले, "मत्स्य देश वीरता का सदैव पूजक रहा है। उत्तर कुमार जैसा उत्तराधिकारी पाकर मैं निश्चिंत हो गया हूं। हे राजकुमार, तुमने यह दुर्धर्ष वीरता का कार्य कैसे सम्पन्न किया? द्रोण, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा सभी महारथी हैं। भीष्म के नाम से तो आर्यावर्त्त कांप जाता है। अस्त्रविद्या में पारंगत गुरु द्रोण और कृपाचार्य जैसे महारथियों का तुमने कैसे सामना किया?" राजकुमार को अब बोलने का अवसर प्राप्त हुआ। वह अपनी प्रशंसा सुनकर लज्जित हो रहा था। वह बोला, "महाराज, इस विजय का श्रेय मुझे नहीं है। कुरुवंश की वीरता का सिक्का समस्त आर्यावर्त्त मे व्याप्त है। जब से पाण्डवों को वनवास दिया गया, तभी से राजा दुर्योधन ने छल, बल और प्रपंच से समस्त पड़ोसी राज्यों को अपने वश में कर लिया। वह मत्स्य राष्ट्र को भी जीतने आये थे। त्रिगर्त राज्य के युद्ध में आपके फंसे रहने के कारण उसने अवसर पाकर मत्स्य राष्ट्र पर आक्रमण कर दिया। उनके आक्रमण से राज्य मे हलचल मच गई। दूतों ने आकर मेरे समक्ष पुकार की। मैंने बहाना बनाया कि मेरे पास सारथि नहीं है अतः मैं युद्ध नहीं कर सकता। परन्तु बृहन्नला ने मुझे उत्साहित किया। वह स्वयं सारथि बना। युद्धभूमि में विशाल कौरव दल देखकर मुझे डर लगने लगा। मैंने बृहन्नला से रथ रोकने को कहा और मैं युद्धभूमि से पलायन करने लगा। तभी वहां एक दिव्य देवपुत्र प्रकट हो गया। उसने मुझे धैर्य दिया। उसका उच्च ललाट, दीर्घ बाहुएं, तेजस्वी मुखमण्डल देखकर मैं चकित हो गया। उसने कहा, राजकुमार, भयभीत मत हो। उसने जब शंखनाद किया तो कौरवदल के गज चिंघाड़ने लगे। उसके पास दिव्य धनुष और अमोघ अस्त्र थे। वह कौरवदल मे ऐसे घुस गया जैसे सिंह मृगों के झुंड में घुस जाता है। उसने बाणवर्षा कर सैनिकों को अन्धा, बहरा बना दिया। सैनिक युद्ध छोड़कर भागने लगे। उसी ने महारथियों को परास्त कर मूर्छित कर दिया। ये वस्त्राभूषण मैंने उसी की आज्ञा से महारथियों के शरीर से उतारे हैं।"

राजकुमार ने अर्जुन के कहने से अर्जुन और पाण्डवों का प्रकट होना छिपा लिया था। राजा इस आश्चर्यजनक घटना को सुनकर चकित रह गये। वे सोचने लगे, यह देवपुत्र सैरन्ध्री की रक्षा करने वाला गंधर्व तो नहीं है। उन्होंने राजकुमार से पूछा, "राजकुमार, वह देवपुत्र कहां है? क्या वह इस राजसभा मे प्रकट हो सकता है?" राजकुमार ने महाराज विराट को आश्वासन दिया कि वह देवपुत्र राजसभा मे प्रकट होगा। महाराज धैर्य धारण करें। उसी देवपुत्र ने हमारे राज्य

की कौरवों के आतंक से रक्षा की है। वह देवपुत्र हमारे राज्य की रक्षा करने आया था।

सात

दूसरे दिन राजसभा में समस्त मंत्री, सभासद, बलाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, राजनयिक, धर्मज्ञ ब्राह्मण एवं नागरिक उपस्थित हुए। पांचों पाण्डव—कंक, बल्लव, बृहन्नला, ग्रंथिक और तन्तिपाल भी आकर अपने स्थान पर बैठ गये। सभी उत्सुक होकर उस देवपुत्र की प्रतीक्षा में थे। आज देवपुत्र राज्यसभा में प्रकट होगा। सभी के मन में यह बात हर्ष उत्पन्न कर रही थी। पाण्डुपुत्रों की वेशभूषा आज आकर्षक थी। सभी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित थे। बृहन्नला को धनुष धारण किए देख लोग कानाफूसी करने लगे—"अरे यह तो वही बृहन्नला है, जो राजभवन में नृत्य-गान सिखाता है। यह तो वीर वेशभूषा में है। वे ग्रंथिक और तन्तिपाल भी अस्त्र-शस्त्र धारण किए हुए हैं। क्या वे आज यहां से विदा लेकर जा रहे हैं?" ऐसी बहुत बातें लोग करने लगे।

कुछ समय उपरांत राजा विराट राजकुमार भूमिजय के साथ राजसभा में प्रविष्ट हुए। राजा के स्वागत में सभी सभासद, नागरिक उठकर खड़े हो गये, परंतु पांचों पाण्डव खड़े नहीं हुए। यह बात सभी सभासदों एवं अन्य लोगों को विचित्र लगी। सबकी दृष्टि पांचों पाण्डवों की ओर लगी हुई थी। तभी अर्जुन ने राजा के सम्मुख जाकर राजा को अभिवादन करके कहा, "राजन्, अब हम अपने अज्ञातवास से मुक्त होकर अपने महाराज युधिष्ठिर के अधीन हैं। अतः हमने उठकर आपको अभिवादन भी नहीं किया। ये कंक नामधारी हमारे महाराज युधिष्ठिर हैं जो धर्मज्ञ, नीतिपालक, कर्तव्यपरायण, प्रजापालक और दृढ़ प्रतिज्ञ हैं। वह आपसे भी बड़े हैं। अतः हम आपको प्रणाम नहीं कर सकते। हम अब वनवास और अज्ञातवास की प्रतिज्ञा से मुक्त हो चुके हैं। राजन्, हम आपके राज्य में सुखपूर्वक एक वर्ष तक अज्ञातवास में रहे हैं और आपने गर्भस्थ शिशुवत् माता के समान हमारा पालन किया है। हम आपके उपकार को कैसे भुला सकते हैं!" उसी समय राजकुमार उत्तर हर्षित होकर अपने आसन से उठकर बोले, "महाराज, ये देवपुत्र आज स्वयं आपके समक्ष प्रकट हो गये हैं। ये बृहन्नला के वेश में स्वयं गाण्डीवधारी अर्जुन हैं जिन्होंने अकेले कौरवदल को विदीर्ण कर मत्स्य राज्य की मर्यादा की रक्षा की है। मैंने इस तथ्य को आपसे छिपाये रखा, परन्तु इन्होंने स्वयं ही अपना असली रूप प्रकट कर दिया है।" राजा आश्चर्यचकित रह गये। वे मन में सोचने लगे, हिजड़ा बनकर इस वीर-शिरोमणि ने अपने धर्म का निर्वाह किया? क्या ये

मत्स्य राष्ट्र के रक्षक और वीरशिरोमणि हैं
युवराज-पद सौंपा जाता है। हर्षध्वनि
गया। राजकुमार ने कौरव वीरों के वस्त्र
मूछित महारथियों के वदन से उतारे गये
चकित रह गई। राजा भावविभोर होकर
"मत्स्य देश वीरता का सदैव पूजक रहा है
पाकर मैं निश्चिंत हो गया हूं। हे राजकु
कैसे सम्पन्न किया? द्रोण, कर्ण, दुर्योधन,
नाम से तो आर्यावर्त कांप जाता है।
कृपाचार्य जैसे महारथियों का तुमने कैसे
बोलने का अवसर प्राप्त हुआ। वह अपनी
बोला, "महाराज, इस विजय का श्रेय मु
समस्त आर्यावर्त्त में व्याप्त है। जब से पा
राजा दुर्योधन ने छल, बल और प्रपंच से
कर लिया। वह मत्स्य राष्ट्र को भी जीत
फंसे रहने के कारण उसने अवसर पाक
उनके आक्रमण से राज्य में हलचल मच
की। मैंने बहाना बनाया कि मेरे पास स
परन्तु बृहन्नला ने मुझे उत्साहित किया
विशाल कौरव दल देखकर मुझे डर ल
कहा और मैं युद्धभूमि से पलायन करने
गया। उसने मुझे धैर्य दिया। उसका
देखकर मैं चकित हो गया। उसने कह
शंखनाद किया तो कौरवदल के गज
अमोघ अस्त्र थे। वह कौरवदल में
जाता है। उसने बाणवर्षा कर सैनिक
छोड़कर भागने लगे। उसी ने महा
वस्त्राभूषण मैंने उसी की आज्ञा से

राजकुमार ने अर्जुन के कहने से
लिया था। राजा इस आश्चर्यजनक
लगे, यह देवपुत्र सैरन्ध्री की रक्षा
से पूछा, "राजकुमार, वह देवपुत्र
सकता है?" राजकुमार ने
राजसभा में प्रकट होगा। महाराज

स्वीकार करने को तत्पर हूं। मेरा पुत्र सुभद्राकुमार अभिमन्यु श्रीकृष्ण का भानजा है। वह मेरे समान ही रूप, बल, गुण से सम्पन्न है। बोलो, विराटराज, क्या तुम्हें यह सम्बन्ध स्वीकार है?"

विराट-नरेश अर्जुन की मानसिकता से बहुत प्रभावित हुए। वह बोले, "पाण्डुनन्दन, तुम इन्द्रियजयी हो। तुम्हारे चरित्र को लोकापवाद धूमिल नही कर सकता।" राजा विराट ने आनर्त देश से सुभद्रा, अभिमन्यु, श्रीकृष्ण, बलराम आदि वृष्णिवंशियों को बुलाने चतुर दूत भेज दिए।

आठ

सभाभवन में पांचाल-नरेश द्रुपद एवं विराटराज उच्च आसनो पर विराजमान थे क्योंकि वे सबमे अग्रज एवं सम्माननीय थे। वही शिनिवंश के श्रेष्ठ वीर सात्यकि एवं मधुवंशी बलरामजी भी बैठे थे। दूसरी ओर श्रीकृष्ण, अपने भाइयो सहित युधिष्ठिर तथा प्रद्युम्न, साम्ब, अभिमन्यु एवं द्रौपदी के पांचों पुत्ररत्न जड़ित मंचों पर विराजमान थे। सभाभवन मे विराटराज के परिजन एवं सम्बन्धी भी अपने-अपने स्थानों पर बैठे थे। अभिमन्यु के विवाह के शुभ अवसर पर सभी लोग हर्षित दिखाई दे रहे थे। श्रीकृष्ण अपने मंच से उठकर खड़े हुए और राजाओं को संकेत करके बोले, "हे नरेशो, यह सर्वविदित है कि सुबलपुत्र शकुनि ने जुए में छल द्वारा धर्मपुत्र युधिष्ठिर को हराकर उनका राजपाट हरण करवा लिया था। उन्हें बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास दिया गया था। पाण्डुपुत्रों ने शर्त के अनुसार वनवास एवं अज्ञातवास धैर्यपूर्वक काटकर अपना धर्मपालन किया है। अब वे अपने खोये हुए राज्य को पाने के अधिकारी हैं। राजा दुर्योधन और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर दोनों ही कौरव कुल की संतान हैं। यहा उपस्थित सभी सभासद यह निश्चय करें कि पाण्डवों का छल द्वारा अपहरण किया हुआ राज्य उन्हें शांति-पूर्वक पुनः प्राप्त हो जाए। मेरा मत है कि कोई विवेकवान व्यक्ति दूत बनाकर महाराज धृतराष्ट्र के पास हस्तिनापुर भेजा जाए जो सत्य-असत्य से अवगत करा-कर पाण्डवों का राज्य दिलाने को उन्हें सहमत कर सके।"

श्रीकृष्ण के न्यायपूर्ण कथन की सभी राजा प्रशंसा करने लगे। बलरामजी श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए बोले, "हे नरेशो, श्रीकृष्ण की वाणी सत्य से पूर्ण है। हमको ऐसा मार्ग अपनाना चाहिए जिससे एक ही कुल में उत्पन्न हुए भाइयों में सद्भावना उत्पन्न हो सके। मृदु वचनों के जल से क्रोधाग्नि बुझाई जा सकती है। दुर्योधन को पाण्डुपुत्रों पर क्रोध है। वह क्रोध शत्रुता में परिवर्तित न हो जाए, इसके लिए कोई नीतिज्ञ गुणी पुरुष उन्हे वहां जाकर नीति का मार्ग दिखाए।

ही पांचों पाण्डव हैं ? राजकुमार ने पुनः कहा, "पिताश्री, आप विस्मय न करें, ये ही पांचों पाण्डव हैं । जो पाकशाला में रसोइया के रूप में कार्य कर रहे थे, वह महान् गदाधारी भीमसेन हैं । सैरन्ध्री दासी नहीं महारानी द्रौपदी हैं जिनके सतीत्व की रक्षा के लिए दुष्ट सेनापति कीचक का वध किया गया है । ये तन्तिपाल और ग्रंथिक राजकुमार नकुल, सहदेव हैं ।" राजा यह सुनकर अपने हर्षातिरेक को रोक न सके । वे स्वयं युधिष्ठिर के समीप जाकर बोले, "धर्मपुत्र, आप मेरे साथ सिंहासन पर आसीन हों । आपने एक वर्ष तक दास बनकर मेरा कार्य किया है । मेरे कठोर व्यवहार को भी अपने धैर्य से सहन किया है । हे आर्य ! मेरा समस्त सैन्यबल, कोष, सम्पदा आपकी सहायता को प्रस्तुत है । आप दुष्ट दुर्योधन से अपना राज्य पुनः प्राप्त करें ।" यह कहकर विराटराज ने युधिष्ठिर को अपने सिंहासन पर बैठा लिया । "महाराज युधिष्ठिर की जय, विराटराज की जय," सभाभवन हर्षध्वनि से गूंज उठा । विराटराज ने राजरानी द्रौपदी को भी सभाभवन में बुलाकर सम्मानित किया । फिर राजा ने अर्जुन से कहा, "हे वीरश्रेष्ठ, क्या आप मेरी अभिलाषा पूर्ण करोगे ? आपने मत्स्य राज्य को शत्रुओं से बचाकर मुझे सदा के लिए ऋणी बना दिया है ।"

"महाराज, वरदान देने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है । मैं तो धर्मज्ञ भ्राता का अनुचर हूं । वे ही आपकी अभिलाषा पूर्ण करेंगे ।" अर्जुन ने कहा ।

"अच्छा मैं धर्मपुत्र युधिष्ठिर से ही याचना करता हूं । हे पाण्डुनन्दन, मेरी पुत्री कुमारी उत्तरा गाडीवधारी अर्जुन के संरक्षण में नृत्यकला, संगीत विद्या सीखती रही है । वह उसके गुणों से परिचित है । मेरी सदैव यह इच्छा रही कि मैं अपनी पुत्री का वरण श्रेष्ठ वीर पुरुष से करूं । वीरवर अर्जुन के समान मुझे और कौन वीर मिलेगा जिनके गाडीव की टंकार भूलोक से स्वर्गलोक तक सुनाई देती है । मेरी इस इच्छा को पूर्ण कर आप मत्स्य राष्ट्र और पाण्डुकुल की मैत्री को सुदृढ़ बनाइए ।"

युधिष्ठिर ने अर्जुन की ओर देखकर कहा, "राजन्, इसका उत्तर स्वयं अर्जुन ही दे सकेंगे ।" अर्जुन विनीत होकर बोले, "हे नरेश, आपकी कन्या को मैं एक वर्ष तक राजभवन में संगीत एवं नृत्यकला की शिक्षा देता रहा हूं । आपकी कन्या का मेरे प्रति अत्यन्त अनुराग रहा है । आपकी पुत्री मुझे आचार्य के रूप में मानती रही है और मैं भी उसे शिष्या के रूप में पुत्रीवत् प्रेम करता रहा हूं । वात्सल्य प्रेम निरासक्त एवं एक रस रहता है । दाम्पत्य प्रेम देह की आसक्ति से बंधा होने के कारण प्रौढ़ावस्था में कर्तव्योन्मुख हो जाता है । यदि मैं राजकुमारी से विवाह करना स्वीकार कर लूं तो समस्त लोक में मेरे गुरु-शिष्य के भाव के प्रति भ्रम पैदा हो जायेगा । क्या उस लोकापवाद से आप मेरे चरित्र पर संदेह नहीं करने लगेंगे ? मेरा अब भी उत्तरा के प्रति पुत्री भाव है । अतः मैं उसे अपनी पुत्री के रूप में ही

स्वीकार करने को तत्पर हूं। मेरा पुत्र सुभद्राकुमार अभिमन्यु श्रीकृष्ण का भानजा है। वह मेरे समान ही रूप, बल, गुण से सम्पन्न है। बोलो, विराटराज, क्या तुम्हें यह सम्बन्ध स्वीकार है?"

विराट-नरेश अर्जुन की मानसिकता से बहुत प्रभावित हुए। वह बोले, "पाण्डुनन्दन, तुम इन्द्रियजयी हो। तुम्हारे चरित्र को लोकापवाद धूमिल नही कर सकता।" राजा विराट ने आनर्त देश से सुभद्रा, अभिमन्यु, श्रीकृष्ण, बलराम आदि वृष्णिवशियों को बुलाने चतुर दूत भेज दिए।

आठ

सभाभवन में पांचाल-नरेश द्रुपद एवं विराटराज उच्च आसनो पर विराजमान थे क्योंकि वे सबमें अग्रज एव सम्माननीय थे। वही शिनिवंश के श्रेष्ठ वीर सात्यकि एवं मधुवंशी बलरामजी भी बैठे थे। दूसरी ओर श्रीकृष्ण, अपने भाइयो सहित युधिष्ठिर तथा प्रद्युम्न, साम्ब, अभिमन्यु एवं द्रौपदी के पांचों पुत्ररत्न जड़ित मंचों पर विराजमान थे। सभाभवन में विराटराज के परिजन एवं सम्बन्धी भी अपने-अपने स्थानों पर बैठे थे। अभिमन्यु के विवाह के शुभ अवसर पर सभी लोग हर्षित दिखाई दे रहे थे। श्रीकृष्ण अपने मंच से उठकर खड़े हुए और राजाओं को संकेत करके बोले, "हे नरेशो, यह सर्वविदित है कि सुबलपुत्र शकुनि ने जुए में छल द्वारा धर्मपुत्र युधिष्ठिर को हराकर उनका राजपाट हरण करवा लिया था। उन्हें बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास दिया गया था। पाण्डुपुत्रों ने शर्त के अनुसार वनवास एवं अज्ञातवास धैर्यपूर्वक काटकर अपना धर्मपालन किया है। अब वे अपने खोये हुए राज्य को पाने के अधिकारी हैं। राजा दुर्योधन और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर दोनो ही कौरव कुल की संतान हैं। यहां उपस्थित सभी सभासद यह निश्चय करें कि पाण्डवों का छल द्वारा अपहरण किया हुआ राज्य उन्हें शांति-पूर्वक पुनः प्राप्त हो जाए। मेरा मत है कि कोई विवेकवान व्यक्ति दूत बनाकर महाराज धृतराष्ट्र के पास हस्तिनापुर भेजा जाए जो सत्य-असत्य से अवगत करा-कर पाण्डवों का राज्य दिलाने को उन्हें सहमत कर सके।"

श्रीकृष्ण के न्यायपूर्ण कथन की सभी राजा प्रशंसा करने लगे। बलरामजी श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए बोले, "हे नरेशो, श्रीकृष्ण की वाणी सत्य से पूर्ण है। हमको ऐसा मार्ग अपनाना चाहिए जिससे एक ही कुल में उत्पन्न हुए भाइयों मे सद्भावना उत्पन्न हो सके। मृदु वचनों के जल से क्रोधाग्नि बुझाई जा सकती है। दुर्योधन को पाण्डुपुत्रों पर क्रोध है। वह क्रोध शत्रुता में परिवर्तित न हो जाए, इसके लिए कोई नीतिज्ञ गुणी पुरुष उन्हें वहा जाकर नीति का मार्ग दिखाए।

दुर्योधन शक्तिसम्पन्न है। पाण्डवों को जुआ प्रिय था। अतः जुए के कारण ही उन्हें राज्य से हाथ धोना पड़ा है। पाण्डवो को भी सर्वथा निर्दोष नहीं कहा जा सकता। अतः इस समय ऐसे नीतिकुशल पुरुष को भेजा जाए जो दोनो तरफ के भाइयों में शांति स्थापित कर सके।"

दुर्योधन बलराम जी का शिष्य रहा था। उन्होने राज्य अपहरण में पाण्डवों को भी निर्दोष नही माना। समीप बैठे सात्यकि ने अभिवादन करके कहा, "वीरो, बलरामजी का कथन सत्य-असत्य का निर्णय नही कर सकता। वृक्ष पर शाखाएं एक-सी नही होती, इसी प्रकार एक कुल में उत्पन्न दो व्यक्ति समान आचरण के नहीं हो सकते—एक वीर दूसरा कायर, एक धर्मज्ञ दूसरा अत्याचारी। सद्बुद्धि सदैव सत्य, धर्म, नीति का पक्ष ग्रहण करती है। आर्य सदैव निर्भय वाणी से अन्यायी का प्रतिरोध करते हैं। आर्य पथ पर चलने वाले पाण्डुपुत्रों ने कभी अपने धर्म को नही छोड़ा। दुर्योधन ने अपने सभाभवन में उन्हें बुलाकर छल से शकुनि द्वारा जुए में हराया। उन्हें बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास दिलवाया। पाण्डवो ने इस कठोर शर्त का धैर्यपूर्वक निर्वाह किया। अब वे राज्य पाने के अधिकारी हैं। प्रतिज्ञा पूरी करने के उपरांत भी युधिष्ठिर अब राज्य मांगने दुर्योधन के पास भिखारी बनकर क्यों जाएं ? याचना करने से अधिकार प्राप्त नहीं होता। वीर ही इस वसुन्धरा का स्वामी होता है। युद्ध के लिए हमें सन्नद्ध रहना चाहिए।"

राजा द्रुपद ने भी सात्यकि की बात का समर्थन किया। वह बोले, "महीपालो, बलरामजी का कथन उचित नही है। दुर्योधन से अनुनय-विनय से राज्य प्राप्त नही हो सकता। दुष्ट मनुष्य मृदु वचन बोलने वाले को कायर और डरपोक समझता है। हमें अपने मित्र शल्य, धृष्टकेतु, जयत्सेन, एवं समस्त केकय नरेशों को पत्र भेजकर युद्ध का संदेश देना चाहिए। हां, पहले पुरोहित को उचित संदेश देकर धृतराष्ट्र के पास भेज देना उचित है। वहां भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विदुर जैसे नीतिज्ञ पुरुष हैं। उनके समक्ष संधि-प्रस्ताव भेजना परमावश्यक है।"

दुर्योधन का गुप्तचर विभाग सतर्कता से काम कर रहा था। श्रीकृष्ण, सात्यकि, द्रुपद आदि के विराटनगर में पहुंचने से लेकर अभिमन्यु के विवाह तक का समाचार दुर्योधन को प्राप्त हो गया था। दुर्योधन जानता था कि कृष्ण एक श्रेष्ठ मानव और विशाल वाहिनी के स्वामी हैं। वह सत्य के पक्षपाती और दृढ़-निश्चयी हैं। वह अर्जुन के मित्र और पाण्डवों के हितैषी हैं। श्रीकृष्ण से सहायता लेने वह द्वारका को रवाना हुआ। श्रीकृष्ण अब तक विराटनगर से द्वारका पहुंच चुके थे।

नौ

द्वारका में पहुंचकर जब दुर्योधन ने श्रीकृष्ण के भवन में प्रवेश किया तब वह शयन-कक्ष में विश्राम कर रहे थे। दुर्योधन श्रीकृष्ण के सिरहाने रखे हुए एक स्वर्ण मच पर बैठ गया। कुछ समय उपरांत अर्जुन भी श्रीकृष्ण के शयनागार मे प्रविष्ट हुए। वह श्री कृष्ण के जागने की प्रतीक्षा में पैरों की तरफ खड़े हो गये। दुर्योधन का मन शंकित हो गया। क्या श्रीकृष्ण अर्जुन के कारण मेरी उपेक्षा कर देंगे? श्रीकृष्ण तो कौरव-पाण्डवों के एक समान मित्र हैं। थोड़ी देर बाद कृष्ण जाग गये। उनकी दृष्टि पहले अर्जुन पर पड़ी। वह बोले, "अर्जुन, कुशल से तो हो?" इतने में दुर्योधन ने भी श्रीकृष्ण को अभिवादन किया। वह बोला—"श्रीकृष्ण, मैं आपसे मिलने के लिए कब से प्रतीक्षा मे बैठा हूं। आपको कौरव-पाण्डव दोनों ही समान हैं। मैं आपसे सहायता लेने पहले आया हूं। नीति के अनुसार आपको पहले मुझे सहायता देनी चाहिए।" श्रीकृष्ण दुर्योधन को देखकर मुस्कराकर बोले, "हे कुरुनन्दन! आप पहले आये हैं यह सत्य है, परन्तु मेरी दृष्टि पहले अर्जुन पर पड़ी है। फिर अर्जुन तुमसे छोटा भी है। अतः मैं दोनों की सहायता करूंगा। एक ओर मेरी विशाल नारायणी सेना रहेगी और दूसरी ओर केवल मै रहूंगा। मैं भी युद्ध-भूमि में शस्त्र नही उठाऊंगा। दोनों में से पहले अर्जुन को वरदान मांगने का अधिकार है।" दुर्योधन सशंकित हो गया—कही अर्जुन विशाल नारायणी सेना को न मांग ले। अर्जुन के नेत्र कृष्ण की ओर लगे थे। वह बोला, "प्रभु, मुझे तो आप ही चाहिए।" दुर्योधन का मुखमडल प्रफुल्लित हो गया। उसने श्रीकृष्ण की प्रशंसा की और बलराम के भवन को प्रस्थान किया। बलराम श्रीकृष्ण के मंतव्य को जान गये थे। वह दुर्योधन से बोले, "हे राजन्, तुम श्रेष्ठ भरतवंशी हो। तुम दोनों भाइयों मे घोर विग्रह है। मैं तुम्हारी या पाण्डवों की किसी की सहायता नही करूंगा। तुम क्षत्रिय हो, जाओ क्षात्रधर्म के अनुसार युद्ध करो।"

दुर्योधन बहुत हर्षित था। उसे कृष्ण की शक्तिशाली नारायणी सेना मिल गई थी। दुर्योधन के हस्तिनापुर लौट जाने के बाद श्रीकृष्ण ने मुस्कराते हुए अर्जुन से पूछा, "*मैंने तुम्हें वरदान मांगने का प्रथम अवसर दिया था। तुमने सेना* को क्यों नही मांगा? मैं तो युद्ध में शस्त्र भी नही उठाऊंगा। क्या तुम दुर्योधन से भयभीत हो?" अर्जुन अत्यंत विनीत होकर बोला, "हे जनार्दन, क्षत्रिय पुत्र मृत्यु से नहीं डरते। फिर जहां तुम हो वहां भय कहां? तुम्हें पाकर अब मुझे कुछ पाना शेष नही रहा है। मुझे विश्वास है आप अकेले ही शत्रुदल का संहार कर सकते हो, परन्तु आपने मेरा सारथि बनने के लिए शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की है। सारथ्य कर्म बहुत कठिन है। घोड़ों की लगाम ढीली कर देने पर घोड़े रथ को दुर्गम मार्ग पर लेकर खाई-खन्दक में डाल सकते हैं। फिर आप तो मेरे जीवन-रथ

दुर्योधन शक्तिसम्पन्न है। पाण्डवों को जुआ प्रिय थ
उन्हें राज्य से हाथ धोना पड़ा है। पाण्डवों को भी र
सकता। अतः इस समय ऐसे नीतिकुशल पुरुष को
भाइयों में शांति स्थापित कर सके।"

दुर्योधन बलराम जी का शिष्य रहा था। उन्होंने
को भी निर्दोष नहीं माना। समीप बैठे सात्यकि ने आ
बलरामजी का कथन सत्य-असत्य का निर्णय नहीं कर
एक-सी नहीं होती, इसी प्रकार एक कुल में उत्पन्न दे
नहीं हो सकते—एक वीर दूसरा कायर, एक धर्मज्ञ दू
सदैव सत्य, धर्म, नीति का पक्ष ग्रहण करती है। आर्य सद
का प्रतिरोध करते हैं। आर्य पथ पर चलने वाले पाण्ड
नहीं छोड़ा। दुर्योधन ने अपने सभाभवन में उन्हें बुलाक
में हराया। उन्हें बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष क
पाण्डवों ने इस कठोर शर्त का धैर्यपूर्वक निर्वाह किया।
कारी हैं। प्रतिज्ञा पूरी करने के उपरांत भी युधिष्ठिर
के पास भिखारी बनकर क्यों जाएं? याचना करने से अ
वीर ही इस वसुन्धरा का स्वामी होता है। युद्ध के
चाहिए।"

राजा द्रुपद ने भी सात्यकि की बात का समर्थन किया
बलरामजी का कथन उचित नहीं है। दुर्योधन से अनुनय
नहीं हो सकता। दुष्ट मनुष्य मृदु वचन बोलने वाले को
समझता है। हमें अपने मित्र शल्य, धृष्टकेतु, जयत्सेन, एव
को पत्र भेजकर युद्ध का संदेश देना चाहिए। हां, पहले पुरो
देकर धृतराष्ट्र के पास भेज देना उचित है। वहां भीष्म,
जैसे नीतिज्ञ पुरुष हैं। उनके समक्ष संधि-प्रस्ताव भेजना परम

दुर्योधन का गुप्तचर विभाग सतर्कता से काम कर
सात्यकि, द्रुपद आदि के विराटनगर में पहुंचने से लेकर आ
का समाचार दुर्योधन को प्राप्त हो गया था। दुर्योधन जा
श्रेष्ठ मानव और विशाल वाहिनी के स्वामी हैं। वह सत्य वे
निश्चयी हैं। वह अर्जुन के मित्र और पाण्डवों के हितैषी हैं।
लेने वह द्वारका को रवाना हुआ। श्रीकृष्ण अब तक विराट
चुके थे।

भयभीत करने के लिए की है। तुम्हारी बातें अति तीखी हैं। युधिष्ठिर जुआ में अपना राज्य हार गये, यह सर्वविदित है। अब वह मत्स्य और पांचाल राज्य के बलबूते पर राज्य लेना चाहते हैं। राजा सुयोधन समय पर इसका उत्तर देंगे। यदि पाण्डव राज्य प्राप्त करना चाहते हैं तो वे स्वयं आकर महाराज से विनय करें। उन्होंने अभी प्रतिज्ञा पूरी नहीं की है। उन्हें राजा सुयोधन आधा क्या चौथाई राज्य भी नहीं देंगे। ब्राह्मण, तुम अपने महाराज को संदेश देना कि राजा सुयोधन सदैव निर्भीक होकर राज्य करते है। पाण्डव अपने वचनों का पालन करने के लिए पुनः बारह वर्ष वन में जाएं, तभी वे आधे राज्य के अधिकारी हो सकते हैं।"

समस्त सभा मौन थी। दुर्योधन की कुटिलता से सभासद आतंकित थे। जब सत्य को दंभ-द्वेष की अनीति घेर लेती है, सांकर्य दोष से मानव-बुद्धि तमसाच्छन्न हो जाती है, तभी विनाश के बादल छा जाते है। शासन छल-प्रपंच के वश में पंगु बन गया था जिसका कुपरिणाम आर्यावर्त्त को भुगतना पड़ा। उस सभा मे भीष्म जैसे सत्य संगर वीर भी थे। वे कर्ण की कुटिल वाणी को सहन न कर सके। वे कौरव वंश की चौथी पीढ़ी के सचेतक थे। वे निर्भीक वाणी में बोले, "हे राधेय, तुम कुरुकुल के पोत को युद्ध के भयंकर समुद्र में डुबोने पर तुले हो। सत्य अत्यंत विलक्षण और कटु होता है। ब्रह्मदेव ने जो कुछ कहा है, वह हृदय मे चुभने वाला परन्तु सत्य है। क्या पाण्डुपुत्र कौरव कुल के नहीं है ? क्या उन्हे तेरह वर्ष का वनवास और अज्ञातवास देकर राज्य से वंचित नहीं किया गया ? क्या वे अब भी आधा राज्य पाने के अधिकारी नहीं हैं ? सत्य को कब तक झुठलाया जा सकता है ? जब किसी व्यक्ति को उसके स्वत्व से वंचित किया जाता है, तब युद्ध की अग्नि सुलगने लगती है। विजय तो सदैव सत्य की ही होती है। वीर ही इस वसुधरा का स्वामी बनता है। पाण्डव बल-पराक्रम मे श्रेष्ठ है। क्या तुम विराट-नगर के युद्ध को भूल गये जब अर्जुन ने अकेले ही कौरव सेना को जीतकर तुम्हारे एवं अन्य महारथियों के वस्त्र उतरवा लिए थे ? कर्ण, आज बढ़-बढ़कर बातें कर रहे हो। पांचाल देश में द्रौपदी के स्वयंवर के अवसर पर अर्जुन ने लक्ष्य बेध कर सबको परास्त किया था। उस स्वयंवर में तुम भी गये थे। उस समय तुम्हारी वीरता कहां चली गई थी ? हे राजन्, कुरुकुल को युद्ध के महाविनाश से बचाओ।"

धृतराष्ट्र ने उठकर भीष्म की बात का समर्थन किया। वह बोले, "पितामह, यह कर्ण बड़ा दंभी है। यह अपने अविवेक से सुयोधन को घोर अंधकार में ले जा रहा है।"

भीष्म के निकट बैठे हुए विदुर ने भी कहा, "महाराज, आज यहां नीति-अनीति, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य का प्रश्न उठ कर खड़ा हो गया है। क्या छल-प्रपंच की नीति से शासन मे सांकर्य-दोष उत्पन्न नहीं होगा ? व्यक्तिगत स्वार्थ,

के सारथि हो। मैंने जीवन की बागडोर आपके हाथ सौंप दी है। भवसागर में आप ही मेरे नाविक हैं।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन को हृदय से लगा लिया—"पार्थ, इस महासमर मे विजय उनको ही मिलती है, जो सत्य-ध्वज को धारण कर, इन्द्रिय-तुरंगों को वश मे रखकर धर्मरथ पर सवार होकर धैर्य के धनुष को धारण कर युद्ध करते हैं। मुझे सारथि चुनकर तुमने अजेय रक्षा-कवच धारण कर लिया है। अर्जुन, मैं तुम्हारा रक्षक बनूंगा।"

दस

महाराज धृतराष्ट्र की राजसभा मे भीष्म, द्रोण, विदुर, कर्ण एवं सभी कौरव उपस्थित थे। यह सभा युद्ध का निर्णय करने को बुलाई गई थी। उसी समय वहा द्रुपद के राजपुरोहित पाण्डवों का संदेश लेकर उपस्थित हुए। पुरोहित का मुख-मंडल दिव्य तेज से उद्भासित हो रहा था। उसने शातिवादन कर आसन ग्रहण किया। उन्होंने दोनों ओर के कुशल प्रश्न करके सभा-मध्य सदेश कहा—"राजन्, मुझे राजा द्रुपद ने पाण्डवों के कार्य के लिए भेजा है। आपको विदित है, पाण्डवों ने बारह वर्ष का वनवास-काल और एक वर्ष के अज्ञातवास का घोर कष्टमय जीवन व्यतीत कर अपने वचनों को निभाया है। महाराज धृतराष्ट्र, आप स्वयं और पाण्डु एक ही पिता की संतान हैं। पिता की सम्पत्ति मे दोनों का समान अधिकार है। कौरवों ने अपने पैतृक वैभव को प्राप्त कर पाण्डवो को छल से तेरह वर्षों का वनवास देकर राज्य से वंचित कर रखा है। पाण्डव अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर अपना आधा राज्य पाने के अब अधिकारी हैं। राजन्! वे धर्मज्ञ, पराक्रमी और दृढ़प्रतिज्ञ हैं। वे देवदूतों की भांति शांति चाहते हैं। युद्ध में भीषण नर-सहार होता है, राष्ट्र का धन, जन, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान सबको क्षति पहुचती है। पृथ्वी रक्तरंजित हो जाती है। चारो ओर हाहाकार सुनाई देता है। रक्तक्रांति के उपरान्त शाति आती है, परन्तु यह शांति पैशाचिक श्मशान की शांति होती है। सद्बुद्धि सदैव उस महाविनाश को रोकने का प्रयत्न करती है। मेरे शांति-संदेश देने का यह अर्थ बिलकुल न लगायें कि पाण्डुपुत्र युद्ध से भयभीत हैं। वे अन्याय का प्रतिकार करने को काल से भी जूझ सकते है। हे महाराज, आप न्याय-अन्याय का समाधान करने मे समर्थ हैं। आप ऐसा मार्ग निकालें जिससे कौरव वंश युद्ध की विभीषिका से बच जाय।"

पुरोहित की ओर सबकी दृष्टि लगी हुई थी। कर्ण ने उठकर पुरोहित से कहा—"ब्राह्मण, भूतकाल के गर्भ मे बहुत-सी बातें विलीन रहती हैं। उनके सत्यासत्य के निर्णय करने वाले तुम कौन हो? तुमने युद्ध की भविष्यवाणी हमको

भयभीत करने के लिए की है। तुम्हारी बातें अति तीखी हैं। युधिष्ठिर जुआ मे अपना राज्य हार गये, यह सर्वविदित है। अब वह मत्स्य और पांचाल राज्य के बलबूते पर राज्य लेना चाहते है। राजा सुयोधन समय पर इसका उत्तर देंगे। यदि पाण्डव राज्य प्राप्त करना चाहते हैं तो वे स्वयं आकर महाराज से विनय करे। उन्होने अभी प्रतिज्ञा पूरी नही की है। उन्हे राजा सुयोधन आधा क्या चौथाई राज्य भी नही देंगे। ब्राह्मण, तुम अपने महाराज को संदेश देना कि राजा सुयोधन सदैव निर्भीक होकर राज्य करते हैं। पाण्डव अपने वचनो का पालन करने के लिए पुनः बारह वर्ष वन मे जाएं, तभी वे आधे राज्य के अधिकारी हो सकते हैं।"

समस्त सभा मौन थी। दुर्योधन की कुटिलता से सभासद आतंकित थे। जब सत्य को दंभ-द्वेष की अनीति घेर लेती है, सांकर्य दोष से मानव-बुद्धि तमसाच्छन हो जाती है, तभी विनाश के बादल छा जाते हैं। शासन छल-प्रपंच के वश में पगु बन गया था जिसका कुपरिणाम आर्यावर्त्त को भुगतना पड़ा। उस सभा मे भीष्म जैसे सत्य संगर वीर भी थे। वे कर्ण की कुटिल वाणी को सहन न कर सके। वे कौरव वंश की चौथी पीढ़ी के सचेतक थे। वे निर्भीक वाणी में बोले, "हे राधेय, तुम कुरुकुल के पोत को युद्ध के भयंकर समुद्र में डुबोने पर तुले हो। सत्य अत्यत विलक्षण और कटु होता है। ब्रह्मदेव ने जो कुछ कहा है, वह हृदय मे चुभने वाला परन्तु सत्य है। क्या पाण्डुपुत्र कौरव कुल के नही हैं? क्या उन्हे तेरह वर्ष का वनवास और अज्ञातवास देकर राज्य से वचित नही किया गया? क्या वे अब भी आधा राज्य पाने के अधिकारी नही हैं? सत्य को कब तक झुठलाया जा सकता है? जब किसी व्यक्ति को उसके स्वत्व से वचित किया जाता है, तब युद्ध की अग्नि सुलगने लगती है। विजय तो सदैव सत्य की ही होती है। वीर ही इस वसुंधरा का स्वामी बनता है। पाण्डव बल-पराक्रम में श्रेष्ठ है। क्या तुम विराट-नगर के युद्ध को भूल गये जब अर्जुन ने अकेले ही कौरव सेना को जीतकर तुम्हारे एवं अन्य महारथियों के वस्त्र उतरवा लिए थे? कर्ण, आज बढ़-बढ़कर बातें कर रहे हो। पांचाल देश में द्रौपदी के स्वयंवर के अवसर पर अर्जुन ने लक्ष्य बेध कर सबको परास्त किया था। उस स्वयंवर में तुम भी गये थे। उस समय तुम्हारी वीरता कहां चली गई थी? हे राजन्, कुरुकुल को युद्ध के महाविनाश से बचाओ।"

धृतराष्ट्र ने उठकर भीष्म की बात का समर्थन किया। वह बोले, "पितामह, यह कर्ण बड़ा दंभी है। यह अपने अविवेक से सुयोधन को घोर अंधकार मे ले जा रहा है।"

भीष्म के निकट बैठे हुए विदुर ने भी कहा, "महाराज, आज यहां नीति-अनीति, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य का प्रश्न उठ कर खड़ा हो गया है। क्या छल-प्रपंच की नीति से शासन मे सांकर्य-दोष उत्पन्न नही होगा? व्यक्तिगत स्वार्थ,

द्वेष से पीड़ित चाटुकार, खल-धर्म का आवरण ओढ़कर राजनीति को सांकर्य-भाव से विषैला बना रहे हैं। सत्य है, कायरता सदैव चाटुकारों से प्रश्रय लेकर सिंह वेश में स्यार का अभिनय करती है। भीष्म सबके पूज्य और राज्य के रक्षक हैं। उनका कथन सत्य है कि कापुरुषों ने राज्य की कीर्ति, यश और श्री को अहंकार के दांव पर लगा दिया है। आप इस महान भरतवंश की रक्षा कीजिए।"

विदुर एवं भीष्म के कथन को सुनकर धृतराष्ट्र के अन्तःचक्षु प्रदीप्त हो गये। उन्होने संजय को बुलाकर आज्ञा दी कि पांचालराज द्रुपद के पास जाकर उन्हें मेरा शांति-प्रस्ताव प्रस्तुत करें।

ग्यारह

संजय ने द्रुपदराज की राजधानी मे पहुंच कर उपप्लव क्षेत्र मे प्रवेश किया जहां युधिष्ठिर अपने भ्राताओं एवं श्रीकृष्ण सहित पुरोहित द्वारा प्राप्त संदेश पर विचार-विमर्श कर रहे थे। उसी समय संजय ने वहां प्रवेश किया जिसे देखकर युधिष्ठिर को उत्सुकता हुई। उन्होने संजय को आसन प्रदान कर पूछा, "कहो संजय, महाराज धृतराष्ट्र अपने पुत्रो सहित कुशल से तो हैं? माता गाधारी प्रसन्न हैं? राज्य मे प्रजा सुख-चैन से है?"

सजय ने श्रीकृष्ण सहित सभी पाण्डुपुत्रों का अभिवादन करके कहा, "हे धर्म-पुत्र, हस्तिनापुर मे सभी कुशल से है। महाराज धृतराष्ट्र ने आप सबको मंगल-कामना भेजी है। हे धर्मज्ञ-शिरोमणि, महाराज धृतराष्ट्र शांति के समर्थक हैं। वह चाहते हैं कि कौरवकुल के दोनो भाई शांतिपूर्वक रहें जिससे कुरुवंश की अभिवृद्धि हो। हे कौन्तेय, युद्ध अत्यन्त क्रूर कर्म है जिसमे सर्वत्र विनाश हो जाता है। हिंसा एवं रक्तपात से पृथ्वी पर पापो का नृत्य होने लगता है। स्वार्थ के वशीभूत होकर मानव अपनी विवेक बुद्धि को खो बैठता है। यदि आप ही युद्ध मे विजयी रहे तो क्या आप स्वजनों को मारकर सुखी रहेंगे? युद्ध मे जय-पराजय निश्चित नही है। फिर इस निन्दित कर्म को करके आप धर्म की रक्षा कैसे करेंगे? अर्थ का तो विनाश हो ही जाएगा।"

युधिष्ठिर ने मृदुवाणी में कहा, "हे संजय, शांति धैर्य से मिलती है। धर्म को धारण करने वाला भी धैर्य है। हमने धैर्य धारण कर बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास धर्मानुसार व्यतीत किया है। तुम बताओ, मैंने युद्ध करने की इच्छा कब प्रकट की है? मैंने धर्म की मर्यादा को कहां भंग किया है? महाराज धृतराष्ट्र अपने पुत्रो की स्वार्थपूर्ति के लोभवश हमारी पैतृक सम्पत्ति को हड़प लेना चाहते हैं। क्या यह धर्म है? शांति कायरो का धन नही है। वीर ही शांति

का वरण कर सकता है। संजय, जब तक धर्म मेरे साथ है, जब तक भीमसेन, अर्जुन नकुल, सहदेव जीवित हैं, हमारे पैतृक स्वत्व को इन्द्र भी हरण नहीं कर सकते।"

"हे पाण्डुनन्दन, आपका यश धर्म के कारण समस्त आर्यावर्त्त में फैल रहा है। यदि कौरव आपका उत्तराधिकार हड़प भी लें, आपको पंचाल राज्य में अतिथि के समान भी जीवन व्यतीत करना पड़े, तब भी आप युद्ध के भीषण कर्म को न अपनाइए। यह संपत्ति, वैभव अति चंचल-नश्वर है। धर्म नित्य है। यदि दुराग्रही दुर्योधन आपको पैतृक भाग न भी दे, तो भी आप युद्ध का वरण करके नरसंहार न अपनाइए। आप काम-क्रोध के वशीभूत नहीं हैं अतः आप क्रोध की व्याधि को कटु औषधि समझकर पी जाइए। क्रोध से युद्ध तथा उससे भीषण नर-संहार एवं मानवता का विनाश होता है। क्या आप भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, भूरिश्रवा, विविंशत, दुर्योधन आदि को मार कर सुखी हो पायेंगे? यह सृष्टि जरा, मृत्यु, सुख, दुख से नहीं बच सकती, अतः मेरी सम्मति है कि आप युद्ध की अग्नि को प्रज्वलित न होने दें।" संजय युधिष्ठिर के सम्मुख विनय भाव से कह रहा था।

युधिष्ठिर संजय के कौरवपक्षीय संदेश से तनिक भी विचलित नहीं हुए। वह बोले, "संजय, मुझे धर्म के सुमेरु पर चढ़ाकर कायरता के गर्त में गिराना चाहते हो? कायरों का कोई धर्म नहीं होता। वे मृतक-तुल्य संसार में जीवन धारण करते हैं। उनकी भीरुता युग-युग तक जाति को अपयश के बंधन में बांध लेती है। पितृ-लोकों में पितृगण उनका दिया जल ग्रहण नहीं करते। यह सत्य है कि सब कर्मों में धर्म श्रेष्ठ है, परन्तु तुम यह बताओ कि मैंने स्वधर्म को कहां छोड़ा है? क्या न्यायसंगत स्वत्वाधिकार मांगना अधर्म है? क्या अन्याय-अनीति को सहते रहना क्षत्रिय का श्रेष्ठ धर्म है? हमारे मध्य वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण उपस्थित हैं, इसका निर्णय वह स्वयं करेंगे कि मैंने स्वधर्म का उल्लंघन कहां और कब किया है।"

युधिष्ठिर के कथन से संजय निरुत्तर हो गया। तब श्रीकृष्ण ने कहा, "हे संजय, मैं पाण्डवों का हितैषी होते हुए भी धृतराष्ट्र-पुत्रों का सदैव अभ्युदय चाहता हूं। सद्बुद्धि संसार में मंगलमय सृष्टि का प्रसार चाहती है। मैं पांडवों से सदैव संधि की बात कहता हूं जिससे कुरुकुल में शांति बनी रहे। युद्ध विनाशकारी, अमंगलकारी है। तुम यह भी जानते हो, मुझसे एवं धर्मपुत्र युधिष्ठिर से धर्म का कभी लोप नहीं हो सकता। तुम ज्ञानवान, हो फिर भी कौरवों के स्वार्थ में बंधकर वाग्जाल फैला रहे हो।

"संजय, तुमने शांति को धर्म का मार्ग बताया है। अब तुम्हीं निर्णय करो, जब कोई भूपाल लोभ के वश में होकर पराई धन-सम्पत्ति को हड़प लेना चाहे तो उस समय क्षत्रिय का रणभूमि में युद्ध करना धर्म है या युद्धभूमि को छोड़कर भाग जाना धर्म है? यदि कोई राजा लुटेरा बनकर सैन्य संग्रह कर आक्रमण करे, तो क्या उसके सामने हाथ जोड़कर शांति-पाठ करना धर्म है? संजय, धृतराष्ट्र के पुत्रों में

घिरा हुआ है। मैं कौरवकुल का भृत्य हूं, मुझे अपने कर्तव्य का निर्वाह धैर्यपूर्वक करना पड़ेगा।

महाराज धृतराष्ट्र की राजसभा में पहुंचकर संजय ने सबको अभिवादन कर अपना आसन ग्रहण किया। सभासद उनकी ओर टकटकी लगाये बैठे थे। संजय ने पाण्डवो का कुशल-समाचार सुनाकर कहा, "महाराज, युधिष्ठिर राज्य के पैतृक अर्धभाग को प्राप्त कर सन्धि स्वीकार करने को तैयार हैं। वह अपने पैतृक राज्य के अर्धभाग को प्राप्त न होने पर युद्ध करेंगे। वह इस युद्ध को धर्मयुद्ध के रूप में मानते हैं। भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव सब युद्ध के लिए उतावले हो रहे हैं। अर्जुन के रथ के श्रीकृष्ण स्वय सारथि बनेंगे जो द्वारका से द्रुपदराज के यहा आकर भावी महासमर को टालने का उपाय खोज रहे हैं। वह स्वय दूत बनकर संधि-प्रस्ताव लेकर यहां आनेवाले हैं। सात्यकि अन्य नरेशों के साथ विशाल सेना लेकर आ गये हैं। पाण्डुपुत्र युद्ध से भयभीत नही हैं। उन्होने अन्तिम निर्णय आपके ऊपर ही छोड़ दिया है।"

धृतराष्ट्र की राजसभा में अनेक सत्यवादी चिंतक मनीषी थे जो इस युद्ध की विभीषिका से परिचित थे। दूसरी ओर कुटिल, क्रूर चाटुकार भी थे जो दुर्योधन के मन मे पाण्डवो के प्रति शत्रुता का पोषण करते थे। संजय के वचन सुनकर कर्ण बोला, "महाराज, यह संजय आपके भेजे हुए दूत हैं जो पाण्डवों का पक्ष लेकर प्रस्तुत हुए हैं। राजा सुयोधन पाण्डवो को राज्य का कोई भी भाग देने को तत्पर नही हैं जब तक वे शर्त के अनुसार पुन: बारह वर्ष का वनवास नही काट लेते। क्षत्रिय कभी युद्ध की धमकी से भयभीत नही होते। मैं पाण्डवो को रणभूमि मे मारकर परास्त करूंगा।"

कर्ण की बाते भीष्म को बहुत तीखी लगी। वह कुरुकुल के वृक्ष को विनष्ट होते नही देख सकते। देवासुर संग्राम में दो प्रजातियों में युद्ध हुआ था और अन्त मे विजय देवताओ को मिली थी क्योकि वे सत्य के समर्थक थे। त्रेता युग में राम-रावण युद्ध भी दो सस्कृतियो का युद्ध था—राक्षस एवं मानव। अन्त मे विजय श्रीराम को मिली, क्योकि वह मानव-धर्म के पोषक थे। क्या आज एक वंश के दो भाई युद्ध की ज्वाला में नही जलेंगे? क्या अहंकार का विषधर भरतवंश को नही डंसेगा? क्या युद्ध अनिवार्य है? दुर्योधन का असन्तोष क्रोध में बदल गया है, क्रोध पर वैर के फल लग रहे है। भीष्म इन विचारो से कम्पित हो उठे। उनकी वाणी से सत्य का स्रोत फूट निकला, "राजन्, यह कर्ण बहुत दुर्मति है, दभी है। इसने गाण्डीवधारी अर्जुन का कब सामना किया है? विराटराज के यहा युद्ध में अर्जुन ने इसके भाई को मार डाला, उस समय यह कहां चला गया था? अर्जुन ने सभी महारथियो को मूर्छित करके इसके भी वस्त्र उतार लिए थे, तब इसकी वीरता कहां चली गई थी? कर्ण अपनी डींग हाककर दुर्योधन को भ्रमित कर रहा

है। चाटुकार सचिव राज्य का विनाश कर डालता है। दुर्योधन के मन में विषवृक्ष पल्लवित हो रहा है। कर्ण उसे अपनी बातों से जल देकर पोषण कर रहा है। इस विषवृक्ष को उखाड़ फेंकिए। कर्ण को इस सभा से निष्कासित कीजिए। भरतवंश सांकर्य-दोष से ग्रसित हो गया है। इसे युद्ध के महाविनाश से बचाइए।"

पितामह के वचनों को सुनकर दुर्योधन बोला, "महाराज, आप पितामह के वचनों से भयभीत न हों। हमारी शक्ति को आर्यावर्त में सभी नरेश मानते हैं। पाण्डुपुत्र भी अब दयनीय होकर आधा राज्य मांगने के स्थान पर पांच गांव ही मांगने लगे हैं। मैं उन्हें एक गांव ही नहीं, सुई की नोंक के बराबर भूमि भी नहीं दूंगा, क्योंकि उन्होंने अपने वचनों को पूरा नहीं किया है। क्या आप भीमसेन से भयभीत हो रहे हैं? मैं निश्चय ही युद्धभूमि में भीमसेन को मारूंगा, यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है।"

धृतराष्ट्र ने कहा, "पुत्र, तुम स्वयं अपनी जलाई हुई ज्वाला में मत कूदो। जब ज्वाला प्रचण्ड हो जायेगी तो न तो तुम बचोगे न तुम्हारा राज्य, वैभव, धन-सम्पदा। जिस नाव पर बैठकर तुम पार जाना चाहते हो उसमें वैर-विरोध के छेद हो गये हैं। वह मंझधार में ही डूब जायेगी। प्रजापालक राजा की कीर्ति अक्षय रहती है। इस युद्ध में प्रजा की सम्मति नहीं है। पितामह भीष्म, द्रोण, विदुर, कृपाचार्य इस वैर-विरोध को वंश का महाविनाश मान रहे हैं। तुम पाण्डवों को उनका स्वत्व लौटा दो।"

"पिताश्री, मैंने पितामह भीष्म, द्रोण के बलबूते पर युद्ध का आह्वान नहीं किया है। मेरा और कर्ण का यह रणयज्ञ करने का दृढ़ निश्चय है। मैं इस यज्ञ में पाण्डवों को बलिपशु बनाकर आहुति दूंगा। इस यज्ञ में मेरा रथ वेदी बनेगा, धनुष-बाण स्रुवा। मैं पाण्डवों की आहुति देकर यज्ञपुरुष को प्रसन्न करूंगा। युद्ध-भूमि में मैं, कर्ण और दुःशासन ही पाण्डवों का संहार करेंगे अथवा पाण्डव हमें मारकर भूमण्डल पर राज्य करेंगे। मैं राज्य, धन, वैभव सब कुछ छोड़ सकता हूं परन्तु पाण्डवों को राज्य लौटाकर संधि-प्रस्ताव स्वीकार नहीं कर सकता।"

दुर्योधन के वचन सुनकर भीष्म, द्रोण, विदुर आदि उठकर चले गये। सभी सभासद मौन नतमस्तक बैठे थे। धृतराष्ट्र के मन में दुर्योधन के प्रति घोर क्षोभ था। सभा विसर्जित कर दी गई।

तेरह

संजय के हस्तिनापुर लौट जाने के उपरांत युधिष्ठिर भाइयों सहित मधुसूदन श्रीकृष्ण के पास आकर बोले, "हम क्षत्रिय पुत्र पराश्रित रह रहे हैं। आपने रथ

की बागडोर संभाल ली है तो अब आप ही हमारा मार्गदर्शन करें। हम अपनी माता कुंती का भरण-पोषण नही कर सकते, इससे अधिक कष्टदायक क्या हो सकता है? धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन के पास हमने जो संदेश भेजे उनका कोई प्रभाव नही हुआ। प्रभो, अन्याय और छल-प्रपंच से हरण किये गये अपने पैतृक राज्य को हम छोड़ नही सकते।

"हे कृष्ण, दो कुत्ते एक मांस के टुकड़े को देखकर उस पर झपटते हैं। पहले पूंछ हिलाकर गुर्राते हैं, फिर आगे बढ़ते हैं, फिर दांत दिखाकर भोंकना शुरू कर देते हैं, फिर लड़ने लगते हैं। उनमें बलवान ही मांस का भक्षण करता है। यही अवस्था मानव की हो गई है। हम कूकर श्वान की तरह अपने राज्य-वैभव को लड़कर प्राप्त करना चाहते हैं। हे माधव, आपने दौत्यकर्म स्वीकार कर धृतराष्ट्र की सभा मे जाने का निश्चय कर लिया है, परन्तु मेरा मन आशंका से कांप उठता है। हे कृष्ण, हमारे द्रोहवश दुर्योधन ने आपका अपमान कर दिया तो हम यह दारुण दुःख सहन नही कर पायेंगे।"

श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए बोले, "हे धर्मपुत्र, मैं जानता हूं कि दुर्योधन अत्यन्त कुटिल, दुष्टात्मा है। मैं अन्तिम बार संधि का प्रयत्न करने जाऊंगा। इससे हम भूमण्डल के नरेशों की दृष्टि में निंदा से मुक्त हो जायेंगे। मेरा तिरस्कार दुर्योधन यदि समस्त नरेशों की सहायता लेकर भी करना चाहेगा, तो भी मैं उसे जलाकर भस्म कर दूंगा। मैं दोनों पक्षो का हित करने के लिए जाऊंगा। मेरा पथ धर्ममय और निरामय है। अतः मुझे अपमान की आशंका नही। तुम निश्चित रहो, जहां मैं हूं वहां भय नही।

"हे भारत, मैं स्वधर्म-पूजन हेतु जा रहा हू। शांति-सौहार्द्र के मार्ग को प्रशस्त कर, न्याय से पाण्डुपुत्रों को स्वत्वाधिकार प्राप्त कराने हेतु जा रहा हूं। मैं उनसे भिक्षा मांगने नही जा रहा हू। भिक्षा मांगना क्षत्रिय का नैष्ठिक कर्म नही है। भिक्षा मांगने से संग्राम मे प्राण देना श्रेयस्कर है। दीन बनना और युद्ध से पलायन करना कायरों का कर्म है।"

वहा बैठे भीमसेन ने कृष्ण को संधि के लिए प्रेरित किया। कृष्ण ने भीमसेन को झकझोरते हुए कहा, "भीमसेन, तुम सोते-जागते यही कहा करते थे—मैं दुर्योधन को अपनी गदा से मारूंगा। तुम्हारी बुद्धि उसके लिए कैसे दयालु हो रही है?" भीमसेन को अपने वचनों पर दुःख हुआ। भीमसेन के वचनो से द्रौपदी को मर्मान्तिक पीड़ा हुई। वह बोली, "हे कृष्ण, मुझे पाण्डवों, पांचालों, यदुवंशियों के जीते जी दासी बनाकर कौरवो की सभा मे उपस्थित किया गया। उस सभा मे पितामह भीष्म एवं महाराज धृतराष्ट्र भी थे, मैं उनकी पुत्रवधू भी हूं। उस समय कौरवों का धर्म कहां चला गया था? मेरे केश आज भी साक्षी है जिन्हे पकड़कर दुःशासन मुझे भरी सभा मे घसीटकर लाया था। हे तात! यह शांति-संदेश किस-

लिए ? शठ से विनय करने पर कोई फल नही निकलता। यदि पाण्डुनन्दन भीम-अर्जुन युद्ध करने मे समर्थ नही हैं, तो मेरे पाच पुत्र और वीर अभिमन्यु युद्ध करेंगे। हे वसुदेव नन्दन, आप राज्य के वापिस न करने पर कोई सन्धि न करें।"

कृष्ण ने देखा कि द्रौपदी सजल नेत्रों से देख रही है। उसके मन मे गम्भीर पीड़ा छिपी हुई है। कृष्ण ने द्रौपदी को आश्वासन दिया, "कृष्णे, अपने आसुओ को रोको। मैं वही करूंगा जो तुम्हें अभीष्ट है। तुम शीघ्र देखोगी कि कौरवो की स्त्रियों के अश्रुपात से हस्तिनापुर जलमग्न हो गया है। तुम धैर्य धारण करो।"

चौदह

प्रातःवेला में श्रीकृष्ण एक सुन्दर रथ पर सवार होकर हस्तिनापुर को प्रस्थान करने के लिए प्रस्तुत थे। सात्यकि, कृतवर्मा भी अंगरक्षक और पैदल सैनिकों की एक टुकड़ी के साथ श्रीकृष्ण के साथ जाने को सन्नद्ध थे। उन्हें दुर्योधन की कुटिल नीति पर विश्वास नही था।

महाराज धृतराष्ट्र को गुप्तचरों ने सूचना दी कि श्रीकृष्ण ने रात्रि का पड़ाव वृकस्थल पर किया है। धृतराष्ट्र ने कृष्ण के स्वागत के लिए नगर को सजाने के आदेश दिए। राजमार्गों पर जल से छिड़काव और जगह-जगह बंदनवार बाधे गये। राजद्वार को विशेष सजाया गया था। मन्दिरों पर, राजभवनो पर ध्वज-पताकाएं सुशोभित थी। धृतराष्ट्र यह जानते थे कि श्रीकृष्ण इस युग के सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ, प्रबल योद्धा एवं धर्मपरायण हैं। वह पाण्डवो के पक्षधर एवं हमारे भी हितैषी हैं। उन्हें वश मे कर लेना पाण्डवों को जीत लेना है।

हस्तिनापुर मे प्रवेश करने पर श्रीकृष्ण का भव्य स्वागत किया गया। भीष्म, द्रोण, विदुर, कृपाचार्य ने मार्ग मे कृष्ण से भेंट कर हर्ष प्रकट किया। राजद्वार पर धृतराष्ट्र समस्त कौरवों सहित बहुमूल्य रत्नमणि लेकर स्वागत के लिए उपस्थित थे। केवल दुर्योधन वहां उपस्थित नही था। कृष्ण ने उन्हें स्वीकार नही किया। वह बोले, "राजन्, दूत का स्वागत अर्घ्य-जल से करना ही पर्याप्त है। दूत किसी भेंट-उपहार को स्वीकार नही कर सकता, क्योकि उसके कार्य मे सत्यता पर संदेह का कारण उपस्थित हो जाता है। मैं तुम्हारे मणिजाल में बंधने नही आया हूं। मैं पाण्डवों के कार्य को पूरा करने एवं कौरवो को स्वार्थपाश से मुक्त कराने आया हूं।"

श्रीकृष्ण को सुन्दर राजभवन मे ठहराया गया था जहा समस्त सुख-सुविधाएं उपलब्ध थी। दुर्योधन भी वहां उपस्थित था। दुर्योधन ने कृष्ण का स्वागत करके उन्हें भोजन पर आमंत्रित किया। कृष्ण ने कहा, "राजन्, दूत के रूप मे दौत्यकर्म

बड़ा कठिन है। मैं एक लक्ष्य लेकर आया हूं। मेरा प्रयोजन सफल हो जाता है, तो मैं तुम्हारा सत्कार स्वीकार कर लूगा। अभी मैं तुम्हारा अन्न स्वीकार नही कर सकूंगा। किसी का भोजन प्रेमवश स्वीकार किया जाता है अथवा दीन-हीन अवस्था मे आपत्ति पड़ने पर। प्रेम तो तुममे है नही और मैं इस समय दीन-हीन होकर किसी आपत्ति में भी नही पड़ा हूं। राजन्, तुम अकारण पाण्डवों से द्वेष रखते हो। मैं पाण्डवों का दूत बनकर आया हूं। तुम्हारा सारा अन्न दुर्भावना से दूषित है। अतः मैं तुम्हारा अन्न कैसे स्वीकार करूं?"

दुर्योधन आहत सर्प की भांति श्रीकृष्ण की ओर देखता रहा। कृष्ण वहां से उठकर विदुर के भवन में चले गये। कृष्ण को देखकर कुंती के नेत्र सजल हो गये। वह बोली, "कृष्ण, तुमने मुझे यहां कष्ट भोगने के लिए क्यों छोड़ दिया है? मेरे पुत्र कहां है? मुझे वैधव्य दुख, धन का नाश, राज्य का अपहरण उतना कष्टदायक नही लगा जितना अपने पुत्रों का विछोह। मेरी पुत्रवधू कृष्णा तो कुशल से है न?"

कृष्ण ने कुन्ती को समझाया—"बुआ, तुम तो वीर-जननी हो। तुम महाराज शूरसेन की पुत्री और वीर पाण्डु की पत्नी हो। तुम्हें हर्षित होना चाहिए कि तुम्हारे पुत्र निद्रा, आलस्य, काम, क्रोध को जीतकर कष्टो पर विजय पाकर पांचाल राज्य मे आ गये हैं। मैं धृतराष्ट्र के पास उनके पैतृक राज्य को पुनः प्राप्त कराने दूत बनकर आया हूं। तुम अपने पुत्रो से शीघ्र मिलोगी।"

विदुर से कृष्ण गले लगकर मिले। विदुर ने प्रेम-पुष्प की भांति अपने अश्रु-पात भी कृष्ण के चरणों मे चढ़ाये। "हे केशव, आपने यहा आने के लिए यह दौत्यकर्म क्यों स्वीकार किया? आप भली भाति जानते हैं, दुर्योधन क्रोधी और गुरुजनों का असम्मान करने वाला है। वह धर्म और परमार्थ का परित्याग कर चुका है। वह राज्यमद मे चूर है। उसे न्याय-धर्म की शिक्षा देना उसी प्रकार व्यर्थ है जैसे रेत में जल की बूंदें डालना। वह किसी भी प्रकार आपका प्रस्ताव स्वीकार नही करेगा। कर्ण, शकुनि, दु.शासन उसकी कुमंत्रणा में साथी है। मुझे तो उस सभा मे आपका न्यायोचित बात कहना भी उचित नही लगता।"

श्रीकृष्ण हंसते हुए बोले, "विदुर जी, मैं दुर्योधन की दुष्टता और उसके अन्य साथियों के वैर भाव से पूरी तरह परिचित हूं। इस शस्य श्यामला वसुन्धरा, शोभित स्वर्ण-मंदिरों, कला-कौशल, धन-ऐश्वर्य एवं प्रजाजनो की सुख-शांति की रक्षा करने की इच्छा से मैं आज यहां आया हूं। सफलता का श्रेय तो दैव पर है। धर्म के कार्य पर लगे हुए मनुष्य को यदि सफलता न भी मिले, तो भी उसे पुण्य-फल तो अवश्य मिलता है। इसी प्रकार पाप-कर्म का चिंतन करते हुए, क्रियान्वित न करने पर भी उसका पाप-फल अवश्य प्राप्त होता है। मैं युद्ध की अग्नि मे झुलसने वाले कौरवों और पाण्डवों में शांति-सन्धि का संदेश लेकर आया हूं। यदि दुर्योधन मेरी बात नहीं स्वीकार करता तो भी मैं जनप्रवाद के कुतर्क से

बचूंगा कि कृष्ण ने समर्थ होते हुए भी कौरव-पाण्डवों को युद्ध के महाविनाश से नही रोका। यदि महाकाल का चक्र इस वंश का प्रलयांत करना ही चाहता है तो उसे मैं रोक नही सकता।

पंद्रह

आज महाराज धृतराष्ट्र की राजसभा मणिमय वंदनवारों से सुशोभित थी। नरेशो की मण्डली, सभासद, कौरवगण सब अपने-अपने स्थानों पर विराजमान थे। श्रीकृष्ण के प्रवेश करते ही भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र ने उनका स्वागत किया। उन्हें स्वर्णमंडित उच्च सिंहासन पर बैठाया गया। सभी की दृष्टि कृष्ण की ओर लगी हुई थी। कृष्ण सभा-मध्य मेघ के समान निर्घोष करते हुए बोले, "हे भरतनन्दन, मैं यहा कौरव-पाण्डवो मे बिना युद्ध किए शांति स्थापना करने के उद्देश्य से आया हूं। समस्त आर्यावर्त मे आज कुरुवंश श्रेष्ठ माना जाता है, क्योंकि इस वंश में महान प्रतापी राजा हुए हैं। उन्होंने सदैव सदाचार और धर्म का पालन किया है। हे राजन्, आज आपका पुत्र दुर्योधन क्रूर मनुष्यों के साथ सत्य और धर्म का परित्याग कर रहा है। लोभ के कारण इसने धर्म की समस्त मर्यादाओ का त्याग कर दिया है। शांति-स्थापना के लिए आप अपने पुत्रों को रोकिए और मैं पाण्डवों को नियंत्रण मे रखूंगा। यदि युद्ध छिड़ गया तो महाविनाश होगा। हे नरेश, जिस सभा मे असत्य द्वारा सत्य का, अधर्म के द्वारा धर्म का हनन होता है, वहां सभासद मृतप्राय माने जाते हैं। पाण्डव कष्ट सहन करके धर्म पर आरूढ़ हैं। आप उन्हे पैतृक राज्य का आधा भाग देकर इस विनाश को रोकिए। पाण्डव आपकी सेवा करने को प्रस्तुत हैं और युद्ध के लिए भी सन्नद्ध हैं। अब निर्णय आपके हाथ मे है।"

श्रीकृष्ण का प्रतिवाद करते हुए दुर्योधन ने कहा, "हे नरेशो, कृष्ण पाण्डवों के पक्षधर हैं। पाण्डवों ने अभी तक अज्ञातवास पूरा नही किया है। वे समयावधि से पूर्व ही पहचान लिए गये हैं। उनको पुनः बारह वर्ष वन में जाकर रहना पड़ेगा तभी वे राज्य पाने के अधिकारी हो सकते हैं।"

श्रीकृष्ण पुनः बोले, "हे तात, सत्य को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत मत करो। पाण्डवों ने धर्मतः अज्ञातवास का एक वर्ष से भी अधिक समय काटा है। तुम स्वयं उच्चकुल में उत्पन्न हुए शूरवीर और ज्ञानवान हो। तुम सदैव कुंतीपुत्रों के साथ शठता का व्यवहार करते रहे हो। तुम जिस वृक्ष पर बैठे हो उसी को काटना चाहते हो। इससे न तो तुम बचोगे और न तुम्हारे सहयोगी क्षत्रिय नरेश। व्यक्ति के हित से राष्ट्रहित सदैव महान् है। चाटुकारों के पाश में पड़कर राष्ट्र

का विनाश होता है। शकुनि, कर्ण, दुःशासन तुम्हें संकट की ओर ले जा रहे हैं। पाण्डवों की ओर से मैं तुम्हें आश्वासन देता हूं कि युवराज पद पर तुमको ही अभिषिक्त किया जायेगा। पाण्डव, महाराज धृतराष्ट्र की अधीनता मे ही रहेंगे। अतः तुम पाण्डवों के इस संधि-प्रस्ताव को स्वीकार कर लो।"

भीष्म ने कहा, "हे तात, श्रीकृष्ण ने इस महान् कुल में शान्ति बनाये रखने के लिए सम्मानजनक प्रस्ताव प्रस्तुत किया है, तुम उसे स्वीकार कर लो। तुम्हे यश, समृद्धि और कल्याण सब कुछ प्राप्त होगा। कुल के निर्माण में व्यक्ति की भूमिका महत्त्व रखती है। युद्ध में भरतवंश के साथ अनेक राजाओं के कुल का विनाश हो जायेगा। तुम कुलघाती न बनो।"

द्रोणाचार्य ने दुर्योधन को समझाते हुए कहा, "वत्स, श्रीकृष्ण और भीष्म ने तुम्हें कल्याणकारी मार्ग दर्शन दिया है। तुम इसका अनुसरण करो।"

महात्मा विदुर ने कहा, "हे राजकुमार, युद्ध अनिवार्य नहीं है। शांति इस चराचर का श्रेय है। युद्ध के बाद भी शांति आती है परन्तु वह श्मशान की शांति होती है जिसमें अनेक ललनाओं की चीत्कार, हाहाकार, देश के समृद्धि वैभव का पराभव संलिप्त रहता है। क्या तुम ऐसी शांति की कामना करोगे? मुझे तुम्हारे वृद्ध माता पिता को देखकर शोक हो रहा है जो अपने स्वजन सम्बन्धियों के बिना कटे हुए पंख के पक्षी की तरह रुदन करेंगे।"

धृतराष्ट्र ने भी श्रीकृष्ण की राय का समर्थन किया। वह बोले, "पुत्र कृष्ण का प्रस्ताव तुम्हारे लिए अति उत्तम और कल्याणकारी है। तुम इसे स्वीकार कर लो। तुम कृष्ण के साथ युधिष्ठर के पास जाकर सम्मानपूर्वक संधि कर लो। इसी में तुम्हारा और हम सबका मंगल निहित है।"

दुर्योधन सबकी एक जैसी बातों को सुनकर निस्तेज हो गया था परन्तु उसका अहंकार उसे बार-बार झकझोर रहा था। वह बोला, "हे कृष्ण आपने और पितामह, गुरु, पिताश्री एवं विदुर जी ने मुझे ही दोषी ठहराया है। क्या पाण्डव इसके दोषी नही है, जिन्होने जुए मे अपनी सारी सम्पत्ति दाव पर लगा दी थी। अब भी उन्होंने अपने वचनों का पालन नही किया है। हम क्षत्रिय हैं। युद्ध के भीषण परिणाम से हम भयभीत नही होते। संग्राम में वीरोचित मृत्यु प्राप्त कर वीर दिव्यलोक को जाता है। शत्रु के सम्मुख मस्तक झुकाना वीरों का कर्त्तव्य नही है।

दुर्योधन का दम्भपूर्ण कथन सुनकर कृष्ण को विश्वास हो गया कि शठ के सम्मुख विनयशीलता जल मे लकीर के समान है। वह उसे ललकारते हुए बोले, "दुर्योधन तू रणभूमि में मृत्यु शैया पर ही शयन करेगा। तेरा दुष्कर्म तुझे अग्नि ज्वाला से जलाकर क्षार कर देगा। क्या तूने पाण्डवों के वैभव से ईर्ष्यावश शकुनि के साथ षडयन्त्र कर पांडवों को जुआ खेलने के लिए आमन्त्रित नहीं किया था? क्या तूने भरी सभा मे अपने बड़े भाई की भार्या के साथ अभद्र व्यवहार नही किया

था ? क्या तूने पाण्डवों को माता कुन्ती सहित वारणावत भेजकर उन्हें लाक्षागृह में जलाने का षडयन्त्र नहीं रचा था ? क्या तूने भीम को विष खिलाकर हाथ पैर बांधकर जल में डुबाने का कुकर्म बाल्यावस्था में नहीं किया था? तू पाण्डवों के प्रति अपराधी है। पाण्डव तुझे युद्ध में मारकर अपना पैतृक राज्य प्राप्त कर लेंगे। दुर्दैव तुझे कभी क्षमा नहीं करेगा। काल की भित्ति पर काले अक्षरों में तेरा नाम सदैव अंकित रहेगा।

कृष्ण का मेघगर्जन सुनकर दुर्योधन अत्यन्त क्रोधित होकर तीव्र निःश्वास लेने लगा। वह भरी सभा से धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण आदि की अवहेलना करके प्रस्थान कर गया। उसके जाते ही कर्ण, दुःशासन एवं अन्य सब कौरव भी उसके पीछे बहिर्गमन कर गए।

श्रीकृष्ण ने पुनः धृतराष्ट्र से कहा, "महाराज आपका पुत्र दुराग्रही है; इस भरतवंश को विषधर के समान भक्षण करना चाहता है। आप दुर्योधन को बन्दी बनाकर पाण्डवों से संधि कर लें।

सोलह

सात्यकि को उसके गुप्तचरों ने सूचना प्राप्त हुई थी कि दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, शकुनि राजभवन में कृष्ण को बन्दी बनाने की कुमन्त्रणा कर चुके हैं। सात्यकि तुरन्त कृतवर्मा के पास जाकर बोले, "तात तुम जाकर अपनी सेना को सतर्क कर दो। सभी सैनिक कवच एवं अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर सभा भवन के द्वार पर आ खड़े हुए।

श्रीकृष्ण प्रातःकालीन अग्निहोत्र करके जलाजंलि देकर सूर्य का उपस्थान करके वापस लौटने के लिए तत्पर थे। सात्यकि को देखकर वह बोले, "तात रथ को मंगाओ, अब हमें पांचाल नगर को कूच कर देना चाहिए।"

सात्यकि हाथ जोड़कर बोला, "जनार्दन दुष्ट दुर्योधन आपको बन्दी बनाने का षडयन्त्र कर रहा है। पहले हम सभा भवन में चलकर इसका निर्णय करेंगे।"

जैसे ही श्रीकृष्ण, सात्यकि, कृत वर्मा ने सभाभवन में प्रवेश किया, सभासद उठकर खड़े हो गए। श्रीकृष्ण आसन पर नहीं बैठे। सात्यकि ने धृतराष्ट्र को अभिवादन करके कहा, "राजन आपका पुत्र और कौरवगण वसुदेव नंदन कृष्ण को बन्दी बनाना चाहते हैं। बुलाओ अपने दुष्ट पुत्र को हम उसके लिए सन्नद्ध हैं।

श्रीकृष्ण गंभीर मुद्रा में बोले, "राजन् तुम्हारा पुत्र कृतघ्न, कुलघ्न और पापी है। वह वायु को मुट्ठी में बन्द करना चाहता है, अग्नि को कपड़े में बांधना चाहता है। हे नरेशो! जिसमें बल हो, मुझे आकर पकड़े। यहां की लौह शृंखलाएं छोटी हैं,

समस्त भूमंडल की मेखलाएं लाकर गगन को बांधो। वह कायर दुर्योधन यदि चाहे तो अपने बल की परीक्षा का ले। मैं दूत बनकर आया हूं, दुर्योधन का वध करने नही। इस सभा में है कोई नरेश जो मुझे बाधने का साहस रखता हो। निश्चय ही कौरवकुल पर प्रलयकालीन मेघ मंडरा रहे हैं। वज्र से उल्कापात होगा; सूर्य अग्नि की वर्षा करेगा; समुद्र उत्ताल तरंगों मे नृत्य करेगा; धरणी पर भूकम्प होगा। राजन् यह सब आपके समक्ष होगा। आप अशोक, जड़ हो गए हो; आपके मन्त्री चाटुकार हो गए हैं; सांकर्य दोष ने कौरवकुल को ग्रसित कर लिया है। इसका निवारण रणभूमि में ही सम्पन्न होगा।"

श्रीकृष्ण की सिंह गर्जना सुनकर सारी सभा निस्तेज मौन थी। विदुर जी ने कहा, "इस कौरव सभा में श्रीकृष्ण का अपमान हुआ है। हे राजन्, यह कौरवकुल मन्त्रियों सहित नष्ट होने वाला है।"

श्रीकृष्ण कुंजर की भांति झूमते हुए आकर अपने रथ पर आरूढ हो गये।

श्रीकृष्ण ने कुंती के भवन मे जाकर प्रणाम करके कहा, "बुआ जी मेरा कार्य सम्पन्न हो गया है। दुर्योधन अपनी शठता से बाज नही आया। जान पड़ता है, समस्त कौरवकुल और उसका सहयोगी क्षत्रिय समाज काल का ग्रास बनने वाला है। दैव का विधान बहुत विचित्र है। काल गति को कोई नही जान सकता।"

कुंती ने कहा, "कृष्ण तुम युधिष्ठिर को मेरा यह संदेश देना—क्षत्रिय धर्म शौर्य से ही जीवित है। वे वीर बनकर ही जीवित रह सकते हैं। मैं बन्धु बान्धवों से हीन होकर परान्न खाकर क्षुद्र जीवन व्यतीत कर रही हूं। मैं पाण्डुपुत्रों जैसे शूरवीरो को जन्म देकर भी अत्यन्त हीन दशा में हूं। वे निर्भय होकर अपने पैतृक राज्य को प्राप्त करने के लिए युद्ध करें।

श्रीकृष्ण ने कुंती से विदा लेकर पांचाल नगर को प्रयाण किया।

सत्तरह

श्रीकृष्ण ने सात्यकि सहित उपप्लव क्षेत्र मे प्रवेश करके युधिष्ठिर आदि को प्रगाढ़ आलिंगन में बांध लिया, तत्पश्चात् धृतराष्ट्र की राज सभा का सविस्तार वर्णन किया, "हे पाण्डुनन्दन मैंने अपने कर्तव्य को पूर्ण कर लिया है। मैंने उनके समक्ष शांति प्रस्ताव प्रस्तुत किया। सामनीति द्वारा मैंने दुर्योधन को वंश रक्षा, भाइयो मे प्रेम, सौहाद्र एवं राष्ट्रीय हित के लिए युद्ध का परित्याग करने को समझाया परन्तु उस दुर्बुद्धि के लिए सब कुछ 'भैंस के आगे बीन बजाना' ही सिद्ध हुआ।

मैंने भेदनीति अपनाकर पाण्डवों का बल पराक्रम और युद्ध का भय भी

दिखाया। मैंने दाननीति द्वारा यह प्रस्ताव भी प्रस्तुत किया कि पाण्डवों को मात्र पांच ग्राम ही दे दो, वे महाराज धृतराष्ट्र के अधीन ही रहेंगे। परन्तु उस दंभी अज्ञानी ने अहंकार वश किसी भी प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। उसने सुई की नोक के बराबर भूमि को देना भी स्वीकार नहीं किया। अब केवल दण्डनीति का प्रयोग करना शेष है। वह अज्ञानी बिना युद्ध के तुम्हारे न्यायपूर्ण स्वत्व को वापिस नहीं करेगा। हे कौन्तेय! मूर्ख को अधर्म से रोका जा सकता है परन्तु शिक्षाविद शठ को धर्म का उपदेश देना रेत में पानी की बूंद गिराने के समान व्यर्थ है। कुटिल व्यक्ति से प्रेम प्राप्त नहीं हो सकता। लोभी को त्याग तपस्या का उपदेश देना निरर्थक है। मोह ग्रसित व्यक्ति के मन मे भक्ति ज्ञान के बीज नही बोये जा सकते। दुर्योधन शठता, कुटिलता, मोह, अज्ञान का सुमेरु है। अहंकार का विष वृक्ष उसके मन मे पल्लवित हो चुका है जिसके फल फूल समस्त कौरव तथा उसके समर्थक अन्य नरेश हैं। भरतवंश का नाश सामने है। तुम इस धर्मयुद्ध के लिए कारण बनकर आये हो। विजय सदैव धर्म की ही होती है।"

श्रीकृष्ण के वचन सुनकर युधिष्ठिर ने अपने सभी भाइयों से कहा, 'हे वीर शिरोमणि प्रिय भाइयो, यह युद्ध हमारे ऊपर थोपा गया है। महाबली काल का ताण्डव होगा। प्रलयान्त के समय आकाश, पृथ्वी, जल शून्य को ताकते रहेंगे, वायु में अनेक चक्रवात उठेंगे, सूर्य अग्नि उगलेगा। यह युद्ध भी प्रलयान्तक होगा। पृथ्वी मानव विहीन हो जायेगी। गिद्ध और गीदड़ मांस लोथड़ों को खाकर हर्षित होंगे, भूत प्रेत बेताल रण मे नृत्य करेंगे। कुरुक्षेत्र मे प्रलयान्तक युग का इतिहास लिखा जायेगा।

हमारे मित्र, स्वजन सम्बन्धी सैन्य बल सहित यहां उपस्थित हैं। हमारा सैन्य-बल सात अक्षोहिणी[1] सेना है जिसके अधिपति राजा द्रुपद, विराट नरेश धृष्टद्युम्न आदि महारथी हैं। इस सात अक्षोहिणी सेना के सात सेनापति होंगे—द्रुपदराज, विराटराज, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, सात्यकि, चेकितान और बलवान भीम। इन सातो सेनापतियों का एक प्रधान सेनापति होना चाहिए। सहदेव इस सम्बन्ध में तुम अपना विचार प्रकट करो। सहदेव ने मत्स्यनरेश विराट राज का नाम प्रस्तुत किया। नकुल ने द्रुपदराज का नाम प्रस्तुत किया। अर्जुन ने कहा, "मैं धृष्टद्युम्न को भीष्म, द्रोण जैसे शस्त्रधारियों के वेग को रोकने के लिए सक्षम मानता हूं। अतः मैं धृष्टद्युम्न का नाम प्रधान सेनापति के लिए प्रस्तुत करता हूं।" युधिष्ठिर ने अंतिम निर्णय का दायित्व कृष्ण को सौंप दिया। कृष्ण ने कहा, "राजन् मैं भी धृष्टद्युम्न को प्रधाननायक बनाने के पक्ष मे हूं। वह भीष्म के अग्नि बाणों को रोकने में सक्षम हैं एवं बल बुद्धि से सैन्य संचालन मे समर्थ हैं।"

मार्गशीर्ष का मनभावन महीना था। सूर्य की किरणें देह और मन को प्रफुल्लित करने वाली थी। पक्षी वृक्षों पर बैठे चहचहाकर भुवन भास्कर का

यशोगान कर रहे थे। वीरों के मन में युद्ध की घोषणा सुनकर हर्षोल्लास छा गया था। वीर को वीरगति प्राप्त करने के बाद भूलोक और स्वर्ग के द्वार खुल जाते हैं। पृथ्वी पर जब तक वीर का यशोगान होता है तब तक वह स्वर्गलोक मे सुख भोग करता है। भूलोक में उसे श्रीसमृद्धि और राज्यकुल में जन्म मिलता है। यह उस युग का विश्वास था। अत: वीर रणभूमि की मृत्यु को मरणोत्सव मानते थे। कुंती पुत्र युधिष्ठिर ने अपने भाइयों, धृष्टद्युम्न, विराटराज के साथ जाकर सैन्य बल का निरीक्षण किया। श्रीकृष्ण ने सबके बीच घोषणा की कि आज से सातवें दिन मार्गशीर्ष की अमावस्या है। उसी दिन से कुरुक्षेत्र के समरागण मे युद्ध प्रारम्भ होगा।

कुरुक्षेत्र मे डेरे तम्बू गड़ने लगे। सामान ढोने वाली अनेक छकड़ा गाड़ियां कुरुक्षेत्र मैदान में सामान से लदी दिखाई दे रही थी। आवश्यक वस्तुओं के लिए बाजार भी लगवा दिया गया था। कुए बावड़ियों को साफ कराया गया था। सरोवर सबको खुला हुआ था। सैनिकों के भोजन की व्यवस्था अलग-अलग छावनियों में अनेक सूपकारों द्वारा कराई गई थी। नगर मे पहरेदार स्त्री, बालक, वृद्धों की सुरक्षा को नियुक्त किए गये थे। कृशकाय रोगी नगर मे दिखाई देते थे। कुरुक्षेत्र का मैदान रथ, घोड़े, गजों की विशाल छावनियो से भरा पूरा लगता था। पाण्डवों ने हिरण्यवती नदी सरस्वती के तट पर पड़ाव डाला था।

अठारह

श्रीकृष्ण के लौट जाने पर दुर्योधन ने कर्ण, दु.शासन, शकुनि को युद्ध की तैयारी करने की आज्ञा दी। राजा दुर्योधन की ग्यारह अक्षोहिणी सेना विशाल समुद्र के समान दिखाई देती थी।

दुर्योधन ने पैदल, रथ, गज, सेना का विभाजन किया। उनमे जो श्रेष्ठ थे उनकी अलग पंक्ति बनाई। हाथी पर दो महावत, दो धनुर्धर, दो तलवार लिए हुए और एक त्रिशूलधारी सैनिक होता था। ग्यारह अक्षोहिणी सेना के अलग-अलग सेनापति नियुक्त किए गये। कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, मद्रराज शल्य, सिन्धुराज जयद्रथ, कम्बोज नरेश सुदक्षिण, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, सुबलपुत्र शकुनि और वाह्लीक नरेश। दुर्योधन ने सबके नामों की घोषणा कर उनके मस्तक पर रोली चंदन का तिलक लगाया। दुर्योधन नरेशों के साथ शांतनुनन्दन

---

1. एक अक्षोहिणी सेना—109350 सैनिक, 65610 घोड़े, 21870 रथ 21870 हाथी।

भीष्म के पास गये। वह हाथ जोड़कर बोले, "पितामह आप कुरुकुल के रक्षक रहे हैं। हस्तिनापुर राज्य की यश पताका आपके द्वारा ही फहराई गई है। आप धैर्यवान, नीतिकुशल सर्वश्रेष्ठ योद्धा हैं। आप हमारे नेता बनकर प्रधान सेनापति का पद सभालिए।

भीष्म दुर्योधन के वचन सुनकर मुस्कराकर बोले, "आर्यपुत्र मैंने इस कुरुवंश की रक्षा का भार लिया था। मेरे सामने ही दैव इसे नष्ट करने पर तुला है। मैं काल के विधान को पलट नही सकता। मेरे प्रधान सेनापति बनाने से भी तुम्हारी कामना पूर्ण नही होगी—यत्र धर्मस्ततो जयः। मैं पाण्डवों को समय-समय पर उनके हित की बात बताऊंगा। हे वत्स ! मेरे हाथ से पाण्डवों का वध भी नही होगा। हा, मैं सैनिकों का क्षय करता रहूंगा। सेनापति बनने से पूर्व मेरी यह शर्त है कि या तो मैं ही प्रथम युद्ध करूंगा या कर्ण। क्या ये बातें तुम्हें स्वीकार हैं?"

कर्ण ने यह स्वीकार कर लिया कि पितामह के सामने पाण्डवो से वह युद्ध नही करेगा। दुर्योधन ने पितामह की सब बातें स्वीकार करके उनको प्रधान सेनापति का भार सौंप दिया।

हे कुरुनन्दन ! तुम्हारे पक्ष में महारथी, अतिरथी, अश्वपति गजपति अनेक वीर हैं। तुम्हारे पास क्षुब्ध समुद्र की भांति ग्यारह अक्षोहिणी सेना है। दुःशासन सहित सौ भाई श्रेष्ठ वीर हैं। तुम उन सबमे अग्रगण्य हो। मद्रराज्य शल्य अत्यंत पराक्रमी अतिरथी वीर हैं। सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा श्रेष्ठ यूथपति हैं। सिंधुराज जयद्रथ भी दो रथियों के बराबर वीर हैं। वन में अकेली द्रोपदी का हरण करने पर भीमसेन द्वारा वध पर उद्यत युधिष्ठर द्वारा प्राणदान दिए जाने पर भी जयद्रथ स्वयं को पाण्डवो से अपमानित और लांछित मानते हैं। उनके मन मे पाण्डवो के प्रति बहुत क्रोध है। शरद्वान के पुत्र द्रोणाचार्य तो रथपतियों के भी यूथपति हैं। उनके पास अनेक अमोघ अस्त्र हैं। परन्तु उनके लिए अर्जुन प्राणो से भी अधिक प्रिय है। द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तो समस्त धनुर्धरो से भी बढ़कर हैं। इन्हें ब्रह्मास्त्र भी प्राप्त हैं। परन्तु इन्हे अपना जीवन अधिक प्रिय है। अतः इन्हें मैं न तो अतिरथी कहूंगा न महारथी। तुम्हारे मामा शकुनि जिन्होंने तुम्हें द्यूत खेल के मायाजाल में फंसा कर कौरव-पाण्डवो मे युद्ध करा दिया वह भी श्रेष्ठ रथी हैं। तुम्हारा मित्र कर्ण जो तुम्हे सदैव पाण्डवो से युद्ध के लिए उकसाया करता है वह तुम्हारी शत्रुता के मूल में है। यह स्वयं आत्मप्रशंसी और कटुभाषी है। यह तुम्हारे आश्रय पर ऊचा चढ़ गया है अतः अभिमानी है। मेरी दृष्टि में यह अर्धरथी है।

भीष्म के वचन सुनकर कर्ण चाबुक खाए घोड़े की भांति विस्फारित नेत्रो से भीष्म को देखते हुए बोला, "पितामह आप सदैव मेरा अपमान करके मुझे कायर और मूर्ख बताते हैं। मैं यह सब सुयोधन के कारण सहन कर रहा हूं। मैं यह कहता हूं कि आप सृजयों, मत्सयों, कैकेयो, सोमकों, पाण्डवों के प्रशंसक हैं और उनका हित

चाहते हैं। अवस्था अधिक हो जाने के कारण आपकी बुद्धि बालक जैसी हो गई है, स्वाभिमान ठंडा पड़ गया है। आप कहते हैं, पाण्डवों का बध नही करूंगा और मैं कहता हूं पाण्डवों का संहार करूंगा।

भीष्म बोले, "कर्ण तू दंभी है, पाण्डव अजेय हैं क्योंकि उनका रक्षक धर्म है। तू पाण्डवों से मन में ईर्ष्यालु है। मेरे ऊपर प्रधान सेनापति का गुरुतर भार है अन्यथा मैं तुझे वृद्ध की बालक बुद्धि का पराक्रम यही प्रकट कर देता। मैं युद्ध के अवसर पर भेद उत्पन्न नही करना चाहता।

उसी समय दुर्योधन ने विनयपूर्वक भीष्म पितामह को शांत किया।

उन्नीस

प्रातःकालीन समीर शनैः शनै बहकर सूर्य रश्मियों का अभिनन्दन कर रहा था। पक्षी आकाश मे उड़कर चहचहाने लगे थे मानो वे भुवनभास्कर का यशोगान कर रहे हों। सरस्वती में मंद लहरें अपने उर में सूर्य लालिमा को समेट लेना चाहती थीं। आज सूर्य लाल मुख करके कुरुक्षेत्र पर आक्रोश लिए उदित हुआ था। विशाल कुरुक्षेत्र मैदान के चारों ओर कौरव-पांडवों के शिविर ही शिविर दिखाई दे रहे थे। उन शिशिरों पर श्वेत, नीले, लाल, पीले रंग की ध्वजाएं लहरा रही थीं। घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघाड़ कोलाहल रूप मे सुनाई दे रही थीं। सैनिकों, रथों, हाथियों, घोड़ों से वह विशाल युद्ध क्षेत्र समुद्र के समान लहराता दिखाई देता था। कुरुक्षेत्र मे भारत के द्वापर का अन्तिम इतिहास लिखने को प्रभातकालीन सूर्य उदित हुआ था।

कौरवों के प्रधान सेनापति भीष्म के चतुर्दिक नरेशों की विशाल वाहिनी सुसज्जित खड़ी थी। रथों पर भी ध्वज लहरा रहे थे। त्रिशूल, भल्ल, गदा, कृपाण आदि अस्त्रों की चमचमाहट कायरो के मन में भय उत्पन्न कर रहे थे। भीष्म ने सभी नरेशों को अपने समीप बुलाकर कहा, "हे नरेशो! क्षत्रिय का धर्म अन्याय के विरुद्ध युद्ध करना है। यह युद्ध भरतवंश में उत्पन्न दो भाइयों का युद्ध है। दोनों ही अपने को धर्म पर आरूढ़ बताते है। जिसे विजयश्री मिलेगी वही धर्म का रक्षक होगा। अतः वीरो तुम छात्र धर्म के लिए युद्ध करो। रोग शैया पर पड़े रहकर प्राण खोना क्षत्रिय के लिए निन्दनीय है। तुम्हारे लिए स्वर्ग का द्वार खुला हुआ है। यह कहकर भीष्म ने समस्त नरेशों की सेनाओं को व्यूहाकार खड़े रहने की आज्ञा दी। भीष्म का रथ मध्य मे सुशोभित था।

विपक्ष मे पाण्डवो की विशाल सेना सुसज्जित खड़ी थी। पांचों पाण्डव अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित अपने रथों पर सवार थे। श्रीकृष्ण सारथी बनकर अर्जुन

युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित अपने रथों पर आरूढ़ होकर कुरुक्षेत्र रणभूमि मे उपस्थित थे। तभी युधिष्ठिर ने तुमुल शंखनाद करते हुए कहा, 'वीरो यह धर्म अधर्म का युद्ध है। अतः कौरवपक्ष के वीरों को मैं अवसर देता हूं, जो वीर सहायता के लिए हमारे पक्ष में आना स्वीकार करें हम उनका स्वागत करेंगे।" सबके देखते दुर्योधन का भाई युयुत्सु डंका बजाते हुए युधिष्ठिर के पास आकर बोला, "हे धर्मपुत्र में पापी दुर्योधन को छोड़कर आपके पक्ष को ग्रहण करता हूं। मैं कौरवों से धर्म के लिए युद्ध करूंगा।"

युधिष्ठिर ने युयुत्सु का स्वागत करते हुए कहा,—युयुत्सु आओ, तुम मेरे भाई हो। हम सब मिलकर कौरवदल से युद्ध करेंगे।"

युयुत्सु को शत्रुपक्ष मे जाते देख सभी कौरव क्रुद्ध होकर युद्ध का बिगुल बजाने लगे। अश्वारोही, गजारोही, पैदल सभी आंधी के समान आक्रमण करने लगे। रथों की गड़गड़ाहट, अश्वों की हिनहिनाहट और गजों की चिंघाड़ मे सैनिकों का भारी कोलाहल सुनाई दे रहा था। घोर नाद करते हुए वीर एक दूसरे को ललकार रहे थे। भीष्म पितामह ने अपने धनुष पर तीक्ष्ण बाण चढ़ा लिए। वह अर्जुन के रथ की ओर बढ़ रहे थे। अर्जुन ने भी धनुष की प्रत्यंचा पर बाण चढाये। उन्होने प्रथम बाण भीष्म के रथ की ओर पृथ्वी मे मारा। अर्जुन ने बाण द्वारा पितामह को प्रणाम किया। भीष्म ने उस अभिवादन को स्वीकार करके अर्जुन के रथ को बाण वर्षा से ढक दिया। अर्जुन उन बाण समूहो को भल्ल नामक बाणों से काट-काट कर भूमि पर गिरा रहे थे।

उधर सात्यकि ने कृतवर्मा पर धावा किया। कृतवर्मा ने तीक्ष्ण बाणो से सात्यकि को घायल कर डाला।

अर्जुन पुत्र अभिमन्यु ने बृहदबल के रथ को बाणो की झड़ी लगाकर आगे बढ़ने से रोक दिया।

भीमसेन दुर्योधन को ललकारने लगे। युधिष्ठिर ने शल्य पर आक्रमण किया। धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य पर धावा किया। द्रोणाचार्य ने बाण द्वारा धृष्टद्युम्न के धनुष को काट दिया। शिखण्डी ने अश्वत्थामा पर आक्रमण किया और उसे आगे बढ़ने से रोक दिया।

पाण्डव पक्ष के योद्धा बहुत उत्साहित थे मानो किसी महाशक्ति ने उन्हें प्रेरित किया हो। युद्ध में कोई किसी की पहिचान नही कर रहा था। पैदल-पैदल से, घुड़सवार-घुड़सवारों से गजारोही-गजारोहियो से भिड़ रहे थे मानो विपरीत दिशाओ से आते हुए मेघखण्ड टकरा रहे हो। सभी एक दूसरे को खदेड़ रहे थे।

दिन का पूर्वाह्न समाप्त हो चला था। वीरों के रुण्ड मुण्ड रक्त में सने धरती

के रथ पर बैठे थे जिसमें चार श्वेत घोड़े जुते थे। सहसा महाराज युधिष्ठिर रथ से उतर पड़े। उन्होने अपना कवच खोलकर रख दिया, अस्त्र-शस्त्रो को भी नीचे डाल दिया। हाथ जोड़कर शत्रु की सेना की ओर जाते दिखाई दिए। उनके चारों भाई अस्त्र शस्त्रो को छोड़कर पीछे चल दिए। कृष्ण ने हंसकर उन्हें जाने की आज्ञा प्रदान की। कौरवों के सैनिकों में पाण्डवों को इस प्रकार जाते देख कानाफूसी शुरू हो गई—

"पाण्डव भयभीत होकर सन्धि करने आ रहे हैं।

"अरे भाई ये लोग गुरु द्रोण, भीष्म का अन्तिम दर्शन करने जा रहे हैं।"

"इस तरह युद्ध की घोषणा कर विनय करना कायरता नही है क्या ?"

अनेक चर्चाएं सैनिको मे होने लगी। उसी समय युधिष्ठिर भीष्म के रथ के समीप पहुंच गए। उन्होने पितामह के चरणों में प्रणाम करके कहा, "दादाजी आप सबके पूजनीय हैं। मैं आपसे युद्ध करने की अनुमति लेने आया हूं। आप मुझे विजय का आशीर्वाद दीजिए।" "हे धर्मपुत्र, तुमने युद्ध में भी धर्म का निर्वाह किया है। जो शास्त्र के अनुसार माननीय पुरुषों से अनुमति लेकर युद्ध भी करता है विजय उसे अवश्य मिलती है। मैं प्रसन्न होकर तुम्हें आज्ञा देता हूं। तुम अपने स्वत्व के लिए युद्ध करो। तुम्हें विजय अवश्य मिलेगी। हे कुन्ती पुत्रो! पुरुष अर्थ का दास है परन्तु अर्थ किसी का दास नही है।[1] मैं कौरवों के पक्ष मे अर्थ से बंधा हूं। धृतराष्ट्र पुत्र के अन्न से इस शरीर का पालन पोषण हुआ है। अतः मैं युद्ध उन्ही की तरफ से करूंगा। तुम उसके सिवाय कोई अन्य वर मांग लो।"

युधिष्ठिर बोले, "पितामह आप दुर्योधन की ओर से युद्ध करें, परन्तु मुझे समय-समय पर उचित सम्मति देते रहें। आप तो युद्ध में अजेय हैं। पृथ्वी पर कोई ऐसा वीर नही जो आपको जीत सके। फिर मेरी विजय कैसे हो सकेगी, यह परामर्श दीजिए।"

भीष्म हंसने लगे, "हे धर्मपुत्र तुम्हें जो वरदान दिया है वह मिथ्या नही होगा। संसार मे कोई ऐसा वीर नही है जो मुझे परास्त कर सके। तुम इस प्रश्न का उत्तर लेने फिर किसी समय आना।"

युधिष्ठिर ने पुनः प्रणाम किया। युधिष्ठिर इसीप्रकार आचार्य द्रोण और कृपाचार्य से भी अनुमति लेने गये। द्रोण ने कहा, "कुंतीपुत्र तुम स्वत्व के लिए युद्ध करो। तुम्हारे साथ धर्म है, कृष्ण है। जहा धर्म है वहां विजय अवश्य होगी।"

---

1. अर्थस्य पुरुषो दास दासस्त्वर्थो न कस्यचित्
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः।"
भीष्म पर्व (अ० 1)

बीस

युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित अपने रथों पर आरूढ़ होकर कुरुक्षेत्र रणभूमि में उपस्थित थे। तभी युधिष्ठिर ने तुमुल शंखनाद करते हुए कहा, 'वीरो यह धर्म अधर्म का युद्ध है। अतः कौरवपक्ष के वीरों को मैं अवसर देता हूं, जो वीर सहायता के लिए हमारे पक्ष में आना स्वीकार करें हम उनका स्वागत करेंगे।" सबके देखते दुर्योधन का भाई युयुत्सु डंका बजाते हुए युधिष्ठिर के पास आकर बोला, "हे धर्मपुत्र में पापी दुर्योधन को छोड़कर आपके पक्ष को ग्रहण करता हूं। मै कौरवों से धर्म के लिए युद्ध करूंगा।"

युधिष्ठिर ने युयुत्सु का स्वागत करते हुए कहा,—युयुत्सु आओ, तुम मेरे भाई हो। हम सब मिलकर कौरवदल से युद्ध करेंगे।"

युयुत्सु को शत्रुपक्ष में जाते देख सभी कौरव क्रुद्ध होकर युद्ध का बिगुल बजाने लगे। अश्वारोही, गजारोही, पैदल सभी आंधी के समान आक्रमण करने लगे। रथो की गड़गड़ाहट, अश्वों की हिनहिनाहट और गजों की चिंघाड़ में सैनिकों का भारी कोलाहल सुनाई दे रहा था। घोर नाद करते हुए वीर एक दूसरे को ललकार रहे थे। भीष्म पितामह ने अपने धनुष पर तीक्ष्ण बाण चढ़ा लिए। वह अर्जुन के रथ की ओर बढ़ रहे थे। अर्जुन ने भी धनुष की प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाये। उन्होने प्रथम बाण भीष्म के रथ की ओर पृथ्वी में मारा। अर्जुन ने बाण द्वारा पितामह को प्रणाम किया। भीष्म ने उस अभिवादन को स्वीकार करके अर्जुन के रथ को बाण वर्षा से ढक दिया। अर्जुन उन बाण समूहो को भल्ल नामक बाणो से काट-काट कर भूमि पर गिरा रहे थे।

उधर सात्यकि ने कृतवर्मा पर धावा किया। कृतवर्मा ने तीक्ष्ण बाणो से सात्यकि को घायल कर डाला।

अर्जुन पुत्र अभिमन्यु ने बृहदबल के रथ को बाणों की झड़ी लगाकर आगे बढ़ने से रोक दिया।

भीमसेन दुर्योधन को ललकारने लगे। युधिष्ठिर ने शल्य पर आक्रमण किया। धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य पर धावा किया। द्रोणाचार्य ने बाण द्वारा धृष्टद्युम्न के धनुष को काट दिया। शिखण्डी ने अश्वत्थामा पर आक्रमण किया और उसे आगे बढने से रोक दिया।

पाण्डव पक्ष के योद्धा बहुत उत्साहित थे मानो किसी महाशक्ति ने उन्हे प्रेरित किया हो। युद्ध में कोई किसी की पहिचान नही कर रहा था। पैदल-पैदल से, घुड़सवार-घुड़सवारों से गजारोही-गजारोहियो से भिड़ रहे थे मानो विपरीत दिशाओ से आते हुए मेघखण्ड टकरा रहे हों। सभी एक दूसरे को खदेड़ रहे थे।

दिन का पूर्वाह्न समाप्त हो चला था। वीरों के रुण्ड मुण्ड रक्त मे सने धरती

पर पड़े दिखाई दे रहे थे। भीष्म को अकेला देख दुर्योधन की आज्ञा से कृतवर्मा, कृपाचार्य, शल्य आदि वीर भीष्म के चारों ओर सहायक बनकर पहुंच गये। भीष्म के रथ के साथ-साथ ये वीर भी पाण्डव सेना में घुस गये। भीष्म झुके हुए गांठ वाले धनुष से वीर सैनिकों का संहार करने लगे। यह देखकर अभिमन्यु भीष्म के प्रहारों को रोकने के लिए आगे आ गया। अभिमन्यु ने ,एक बाण से दुर्मुख के सारथी को मार डाला और अकेला ही सबका सामना करने लगा। भीष्म ने अभिमन्यु की ओर भी तीक्ष्ण बाण छोड़े। एक बाण से ध्वज काट दिया, दूसरे से धनुष खण्ड-खण्ड कर दिया, तीसरे से सारथी को मार गिराया। अभिमन्यु ने दूसरा धनुष लेकर दूसरा सारथी बुलाया। उसने भीष्म के समस्त बाणों को काट गिराया। अभिमन्यु को अकेला देख विराटकुमार उत्तर, धृष्टद्युम्न, भीमसेन आदि वीर उसकी सहायता को दौड़े। उत्तर कुमार ने हाथी पर चढ़कर मद्रराज शल्य पर आक्रमण किया। मद्रराज का एक बाण हाथी की पीठ में लगा। वह गजेन्द्र प्रमत्त होकर रथ की ओर दौड़ा। उसने रथ को चकना चूर कर दिया और घोड़ों को कुचल डाला। मद्रराज ने यह संकट पार करने को एक शक्ति छोड़ी। उस शक्ति ने उत्तर कुमार के कवच को काट डाला, उसके हृदय को विदीर्ण कर दिया जिसके लगते ही वह हाथी की पीठ से नीचे भूमि पर आ गिरा। शल्य ने तलवार से हाथी की सूंड काट डाली। मद्रराज तुरन्त कृतवर्मा के रथ पर जाकर चढ़ गया। विराट कुमार श्वेत अपने भाई का प्राणान्त जानकर बहुत क्रुद्ध हो गया। उसने शल्य को लक्ष्य करते हुए फुंकारते बाण छोड़े। वह अपने भ्रातृघाती शल्य की ओर दौड़ा। शल्य और उसके अन्य सहायकों ने भी श्वेत पर बाण वर्षा प्रारम्भ कर दी। श्वेत ने तीक्ष्ण बाणों से शल्य का धनुष काट गिराया। शल्य के सहायक वीरों ने शक्तियां चलाईं परन्तु श्वेत ने उन्हें बीच में ही काट दिया। श्वेत ने रुक्म के रथ पर भी तीक्ष्ण बाण छोड़े जिसमें रुक्म मूर्छित होकर रथ में गिर गया। रुक्म को मूर्छित जान सारथी रथ को युद्धस्थल से बाहर ले गया। श्वेत पुनः शल्य को खोजने लगा। वह अपने शत्रु शल्य के रथ की ओर दौड़ा तभी दुर्योधन के अनेक सैनिकों ने श्वेत को घेर लिया। वह आगे न बढ़ सका। भीष्म ने उस पर बाणों की झड़ी लगा दी। श्वेत इस समय ज्वलित अग्नि के समान युद्ध में अपने शौर्य को प्रकट कर रहा था। उसने भीष्म के सभी प्रहारों को विफल कर दिया। फिर एक तीक्ष्ण बाण से भीष्म के धनुष को खण्ड-खण्ड कर डाला। उसने उनके रथ के ध्वज को भी काट दिया। भीष्म अब क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने अपना दूसरा धनुष उठा लिया। उस पर अत्यन्त पैने सात भल्ल चढ़ाकर छोड़े। चार बाणों से चारों घोड़े गिरकर पृथ्वी पर छटपटाने लगे। दो बाणों से ध्वज काट डाला और एक बाण से सारथी को मार गिराया। अब श्वेत अकेला दिखाई दे रहा था। उसने अपने हाथ में महान शक्ति को उठा लिया। वह शक्ति उल्कापात के समान

भीष्म की ओर छोड़ दी। भीष्म उसे देखकर विचलित नहीं हुए। उन्होंने उस शक्ति को विदीर्ण कर डाला। श्वेत भी अब क्रुद्ध हो गया। उसने अपनी विशाल गदा को उठा लिया। वह उस समय कालाग्नि के समान नृत्य करने लगा। उसने गदा को रथ पर दे मारा जिससे रथ चकनाचूर हो गया। भीष्म भी उस पर बहुत क्रुद्ध हो गये। उन्होंने एक तीक्ष्ण बाण मारा जिसने उसके कवच को भेदन कर हृदय को वेध डाला। श्वेत रणभूमि में कटे वृक्ष के समान जा पड़ा। श्वेत को वीरगति प्राप्त करते देख शंख ने शल्य पर बाण वर्षा प्रारम्भ कर दी। शल्य की रक्षा को पुनः सातों महारथी आ गये। उन्होंने अपने बाणों से शंख को हताहत कर डाला। शंख ने उन सातों वीरों से अकेले ही संग्राम करने का निश्चय किया। उसने उनके धनुष काट डाले। भीष्म ने शंख की सेना को बाण वर्षा करके विदीर्ण कर डाला। उसी समय शंख की सहायता करने अर्जुन सामने आ गये। अर्जुन ने शंख को तो मृत्युमुख से बचा लिया परन्तु पाण्डव सेना भीष्म के प्रहारो से संत्रस्त हो गई। सैनिक अपने शिविरो की ओर भागने लगे। पाण्डवों का व्यूह भग हो गया। सूर्य देव भी अस्ताचल को प्रयाण करने लगे। युद्ध बन्द हो गया।

इक्कीस

भीष्म के द्वारा सेना की अपार क्षति देखकर युधिष्ठिर बहुत चिंतित हुए। प्रथम बार में ही महान वीर उत्तर और श्वेत का वध हो गया था। उन्होने श्रीकृष्ण से कहा, "माधव युद्ध के पहले दिन ही हमारे वीर सेना नायक श्वेत, और उत्तर मारे गये। व्यूहाकार सेना छिन्न-भिन्न हो गई। पितामह ने सेना में हाहाकार मचा दिया है।" श्रीकृष्ण बोले, "हे कुंतीपुत्र तुम प्रथम दिवस के युद्ध को देखकर ही उद्विग्न हो गये। तुम सबसे बड़े हो। तुम्हारे गिरते मनोबल को देखकर समस्त वीर हताश हो जायेंगे। विजयश्री को प्राप्त करने के लिए धैर्य और शौर्य को उचा रखना पड़ेगा। तुम्हारे साथ सभी वीर सत्य और धर्म के लिए युद्ध कर रहे है। शोक मत करो।"

वहां उपस्थित धृष्टद्युम्न ने युधिष्ठिर को धैर्य बंधाते हुए कहा कि कल वह क्रौंचारुण व्यूह बनायेगा। अर्जुन इस व्यूह के संचालक होगे। राजा द्रुपद व्यूह के सिर स्थान पर रहेगे। दशार्णक, दाशंरक अपने समूहों के साथ मुख स्थान पर, प्रभद्रक अनूपक और अन्य किरातगण गर्दन स्थान पर स्थित रहेंगे। इसके पीछे विशाल वाहिनी रहेगी।

द्वितीय दिवस के युद्ध के लिए भीष्म ने शंखनाद किया। उस तुमुल ध्वनि को सुनकर वीर अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो कोलाहल करने लगे। भीष्म को बाण

वर्षा करते देख अर्जुन ने रथ को वहीं ले चलने को कहा। अर्जुन को सम्मुख देख भीष्म ने बाणों की झड़ी लगा दी। उस बाण वर्षा में अर्जुन का रथ अदृश्य-सा हो गया। अर्जुन ने उन बाणों को थोड़ी देर में विदीर्ण कर दिया। अर्जुन ने गांडीव पर दस बाण चढ़ाकर छोड़े जिससे भीष्म की आगे बढ़ने की गति रुक गई। भीष्म ने एक बाण कुपित होकर छोड़ा जो श्रीकृष्ण के कवच में वक्षस्थल पर लगा। अर्जुन ने इसके प्रतिकार में भीष्म के सारथी को विदीर्ण कर डाला जिससे भीष्म की आगे बढ़ने की योजना विफल हो गई।

धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को आगे बढ़ने से रोक दिया। द्रोणाचार्य ने क्रोधित होकर उसके रथ के चारों घोड़ों को मार डाला। द्रोणाचार्य ने एक बाण कालदंड के समान छोड़ा जिसे धृष्टद्युम्न ने काट गिराया। उसने द्रोण की ओर एक शक्ति चलाई जिसे द्रोण ने बीच में ही काट दिया। उन्होंने द्रुपद पुत्र के धनुष को भी काट गिराया। यह देखकर धृष्टद्युम्न ने भारी गदा लेकर द्रोण पर आक्रमण किया परन्तु द्रोण ने हंसते हुए वह गदा भी काट डाली। अब धृष्टद्युम्न ने तलवार और ढाल लेकर द्रोण पर धावा किया परन्तु द्रोण की बाण वर्षा के सम्मुख वह आगे न बढ़ सका। इतने में धृष्टद्युम्न को रथहीन देखकर भीमसेन ने उसे अपने रथ पर चढ़ा लिया। धृष्टद्युम्न को छत्रछाया मिल गई।

भीमसेन को कलिङ्गराज भानुमान और उसके पुत्र शक्रदेव ने आगे बढ़ने से रोक दिया। भीमसेन के घोड़ों को शक्रदेव ने मार डाला। इसे देखकर भीमसेन ने वज्रदण्ड के समान गदा घुमाकर मारी। इस प्रहार से शक्रदेव कटे हुए वृक्ष के समान भूमि पर गिर गया। घोड़े क्षत विक्षत होकर रथ लेकर भागे। जब कलिंगराज ने अपने पुत्र को मृत अवस्था में देखा तो उन्होंने भीम की ओर बाण वर्षा प्रारम्भ कर दी परन्तु भीम ने सभी बाणों को काट डाला। भानुमान गर्जना करके भीम पर प्रहार कर रहा था परन्तु भीम ने उसके सभी आक्रमण विफल कर दिए। भीमसेन अब भानुमान का वध करने के लिए हाथी की सूंड पकड़कर ऊपर चढ़ गये। उन्होंने कलिंगराज पर तलवार से वार किया जिससे उनके शरीर के दो टुकड़े होकर भूमि पर गिर पड़े। भानुमान का वध देखकर कलिंग सेना में भगदड़ मच गई। भीमसेन ने सेना को विदीर्ण करना प्रारम्भ किया। अब भानुमान का भाई श्रुतायुध बची-खुची सेना को बटोरकर भीमसेन के सम्मुख आया। उसने भीमसेन को बाणों से घायल कर दिया। तब भीमसेन चोट खाये हुए सर्प की भांति उस पर फुकारने लगे। उन्होंने क्षुर नामक बाण से उसके सहायक सत्यदेव को यमलोक भेज दिया। नाराच बाणों से केतुमान को मार दिया। फिर भी कलिंगराज भीम पर बाण प्रहार कर रहे थे। कलिंग सेना भी भीमसेन पर टूट पड़ी। भीमसेन ने अकेले ही सेना को विदीर्ण करना प्रारम्भ किया। भीमसेन जिधर घुस जाते वहां त्राहि-त्राहि मच जाती। भीष्म ने जब

भीमसेन का उग्ररूप देखा तो अपने बाणों से उसे रोक दिया। परन्तु कलिंग सेना इतनी भयभीत हो गई थी कि कोई भीम के सम्मुख नही पड़ता था।

धृष्टद्युम्न के कठोर प्रहारों से अश्वत्थामा, शल्य और कृपाचार्य आगे न बढ़ सके। उन्हें अकेला देख अभिमन्यु बाण वर्षा करता हुआ वहां आ पहुंचा। अभिमन्यु को देखकर दुर्योधन पुत्र लक्ष्मण ने अभिमन्यु पर बाण वर्षा प्रारम्भ कर दी। उसने एक तीक्ष्ण बाण से अभिमन्यु का धनुष काट डाला। अभिमन्यु ने दूसरा धनुष लेकर उस पर शर सन्धान करना प्रारम्भ कर दिया। अपने पुत्र को अकेला देखकर दुर्योधन उसकी सहायता को दौड़ा। यह देखकर भीष्म और द्रोण भी वही रणक्षेत्र में आ गये और अर्जुन पर कठिन बाणों का प्रहार करने लगे। अर्जुन के बाणों का वेग इतना तीव्र था कि वह सैनिकों अश्वारोहियो, गजारोहियों को संभलने का अवसर नही देते थे। अनेकों सैनिकों के रुण्ड मुण्ड धराशायी हो रहे थे। भीष्म ने द्रोण मे कहा, "आचार्य इस समय अर्जुन कालाग्नि के समान बाण वर्षा कर रहा है। हमारे सैनिक टिड्डीदल की तरह भाग रहे हैं। चलो सूर्य देव भी अस्ताचल को गमन कर रहे हैं। युद्ध बन्द की घोषणा करो।

बाईस

तृतीय दिवस के अंत में कौरव सेना की अपार क्षति हुई। भीमसेन और घटोत्कच ने समस्त सेना का विध्वंस करना प्रारम्भ कर दिया। बचे हुए सैनिकों ने भाग कर जान बचाई। यह देखकर दुर्योधन को भारी दुख हुआ। भीष्म के शिविर में जाकर शांतनुनन्दन से बोला—"पितामह मैंने आपके बल पर ही यह महान युद्ध रोपा था परन्तु मेरी सेना पाण्डवों के भय से भाग रही है। आप जैसे धनुर्धर और द्रोण, कृपाचार्य जैसे शस्त्रवेत्ताओं के होते हुए कौरव सेना भागे, यह आश्चर्य की बात है। आपको रणभूमि मे कोई विजय नही कर सकता—इन्द्र भी नही। यदि आप युद्धारम्भ से पहले ही सैन्य संचालन का भार नहीं लेते तो मैं अपनी युद्धनीति उसी प्रकार से निर्धारित करता। आप शत्रुओं पर दयाभाव दिखा रहे हैं। अब युद्ध प्रारम्भ होने पर सेनापति पद छोड़ना क्या आपके अपयश. का कारण नही होगा ?"

दुर्योधन के शूल सम वचन भीष्म के मर्मांतक को भेद गये। ऐसे वचन जीवन मे उनसे किसी ने नही कहे थे। वह शांतमन से बोले, "राजन् युद्ध से पूर्व मैंने तुम्हें सचेत किया था कि पाण्डवों को युद्ध में कोई नही जीत सकता। विजय धर्म की ही होगी। तुमने शठतावश युद्ध छेड़ दिया। तुम कर्ण को कवच दु.शासन को ढाल और शकुनि को खड्ग बनाकर युद्ध जीतना चाहते हो, यह तुम्हारा भ्रम है।

तुमने मेरे क्षत्रिय धर्म को ललकारा है, यह तुम्हारा अज्ञान है। क्षत्रिय मृत्यु से नही डरता। मेरा देह कुरुवंश के अन्न से पुष्ट हुआ है। मैं हस्तिनापुर के राज्य की रक्षा हेतु युद्ध कर रहा हूं। मैं पाण्डव सेना का संहार करूंगा। अर्जुन को विचलित कर दूगा, श्रीकृष्ण को अस्त्र उठाने को बाध्य कर दूंगा।"

दुर्योधन लज्जित हो गया परन्तु मन में वह हर्षित था कि उसने भीष्म के सोये हुए तेज को झकझोर दिया है।

प्रभातकाल होते ही शिविरों के मध्य से तुमुल शंखनाद होने लगा। चारों ओर से अश्व, गज, रथों पर पताकाओ से सुसज्जित वीर ध्वनि करने लगे। सैनिकों की टुकड़ियां कोलाहल करती हुई युद्ध के मैदान में एकत्र होने लगी। इतने में भीष्म अत्यन्त वेगवान घोड़ों के रथ पर चढ़कर सेना की ओर आते दिखाई दिए। उनके नेत्रों मे महान तेज दिखाई दे रहा था। उनके पार्श्व में गजारोही एवं अश्वारोहियो का अपार दल था। पैदल सेना भी उनके पीछे ज्वार भाटे के समान आगे बढ रही थी। भीष्म ने प्रचण्ड नाराचों से बाण वर्षा प्रारम्भ कर दी। सैनिको के मस्तक, भुजाएं कट-कट कर युद्ध स्थल मे इधर-उधर बिखर रहे थे। चारों ओर रक्त, मांस छितरा पड़ा दिखाई दे रहा था। हाथियों की सूंड और घोड़ों के मस्तक कटे हुए पड़े थे। योद्धाओ की चीख पुकार से युद्धस्थल गूंज रहा था। भीष्म का धनु मण्डलाकार होकर बाण वर्षा कर रहा था। भीष्म के प्रबल आक्रमण से पाण्डव सेना हताहत होकर छिन्न-भिन्न हो रही थी। कृष्ण ने अर्जुन के रथ को भीष्म के सम्मुख लाकर कहा, "हे कुंतीपुत्र भीष्म के प्रबल आक्रमण को तुम्हारे सिवाय कोई नही रोक सकता। अर्जुन के गाण्डीव की टंकार सुनकर पाण्डव सेना पुनः लौटकर युद्ध के लिए डट गई। अर्जुन ने प्रथम तीन बाण छोड़कर भीष्म के धनुष को काट डाला। भीष्म ने तुरन्त दूसरा धनुष चढ़ा लिया। कृष्ण रथ को मण्डलाकार चला रहे थे। भीष्म ने तीक्ष्ण बाणो से अर्जुन के कवच को क्षत-विक्षत कर डाला। श्रीकृष्ण को भी बाणों से बींध डाला। आज के युद्ध की भीषणता को देखकर कृष्ण भी क्षुब्ध हो गये। उन्होंने देखा कि अर्जुन भी तीखे बाणों से बिंधकर घबड़ा गया है। श्रीकृष्ण ने घोड़ों की लगाम छोड़ दी और रथ से कूदकर हाथ मे तीक्ष्ण धार वाले चक्र को लेकर भीष्म पर आक्रमण करने को दौड़े। उन्हें अपने वचनों का भी स्मरण नही रहा। तभी अर्जुन संभलकर रथ से कूद पड़े और बड़ी उतावली से कृष्ण को रोककर उनके चरणो में मस्तक रख दिया। "केशव आप क्रोध न करें। आपने वचन दिया है कि आप युद्ध में शस्त्र धारण नहीं करेंगे। आप हमारे परम आश्रय हैं। युद्ध मैं करूंगा। मैं भीष्म सहित समस्त वाहिनी का विनाश कर डालूंगा। मैं धर्म के पथ पर आरूढ़ रहकर युद्ध करूंगा।"

श्रीकृष्ण मुस्कराये और आकर पुनः रथ पर बैठ गये। उन्होंने कालचक्र को

रख दिया और पांचजन्य शंख से सिंहनाद किया। अर्जुन ने गाण्डीव संभालकर उस पर महान माहेन्द्रास्त्र चढा लिया। उस माहेन्द्र अस्त्र से अनेक बाण प्रकट हो गये जिन्होने कौरव सेना को बीध डाला। उस ऐन्द्रास्त्र से भयभीत होकर कौरव सेना भागने लगी। सूर्य भी धीरे-धीरे पश्चिम दिशा मे अस्त होने लगा।

तेईस

विगत दिवस की पराजय का शूल भीष्म के मन में चुभ रहा था। उन्हे दुर्योधन के सम्मुख की गई प्रतिज्ञा का भी आभास था। आज वह अर्जुन से बलपूर्वक जूझने को प्रस्तुत थे। वह यह भी जानते थे कि अर्जुन के पास ऐसे अमोघ बाण हैं जो अन्य किसी वीर के पास नही हैं। प्रभातकाल होते ही शांतनुनन्दन भीष्म ने सेना-नायकों को आदेश दिया कि वे पूरी शक्ति से अर्जुन को आगे बढ़ने से रोकें। दुर्योधन भी शल्य, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा को लिए अर्जुन को रोकने को सन्नद्ध हो गया।

रण भेरियों का नाद वीरों के मन में उत्साह जगाने लगा। सैनिको ने शत्रु-पक्ष को ललकारते हुए आक्रमण कर दिया। रथी से रथी, गजारोही से गजारोही, पैदल से पैदल जूझने लगे। भीष्म ने कपिध्वज अर्जुन के रथ की ओर बाण वर्षा प्रारम्भ कर दी। अर्जुन आज भीष्म से द्वैरथ युद्ध करने को प्रस्तुत था। अर्जुन ने भीष्म के बाणों को उसी प्रकार काट गिराया जैसे लकड़हारा वृक्ष की टहनियों को काट डालता है। दूसरी ओर शल्य, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, चित्रसेन ने सुभद्रा कुमार अभिमन्यु को ललकारा। अकेला अभिमन्यु शत्रुदल से मोर्चा ले रहा था। उसने अश्वत्थामा एवं शल्य को बाणों से घायल कर दिया। तब भूरिश्रवा ने एक शक्ति चलाई। अभिमन्यु ने उसे भी काटकर निरस्त कर दिया। तीसरे मोर्चे पर दुर्योधन अपने भाइयों सहित भीमसेन से जूझने लगा। भीमसेन ने अपनी महान गदा उठा ली और अपने सारथी विशोक को दुर्योधन के समीप ले चलने का आदेश दिया। वह गदा लेकर रथ से कूद पड़े और सम्मुख गजपंक्ति को विदीर्ण करने लगे। गदा प्रहार से व्याकुल हाथी चिंघाड़कर भागने लगे। अनेको सैनिक उनके नीचे कुचल गये। हाथियो के रक्त से भीमसेन की गदा लहूलुहान हो रही थी। सैनिको ने भीमसेन पर गदा, मुगदर, तोमर, त्रिशूल लेकर आक्रमण कर दिया। भीमसेन भी यमदण्ड के समान गदा को मण्डलाकार घुमाते, सैनिकों को धराशायी करने लगे। भीमसेन जिधर गदा घुमाते, सैनिकों में हाहाकार मच जाता। भीमसेन दुर्योधन की खोज में थे। दुर्योधन ने अपने भाइयो के साथ स्वयं को सुरक्षित

समझकर भीमसेन पर बाण वर्षा प्रारम्भ की। अब भीमसेन भी रथ पर सवार होकर बाण वर्षा करने लगे। भीमसेन ने सुषेण, उग्र, भीमरथ को मारकर यमलोक भेज दिया।

भीष्म इस नरसंहार को देखकर विचलित हो गये। उन्होने आज्ञा दी कि भीमसेन के प्रहार को एक साथ मिलकर रोकें। भीष्म की आज्ञा सुनकर भगदत्त अपने मतवाले हाथी पर सवार भीमसेन पर बाण वर्षा करने लगा। उसने एक तीक्ष्ण शक्ति चलाई जिससे भीमसेन विचलित हो गये। उन्हें कुछ मूर्च्छा-सी हो गई जिसे देख घटोत्कच भयंकर रूप से भगदत्त के हाथी पर प्रहार करने लगा। हाथी की चीत्कार सुनकर द्रोण आदि भगदत्त की सहायता को दौड़े। भीष्म जानते कि घटोत्कच आसुरी बल पराक्रम से युक्त है। उसका उग्र रूप देखकर कौरवगण भयभीत हो गये। वे उसके समीप जाने का साहस नहीं करते थे। कौरव सेना घटोत्कच के बाण प्रहारों से भागने लगी। संध्या समय जानकर पाण्डवों ने शंखनाद करते हुए जयघोष किया।

दुर्योधन रात्रि में मंत्रणा करके योजनाएं बनाता था परन्तु भीमसेन को जीतने का उसके पास कोई उपाय नही था। दुर्योधन ने अपने भाइयों से भीमसेन पर सामूहिक आक्रमण करने को कहा। प्रभातकाल होते ही सेनाओं ने फिर घमासान युद्ध प्रारम्भ कर दिया। दुर्योधन के भाई दुःशासन, दुर्विषह, दुर्मद, दुःसह, जय आदि ने भीम पर सामूहिक आक्रमण किया। भीमसेन अकेले ही उनके प्रहारो को निरस्त कर रहे थे। भीमसेन अपने रथ से कूदकर, शत्रु सेना मे घुसकर, गदा से उसका मर्दन करने लगे। धृष्टद्युम्न ने भीमसेन के रथ को सूना देखकर सारथि से पूछा कि भीम कहां हैं। अकेले शत्रुदल में घुसकर भीम का युद्ध करना उन्हें उचित नही लगा। वह भीम की सहायता करने शत्रुदल मे पहुंच गये। उन्होंने देखा कि भीमसेन द्वारा मारे गये अनेक सैनिक, अश्व, हाथी, रक्त मे लथपथ पड़े हैं और भीमसेन प्रचण्ड वेग से सैन्य संहार कर रहे हैं। भीमसेन का अंग प्रत्यंग लहूलुहान हो रहा था। धृष्टद्युम्न ने भीमसेन को रथ पर बैठा लिया। उनके शरीर में छिदे बाणों को निकाला। कौरवगण अब धृष्टद्युम्न पर आक्रमण करने लगे। धृष्टद्युम्न ने कौरवों को आगे बढ़ते देख उन पर सम्मोहन अस्त्र चलाया। सम्मोहन अस्त्र के चलते ही सब कौरवगण संज्ञा विहीन होकर रणभूमि मे गिर गये। उनको अचेत अवस्था में देखकर समस्त कौरव सेना भी भाग खड़ी हुई। यह देखकर आचार्य द्रोण उनके समीप आये और उन्होंने प्रज्ञास्त्र का प्रयोग कर कौरवों को सचेत किया।

चौबीस

आज युद्ध का सातवां दिन था। पाण्डवों और कौरवों की विशाल सेना का बड़ा भाग युद्ध में समाप्त हो चुका था। रुण्ड मुण्डों से धरती पटी पड़ी थी। टूटे हुए रथों के धुरे, पहिये बिखरे पड़े थे। हाथी, घोड़ों के सिर और धड़ सर्वत्र दिखाई पड़ते थे। गृद्ध, शृगाल मांस लोथड़ो को नोंच-नोंचकर खा रहे थे। शांतनुनन्दन भीष्म ने आज मण्डल व्यूह का निर्माण किया था जिसमें सभी योद्धा मण्डलाकार होकर युद्ध कर सकें। उधर युधिष्ठिर ने अपनी सेना की रक्षा के लिए वज्रव्यूह की रचना की थी।

द्रोणाचार्य ने विराट पर आक्रमण किया। नकुल, सहदेव ने शल्य पर धावा बोल दिया। भगदत्त ने घटोत्कच को ललकारा। भूरिश्रवा ने धृष्टकेतु का सामना किया और युधिष्ठिर ने श्रतायु पर आक्रमण किया। उधर सब वीरों ने मिलकर अर्जुन को घेर लिया। अर्जुन ने ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग करके समस्त राजाओं की बाण वर्षा विफल कर दी। उस ऐन्द्रास्त्र से हजारों बाण विषधर सर्पों की भांति निकलकर वीरों का विध्वंस करने लगे। द्रोणाचार्य ने विराट को बाणों से बींध डाला। उनके सारथि और घोड़ों को भी मार डाला। विराटराज अपने पुत्र शंख के रथ पर चढ़कर युद्ध करने लगे परन्तु द्रोण के फुंकारते हुए बाणों के समक्ष विराट का कोई शस्त्र काम नहीं कर सका। द्रोण ने एक बाण मारकर शंख का वक्षस्थल भेदन कर दिया जिसके लगते ही शंख कटे हुए वृक्ष के समान भूमि पर गिर पड़ा। पुत्र के मरते ही विराटराज भयभीत होकर युद्धभूमि से हट गये।

दूसरी तरफ सात्यकि ने अलम्बुष को क्षत विक्षत कर डाला। सात्यकि की बाण वर्षा से घबराकर वह युद्धस्थल से पलायन कर गया। धृष्टद्युम्न ने दुर्योधन को आगे बढने से रोक दिया। उसने दुर्योधन के रथ के घोड़ों को मार डाला। दुर्योधन क्रुद्ध होकर तलवार लेकर धृष्टद्युम्न को मारने दौड़ा। शकुनि ने दुर्योधन को अपने रथ पर चढ़ा लिया। उधर भीमसेन का कृतवर्मा से भयंकर युद्ध छिड़ गया। भीमसेन ने उसके सारथि और घोड़ों को मार डाला। तब कृतवर्मा वृषक के रथ पर चढ गया। दिन के अंत में दोनो सेनाएं भयंकर घमासान युद्ध करने लगीं। अवन्ती नरेश के पुत्र विन्द और अनुविन्द अर्जुन पुत्र इरावान से भिड़ गये। इरवान वीरता से उनका सामना करने लगा। इरावान ने उनके सारथि को मार डाला। सारथि के मर जाने पर घोड़े रथ को लेकर इधर-उधर भागने लगे। इसी समय कुरुपुत्र विकर्ण, दुर्मर्षण और चित्रसेन ने अभिमन्यु पर आक्रमण किया। अभिमन्यु ने उनमे से किसी को भी नही मारा क्योंकि उसके चाचा भीमसेन ने स्वयं ही समस्त कौरवों के वध करने का प्रण कर रखा था। भीष्म ने युधिष्ठिर पर आक्रमण किया और उनके रथ के घोड़ों को मार डाला। भीष्म अब क्रुद्ध

होकर पाण्डव सेना का संहार करने लगे। उनके बाणो से कटकर सैनिकों के मस्तक ऐसे गिरने लगे जैसे किसी नारियल के वृक्ष से नारियल टूट-टूटकर गिर रहे हो। उसी समय शिखण्डी भीष्म का सामना करने को दौड़े परन्तु भीष्म ने उसके स्त्री भाव को मानकर उससे युद्ध करने की अवहेलना कर दी। उसी समय सूर्य भगवान पश्चिम दिशा मे अस्त होने लगे। युद्ध बन्द हो गया।

पच्चीस

नित्य प्रति दोनों पक्षों के लिए सूर्यदेव नई आशा की किरण लेकर उदित होते थे। युद्धस्थल मे जूझने वाले सभी वीर महाकाल के सागर की उत्ताल तरंगों मे डूबते उतराते लग रहे थे। आठवें दिन के युद्ध मे भीष्म ने सागर व्यूह का निर्माण किया जिसमे हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, उछलती हुई लहरो के समान प्रतीत होते हैं। पाण्डव सेना नायक धृष्टद्युम्न ने श्रृंगाटक व्यूह की रचना की जो सिंघाड़े के समान नुकीला था। भीष्म अपने धनुष की टंकार करते हुए सैन्य संचालन करने लगे। पाण्डव सैनिक भी अपने शत्रुओं पर प्रत्याघात कर रहे थे। भीष्म अपने तीक्ष्ण बाणों से सृंजय, पांचाल, सोमको का विनाश कर रहे थे। भीम ने सैनिकों की दुर्दशा देखकर भीष्म को ललकारा। भीष्म की रक्षा करने हेतु दुर्योधन एवं अन्य कौरव उनके चतुर्दिक एकत्र हो गये। भीमसेन ने पलक मारते ही भीष्म के सारथी का सिर धड़ से अलग कर दिया। धृतराष्ट्र पुत्र सुनाम को भी एक बाण से परलोक भेज दिया। भाई को मृतक देखकर दुर्योधन के सात भाई—आदित्य केतु, वाह्लशी, कुण्डधार, महोदर अपराजित, पण्डितक एवं विशालक्ष अस्त्र-सस्त्रों से सुसज्जित होकर भीम पर टूट पडे। भीमसेन ने अपना कठोर धनुष संधान कर नाराच छोड़े। एक ही बाण मे अपराजित का मस्तक धड़ से अलग होकर भूमि पर लोटने लगा। दूसरे भल्ल नामक बाण से कुण्डधार को मार डाला। वही बाण पण्डितक का वध करके पृथ्वी मे समा गया। भीमसेन अपने विशाल धनुष पर अभिमन्त्रित बाण संधान कर रहे थे। उन्होने तत्क्षण महोदर को भी यमलोक भेज दिया। इसके उपरांत एक बाण से आदित्य केतु के रथ को भंग करके उसके मस्तक को भी काट डाला। एक अन्य बाण से वाह्लाशी को भी यमलोक भेज दिया। दुर्योधन के अन्य भाई भीम का कालरूप देखकर भयभीत हो गये। उन्होने युद्धभूमि से भागकर अपनी जान बचाई।

भाइयों के इस नरसहार मे दुर्योधन को मर्मांतक पीड़ा हुई। वह भीष्म के सम्मुख पहुंचकर बोला, "हे पितामह भीम ने आपके देखते-देखते मेरे आठ भाइयों को स्वर्गलोक भेज दिया है। क्या इससे अधिक कष्ट मुझे और हो सकता है। आप तो

युद्धभूमि में मध्यस्थ से बनकर पाण्डवों पर दया दिखा रहे हैं। मैंने युद्ध का प्रथम दायित्व आपको इसलिए सौंपा है कि आपके समान कोई धनुर्धर नहीं है। फिर आपके होते हुए हमारी पराजय क्यों हो रही है?"

भीष्म गंभीर मुद्रा में बोले, "तात, क्या युद्ध से पूर्व का मेरा परामर्श तुम्हें स्मरण है? मैंने तथा द्रोण एवं विदुर ने स्पष्ट कहा था कि भीमसेन ने धृतराष्ट्र पुत्रों का वध करने की प्रतिज्ञा की हुई है। भीमसेन तुम्हारे सामने ही तुम्हारे सब भाइयों का वध करेगा। अतः तुम अपनी बुद्धि को स्थिर करके युद्ध करो। तुम्हारा भी अंतिम काल रण क्षेत्र में ही है। पाण्डवों पर सम्पूर्ण देवता भी मिलकर विजय प्राप्त नही कर सकते। मैं अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक भी तुम्हारे लिए युद्ध करता रहूंगा।"

दुर्योधन, भीष्म के कटु वचनों को सुनकर निरुत्तर हो गया परन्तु उसे अपनी नित्य की पराजय पर बड़ा ही क्षोभ था।

अपराह्न में घटोत्कच ने कौरव सेना का विमर्दन करना शुरू कर दिया। भीष्म ने उस महाबली असुर से लोहा लेने के लिए प्राग्ज्योतिषपुर नरेश भगदत्त को भेजा। भगदत्त एक प्रबल हाथी पर सवार होकर पाण्डव सेना का विनाश करने लगा। घटोत्कच ने अपनी सेना का विनाश होते देख एक तीव्र त्रिशूल भगदत्त के ऊपर चलाया। भगदत्त ने भी एक स्वर्णमय चमचमाती शक्ति को घटोत्कच के ऊपर मारा। घटोत्कच ने उसे उछलकर पकड़ लिया और पृथ्वी पर दे मारा जिससे वह शक्ति खण्ड-खण्ड होकर बिखर गई। घटोत्कच का यह विकट पराक्रम देख भीमसेन 'वाह वाह' करने लगे।

उसी स्थल पर श्वेत घोड़ों के रथ पर सवार अर्जुन को लेकर कृष्ण आ गये। अर्जुन को अपने पुत्र इरावान की मृत्यु का समाचार मिल गया था जिसका उन्हें बहुत शोक था। राजधन प्राप्त करने के लिए क्षत्रियों का यह कार्य कितना निंदनीय है? मैं आज यदि युद्ध से विरत हो जाऊं तो क्षत्रिय नरेश मुझे कायर की संज्ञा प्रदान करेंगे। ऐसे विचार अर्जुन के मन में उथल-पुथल मचा रहे थे। तभी भीष्म और द्रोण पाण्डव सेना पर बाण वर्षा करते दिखाई दिए। भीमसेन को घेर-कर पुनः कौरव दल उन पर शक्ति, शूल, बाणों का प्रहार करने लगे। जैसे घृत से अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है वैसे ही भीमसेन इस प्रहार से क्रुद्ध हो उठे। भीमसेन ने अपने कठिन धनुष पर बाणों का संधान किया। एक बाण से व्यूढोरस्क को मार गिराया। दूसरा बाण कुण्डली के मस्तक को लेकर आकाश मे उड़ गया। इस प्रकार भीमसेन ने वहा एकत्र धृतराष्ट्र पुत्रो में से—अनाधृष्टि, कुण्डभेदी, वैराट, दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, सुबाहु तथा कनकध्वज को मार गिराया। अन्य धृतराष्ट्र पुत्र वहां से भाग खड़े हुए। वहां युद्धस्थल में हाथी, घोड़े मनुष्यो के शवों से भूमि आच्छादित हो गई। धीरे-धीरे सूर्य देव पश्चिम दिशा को गमन करने

लगे। संध्या समय युद्ध बन्द कर दिया गया।

छब्बीस

आठवें दिन का युद्ध भी अत्यंत भयंकर और रोमांचकारी था जिसमें भीमसेन ने कौरवदल और धृतराष्ट्र पुत्रों का विध्वंस किया। दुर्योधन को अब यह निश्चय हो गया था कि पाण्डवों का कर्ण ही संहार कर सकता है। कर्ण तो भीष्म के सेनापतित्व मे शस्त्र उठा नही सकता अतः वह ही भीष्म से प्रार्थना करे कि अब आप शस्त्र रख दें। सेना की कमान कर्ण को सौंपने के लिए दुर्योधन भीष्म के शिविर मे गया और विनयपूर्वक बोला, "पितामह मैंने आपके बल पर भरोसा करके ही पाण्डवों से युद्ध छेडा था परन्तु हमारा नित्य पराभव हो रहा है। आप पाण्डवों पर दयाभाव दिखाकर युद्ध कर रहे हैं। यदि यह सत्य है तो आप कर्ण को सेना का भार सौंप दीजिए।"

भीष्म को दुर्योधन के ये वचन अपमानजनक लगे। वह बोले, "सुयोधन तुम वाग्बाणों से मुझे बार-बार आहत कर रहे हो। तुम मेरे क्षत्रिय धर्म को चुनौती दे रहे हो। मैंने तुम्हें युद्ध पूर्व ही बता दिया था कि पाण्डव अजेय हैं। हे गांधारी पुत्र जब गंधर्व तुम्हे बलपूर्वक पकडकर ले जा रहे थे उस समय अर्जुन ने ही तुम्हारी रक्षा की थी। क्या उस समय कर्ण तुम्हारे साथ नही था, जब विराट नगर में हम सब एक साथ युद्ध के लिए गये थे तो अकेले अर्जुन ने ही हमारा सामना किया था? अर्जुन ने तुम सबके वस्त्र भी उतरवा लिए थे, उस समय कर्ण की वीरता कहां चली गई थी? तुमने पाण्डवों से वैर करके कौरवकुल का विनाश समीप बुला लिया है। जैसे मृतक को सुधामृत कोई काम नही कर सकता वैसे ही तुम्हे वृद्धपुरुषों की सलाह व्यर्थ है। फिर भी मैंने पूरी शक्ति से युद्ध किया है। मैं विश्वास पूर्वक कहता हूं कि कल का युद्ध पांचाल, सोमकों को विनाशकारी होगा। तुम जाकर शयन करो।"

नौवें दिन भीष्म ने सर्वतोभद्र व्यूह की रचना की। दुर्योधन ने समस्त नरेशों से कहा कि वे भीष्म की रक्षा मे रहें। उधर धृष्टद्युम्न ने भी सेना को व्यूहबद्ध मोर्चे पर खड़ा करके अर्जुन पुत्र अभिमन्यु की रक्षा करने को सबसे कहा। अभिमन्यु ने द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य आदि को आगे बढने से रोक दिया। उसकी बाण वर्षा से सभी वीर चकित थे। दुर्योधन ने अपने पास खड़े राक्षस अलम्बुष को आज्ञा दी कि अभिमन्यु का वध करो। वह राक्षस तीव्र गर्जना करता हुआ सेना पर टूट पड़ा। उसने अभिमन्यु के वक्षस्थल पर बाणों का प्रहार किया। अभिमन्यु ने उसके बाणों को बीच में ही काट डाला। अलम्बुष ने माया फैलाकर

घोर अन्धकार कर दिया और नौ बाण अभिमन्यु को मार गिराने को चलाये। अभिमन्यु ने भास्करास्त्र चलाकर अन्धकार विदीर्ण कर दिया। अभिमन्यु ने तीक्ष्ण बाणों से उस राक्षस को घायल कर डाला और वह युद्ध स्थल छोड़कर भाग गया। अब भीष्म अभिमन्यु के सम्मुख आये। उन्होंने सुभद्राकुमार को आगे बढ़ने से रोक दिया। अभिमन्यु को अकेला देखकर अर्जुन उसकी रक्षा करने आये। भीष्म के साथ कृपाचार्य, द्रोण, जयद्रथ भी आ गये। उधर सात्यकि ने अर्जुन के साथ कृपाचार्य पर आक्रमण कर दिया। सात्यकि ने एक प्रज्ज्वलित अग्नि बाण कृपाचार्य को नष्ट करने को छोड़ा, अश्वत्थामा ने उसे बीच में ही काट दिया। सात्यकि अश्वत्थामा को लक्ष्य करके बाण छोड़ने लगा। अश्वत्थामा ने भी सात्यकि पर बाण वर्षा शुरू कर दी। द्रोण, अर्जुन ने एक दूसरे पर बाण वर्षा प्रारंभ की। दुर्योधन ने शल्य, कृपाचार्य आदि वीरों की सहायता से अर्जुन के सब मार्ग अवरुद्ध कर दिए।

भीष्म भी अपने धनुष की टंकार से नभ को गुंजाते हुए सैनिकों का मर्दन करने लगे। उन्होंने उस सेना के नायक युधिष्ठिर के रथ को बाणों से ढक दिया। चारों दिशाओं में धनुष की टंकार, हाथियों की चिंघाड़ का आर्त्तनाद गूंज रहा था। घुड़सवार घोड़े विहीन होने पर इधर-उधर पलायन करते दिखाई देते थे। सैनिक अपने शत्रुओं से भाला, कृपाण तोमर मुगद्‌र धनुप बाण से युद्ध कर रहे थे। रक्त के प्रवाह में हाथियों की सूंड़, घोड़ों के सिर, सैनिकों के अंग प्रत्यंग उछलते डूबते दिखाई देते थे मानो नदी में मगर ग्राह उछल रहे है। सैनिक कहीं पाण्डवों को दुहाई दे रहे थे कहीं दुर्योधन का नाम लेकर चिल्ला रहे थे।

दोपहर के उपरांत भीष्म का आक्रमण बहुत तीव्र हो गया। सात्यकि ने भीष्म के प्रहारों को रोकना चाहा परन्तु भीष्म के वार खाली नहीं जाते थे। सात्यकि भी भीष्म द्वारा चलाई शक्ति से विचलित हो गये। भीष्म की बाण वर्षा से पाण्डव सेना में भगदड़ मच गई। उस समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन से उस आक्रमण को रोकने को कहा। श्रीकृष्ण ने रथ को भीष्म की ओर मोड़ दिया है। वह लगातार बाण वर्षा से भय उत्पन्न कर रहे थे। अर्जुन ने गाण्डीव पर तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर छोड़ने शुरू किए। भीष्म का धनुष कटकर भूमि पर जा गिरा। परन्तु दूसरे क्षण भीष्म ने दूसरे धनुप पर डोरी चढ़ा ली। अर्जुन पूरी शक्ति से बाणों को काट रहे थे लेकिन बाण वर्षा को बन्द नहीं कर पा रहे थे। पाण्डव सेना का विनाश हो रहा था। श्रीकृष्ण अर्जुन को विवश पाकर स्वयं रथ से कूद पड़े। उनके हाथ में केवल चाबुक था परन्तु सबको ऐसा प्रतीत हुआ कि कृष्ण विशाल सुमेरु लेकर भीष्म को मार डालेंगे। भीष्म भी धनुष छोड़कर श्रीकृष्ण के सामने आकर बोले, "माधव! आज आप शस्त्र उठाइए। मैं यदि मारा जाऊंगा तो विश्व में मेरा नाम रहेगा कि भीष्म ने कृष्ण को शस्त्र उठाने पर विवश कर दिया था।"

उधर अर्जुन ने पीछे से आकर श्रीकृष्ण की दोनों भुजाओं को पकड़ कर सीने से लगा लिया। वह कृष्ण के चरण पकड़ कर बोले—"हे जनार्दन अभी तो युद्ध करने के लिए मैं जीवित हूं। मैं ही इस कौरव दल का विनाश कर डालूगा। हे महाबाहो! आप अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ बने रहिए। प्रभो! आप अपने वचनों का स्मरण करें। मैं आपके चरणो की शपथ लेकर कहता हू कि पितामह का वध मैं करूंगा।" श्रीकृष्ण पुन: रथ पर आरुढ़ हो गये।

सूर्यास्त का समय होने लगा। दोनों ओर की सेनाएं शिविरों को प्रस्थान करने लगी।

सत्ताईस

रात्रि मे सबको निद्रा की गोद ने विश्राम दिया परन्तु युधिष्ठिर आज भीष्म के नरसंहार से विचलित हो उठे थे। भीष्म ने सेना का विशाल भाग विध्वंस कर डाला था। यदि भीष्म जीवित रहते हैं तो कौरवों पर कोई विजय प्राप्त नही कर सकेगा। युधिष्ठिर ने अपनी मर्मांतक पीड़ा कृष्ण को कह सुनाई। कृष्ण ने उन्हें धैर्य धारण करने को कहा।

"युधिष्ठिर जब मैं हूं तो तुम्हें भय किस बात का? अर्जुन मेरा सखा, शिष्य, सम्बन्धी है। तुम अर्जुन के अग्रज हो। जो पाण्डवो के शत्रु हैं वे मेरे भी शत्रु हैं। मैं समस्त कौरवदल को विध्वस कर सकता हूं।"

"माधव, मैं तुम्हे असत्यवादी नही बनाऊंगा, आओ पितामह के शिविर में चलें। उन्होने मुझे वरदान दिया है कि मैं तुम्हारी तरफ से युद्ध नहीं करूंगा परन्तु तुम्हारे हित के लिए सदैव परामर्श दूगा।" युधिष्ठिर कृष्ण से बोले।

युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित कृष्ण को साथ लेकर भीष्म के शिविर में पहुंचे। भीष्म ने कृष्ण का स्वागत करके पाण्डु पुत्रों को गले लगाया। उन्होने पूछा, "पुत्रों, तुम क्षात्रधर्म पर सुस्थिर हो! इस घोर रात्रि मे क्यों आये हो?"

"पितामह आपने युद्ध स्थल में घोर बाण वर्षा करके भारी नरसहार कर डाला है। आपने मुझे वरदान दिया है कि विजय पाण्डवों की होगी। अस्तु आपको जीते बिना हमारी विजय सभव नहीं। अब आप स्वयं बतायें कि आपका अंत कैसे होगा?"

युधिष्ठिर ने विनय पूर्वक पूछा।

युधिष्ठिर का प्रश्न सुनकर भीष्म किंचित मुस्कराये। वह बोले—"धर्मपुत्र यह सत्य है कि मुझे संसार मे कोई नहीं जीत सकता। मेरा यह वचन भी सत्य होगा कि अन्तिम विजय पाण्डवो का ही वरण करेगी। मैं तुम्हें अपनी मृत्यु का

रहस्य बताता हूं। द्रुपद पुत्र शिखण्डी को अपने सम्मुख करके जब अर्जुन मुझ पर बाणों का प्रहार करेगा तब मैं शस्त्र नही उठाऊंगा। मेरी मृत्यु का यही रहस्य है।"

भीष्म पितामह का कथन सुनकर युधिष्ठिर का मन प्रफुल्लित हो गया। उन्हें इच्छित फल प्राप्त हो गया था। उन्होंने पितामह को प्रणाम करके अपने शिविर को प्रस्थान किया। अर्जुन के मन में द्वंद्व था। "दादा भीष्म ने मुझे बड़े लाड़ प्यार से गोद मे खिलाया है। बचपन मे जब मैं उन्हे तात कहता था तब वह कहते थे, 'मैं तुम्हारा तात नहीं, पितामह हूं।' हाय मैं अपने पितामह का वध कैसे कर सकूंगा!"

श्रीकृष्ण ने अर्जुन के मन की व्यथा को पहचान लिया। वह बोले, "अर्जुन तुम क्षात्रधर्म मे स्थित हो। तुमने भीष्म को मारने की प्रतिज्ञा की है, उसका परिपालन निःसंकोच करो।"

रण भेरियों के बजते ही वीर सैनिक कवच एवं अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो रणक्षेत्र में आ गये। पाण्डव सेना के आगे आज शिखण्डी का रथ था। उधर कौरव सेना का संचालन भीष्म कर रहे थे। भीष्म को देखकर शिखण्डी ने क्रुद्ध होकर बाण वर्षा करनी शुरू कर दी। भीष्म के अंग प्रत्यंग मे बाण छिदकर रक्तस्राव कर रहे थे। आज भीष्म ने शिखण्डी को देखकर धनुष बाण रख दिए थे। वह बोले, "शिखण्डी दैव ने तुझे स्त्री रूप मे पैदा किया था। मेरे लिए तू वही स्त्री है। मैं तुझसे युद्ध नही करूंगा।" शिखण्डी भीष्म के वचन सुनकर क्रोध से उन्मत्त हो गया। वह कठोर वाणी मे बोला—"भीष्म तुमने बड़े-बड़े वीरो को युद्ध मे पछाड़ा है। परशुराम से भी युद्ध किया है। आज तुम मुझसे भी युद्ध करो। मैं तुम्हारा काल बनकर आया हूं।"

भीष्म उसके वचन सुनकर हंसते रहे। वही अर्जुन ने आकर भीष्म पर शर संधान किया। अर्जुन को देखकर भीष्म ने धनुष पर बाण चढ़ा लिए। तुरंत शिखण्डी बीच मे आकर भीष्म पर आक्रमण करने लगा। भीष्म का हाथ शिथिल हो गया। अर्जुन शिखण्डी को प्रेरित कर रहा था और गाण्डीव से बाण छोड़ रहा था। अर्जुन ने भीष्म का धनुष काट डाला। ध्वज भी काट गिराया। भीष्म ने दूसरा धनुष उठा लिया। बाण छोड़ने का सधान करते समय शिखण्डी उनके सम्मुख आ जाता। उनका बाण हाथ में ही रह जाता। भीष्म बाणों के लगने से घायल हो रहे थे। तब भीष्म ने एक महाशक्ति लेकर अर्जुन के रथ पर चलाई। अर्जुन ने कालग्नि समान उस महाक्ति को आते देख भल्ल नामक पांच बाणों से उसे काट गिराया। शिखण्डी ने उसी समय भीष्म के वक्षस्थल को नौ बाणों से बेध डाला। उधर अर्जुन भी बाण वर्षा कर रहा था। उसने सौ तीक्ष्ण बाणो से भीष्म के अंग प्रत्यंग को छलनी कर दिया था। भीष्म ने दुःशासन को समीप देखकर

कहा—"वत्स अर्जुन के बाणों ने मुझे क्षत-विक्षत कर डाला है, शिखण्डी ने नहीं। वीर धर्म है कि नारी पर प्रहार न करे। मैं अपने क्षत्रिय धर्म को पालन करके महाप्रयाण कर रहा हूं। दुर्योधन को बुलाओ।"

भीष्म के अंगो में अत्यत पीड़ा हो रही थी। भीष्म रथ से नीचे गिर गये थे। उनका सारा शरीर बाणों से बिंधा हुआ था। अतः उनका शरीर पृथ्वी से स्पर्श नही हुआ। जैसे टूटकर सुमेरू शिखर गिरा हो, भीष्म का पार्थिव शरीर बाणों की शैया पर जा टिका। सूर्यदेव उन पर अंतिम स्वर्ण किरण छोड़ रहे थे।

अपने शिविरों को लौटते हुए वीर सैनिक परस्पर कह रहे थे, "भीष्म का पतन कौरव दल का पतन है।" दूसरे सैनिक ने कहा—"महापराक्रमी भीष्म को परशुराम भी परास्त नही कर पाये, काशिराज की कन्याओं का समस्त नरेशों को चुनौती देकर भीष्म ने ही हरण किया था। शाल्व नरेश को हस्तिनापुर की सीमा पर आक्रमण करने पर बन्दी बनाया था। वही धनुर्वीर भीष्म आज वीरगति को प्राप्त कर शर शैया पर पड़े हैं, यह राजा दुर्योधन के पराभव का सकेत है। दुर्योधन को अब युद्ध समाप्त करके पाण्डवों से सन्धि कर लेनी चाहिए। आखिर पाण्डव भी उनके भाई हैं।"

भीष्म भूपतन का समाचार रुई मे अग्नि के समान सर्वत्र फैल गया। कौरव, पाण्डव तथा अन्य नरेश भीष्म का अन्तिम दर्शन करने आ गये। उन्हे देखकर भीष्म ने पीड़ित स्वर मे कहा—'हे नरेशो ! मैं तुम्हे देखकर संतुष्ट हूं। मैं बाणों से आहत शर शैया पर स्थित हू। वीर की अन्तिम गति रणभूमि ही है। मैं आज पितृऋण से उऋण हूं। मेरा सिर पृथ्वी की ओर लटक रहा है। इसे उचित सिरहाना दो।"

दुर्योधन के भाई शिविर से तुरन्त सुन्दर मखमली तकिया ले आये। भीष्म ने कहा, "मैं ससार के भोगो को तिलांजलि दे चुका हूं। अर्जुन तुम मेरे सिर को उचित सिरहाना दो।"

वही खड़े अर्जुन ने गाण्डीव उठाकर तीन बाण पृथ्वी मे गाड़ दिए जिससे पितामह का सिर उन पर टिक गया।

भीष्म बोले, "मेरा कण्ठ सूख रहा है। मुझे पानी लाओ।"

दुर्योधन, कर्ण आदि स्वर्णपात्र मे शीतल जल भरकर लाये। भीष्म ने वह जल ग्रहण नही किया। उन्होंने कहा—'राजन् मैं भौतिक सुखों का त्याग कर चुका हू। मैं इस शरशैया पर शयन करके मृत्यु शोक से ऊपर उठ चुका हूं। सूर्य देव के उत्तरायण में आने की प्रतीक्षा करूंगा। इस स्वर्णपात्र का जल मुझे नही चाहिए। अर्जुन तुम मुझे जल पिलाओ।"

अर्जुन ने गाण्डीव पर अभिमंत्रित करके पर्जन्यास्त्र चढ़ा कर पृथ्वी मे बाण मारा। शीघ्र ही धरती से तीव्र जल की शीतल धारा फूट पड़ी। भीष्म उस अमृत

जल को पान कर संतुष्ट हो गये। भीष्म बोले—"तेजवन्तों में सूर्य श्रेष्ठ है, पर्वतों में हिमालय, धनुर्धरों में अर्जुन तुम सर्वश्रेष्ठ हो।"

पितामह पास खड़े दुर्योधन को देखकर बोले—"हे कुरुनन्दन, मेरा शरीर बाणों से बिंधकर अत्यन्त पीड़ा प्राप्त कर रहा है। अर्जुन के पराक्रम को तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो। पाण्डवों को युद्ध मे कोई नही जीत सकता। अग्नि मे घृत डालने से वह और उद्दीप्त होगी। अग्नि को तो शीतल जल से ही शांत किया जा सकता है। तुम इस वैर की अग्नि में समिधा डालना बन्द कर दो। इस राष्ट्रयज्ञ में मेरी आहुति हो गई है, मैं संतुष्ट हूं। मेरा संतोष तभी पूर्ण होगा जब तुम दोनों भाई प्रेम, सद्भाव, सहयोग का मार्ग अपनाओगे। तुम पाण्डवो से सन्धि कर लो। उन्हें उनका पैतृक राज्य लौटा दो। मेरे जीवन का अन्त यदि भाई भाइयो मे, पिता पुत्र में, परस्पर नरेशों में मैत्री भाव उत्पन्न कर सके, प्रजा मे सुख शान्ति ला सके तो मुझे संतोष मिलेगा।"

दुर्योधन मौन था। वह अर्जुन के बल पुरुषार्थ को देख चुका था परन्तु उसके मन मे अब भी ईर्ष्याग्नि सुलग रही थी। कायरता कभी उज्ज्वल वस्त्र पहिन कर सम्मुख नही आती वरन् वह छल, दंभ, अहंकार के आभूषण पहिन कर घात करती है। दुर्योधन हतप्रभ होकर शिविर को लौट गया। कर्ण को भी बड़ी आत्मग्लानि थी। भीष्म ने कभी मेरे वीरत्व की प्रशंसा नही की। अपने सामने मुझे शस्त्र भी नही उठाने दिए। वह भीष्म के सम्मुख आकर बोला, "हे पुरुष श्रेष्ठ मैं राधा-नन्दन आपको प्रणाम करता हूं।"

भीष्म ने अपने बन्द नेत्र खोले। कर्ण को अपने पास बुलाकर हाथ से स्पर्श किया। वह बोले—"कर्ण तुम राधापुत्र नही, सूर्यपुत्र हो। कौमार्य अवस्था मे सूर्य ने वरदान तेज प्रदान किया था। अतः तुम्हारी जननी कुंती है। तुम्हें सूर्य का तेज प्राप्त हुआ है। तुमने उस तेज को धर्म मार्ग में व्यय नही किया क्योकि तुम पाण्डवों से अकारण ईर्ष्या करने लगे हो। शक्ति जब अपात्र के हाथ मे चली जाती है तो वह उसी का विनाश कर देती है। तुम शूर वीर और दानी हो। तुम्हारे बल पर ही दुर्योधन पाण्डवों से इस महासमर में युद्ध को प्रवृत्त हुआ है। वत्स, तुम सत्य पथ स्वीकार कर लो। तुम्हारे पाण्डव पक्ष में मिल जाने से दुर्योधन युद्ध का मार्ग छोड देगा। युद्ध मानवता को अनिवार्य तो नही है। प्रारब्ध से यह जीव इस भूमण्डल पर जन्म लेता है। तुम विषमता को छोड़कर समरसता का मार्ग अपनाओ।"

"पितामह, मैं कुंती पुत्र हूं, यह मुझे विदित है। कुंती ने मुझे समाज के भय से स्वीकार न करके नदी में बहा दिया था। मुझे मातृत्व प्रेम दिया राधा ने, मैं उसे माता न मानकर स्वयं को धोखा नहीं दूंगा। वसुदेव नन्दन कृष्ण पाण्डवों की सहायता करने को प्रतिबद्ध हैं वैसे ही मैं सुयोधन को नहीं छोड़ सकता। मैंने सुयोधन

का ऐश्वर्य भोगा है। मेरा धन, पुत्र, शरीर सुयोधन को अर्पित है। हे महाबाहो! युद्ध तो होगा ही। क्षत्रिय वीर रोग शैया पर कष्ट पाकर न मरें। मैं भी अपनी वीरता की गाथा को संसार मे छोड़कर जाऊंगा। कायर का कोई यशोगान नही करता।" कर्ण ने उत्तर दिया।

भीष्म बोले, "कर्ण तुम्हारा निर्णय भयंकर है। महासमर मे तुम्हे यश मिलेगा। तुम ऊर्ध्वगामी बनो। मैं उत्तरायण की प्रतीक्षा करता शर शैया पर रहूंगा। तुम जाकर विश्राम करो।"

अट्ठाईस

अठारह दिन का महासमर—महाभारत युद्ध समाप्त हो गया। कुरुवश में कोई शेष नही बचा। अश्वत्थामा ने प्रतिशोध स्वरूप सोते हुए द्रोपदी के पाच पुत्रो के सिर काट लिए। वह भ्रमवश, यही समझ रहा था कि ये पाचों पाण्डव हैं। उसने धर्मयुद्ध की मर्यादा को भंग किया था। वह अपनी आत्मप्रवंचना की अग्नि में झुलसता हुआ वन को चला गया। धृतराष्ट्र, गंधारी तथा अन्य राज्यकुल की नारिया भीषण हाहाकार सुनने को जीवित थे। पाण्डुपुत्र इस विजय से हर्षित थे। केवल युधिष्ठिर का अन्तःकरण इस महा विनाशलीला से कुण्ठित था। कुरुक्षेत्र की रणभूमि शवो से पटी पड़ी थी। रक्त, मांस, मज्जा से कुरुक्षेत्र की धरती रंगी हुई थी। टूटे रथो की ध्वजाएं कफन बनकर बिखरी पड़ी थी। गृद्ध, शृगाल, कौवे भयप्रद शब्द करते हुए मास खाने को छीना झपटी कर रहे थे।

'ओह! यह महाविनाश क्यों हुआ? मंगलमयी मानवता असमय नष्ट हो गई। भीषण रक्तपात'''पैशाचिक नृत्य'' काल का दुर्दम क्रूर हास'''। मैं इसका कारण हूं। मेरे सामने सुभद्राकुमार अभिमन्यु का वध द्रोपदी के पांच पुत्रों के कटे सिर '''ओह! क्या मैं इस कलंक कालिमा को धो सकूंगा? मैं जीवित रहते शांति कैसे पा सकूंगा? मुझे राज्य सुख का लोभ युद्ध हिंसा में खीचकर ले गया था। यह लहू लुहान राज्य सिंहासन मुझे नही चाहिए। मैं राज्य सुख के लोभवश में होकर पैतृक स्वत्व के रथ पर धर्म की दुहाई देकर सवार हो गया। मेरा अहं हिंसा पर उतारू हो गया। राज्य सुख की भूख ने पशुबल का सहारा लिया। क्रोध से शंखनाद करके हिंसा की कृपाण नर्तन करने लगी। रक्तपात से मिली यह विजय मेरे अन्तर को झकझोर रही है'''इस मृत्यु सोपान पर चढ़कर स्वर्ण सिंहासन पर बैठो। तुम्हारी विजय गाथा को गायन करेंगे नरकंकाल। क्या मैं अपने बंधु बंधवों का तर्पण रक्त रंजित स्वर्ण सिंहासन पर बैठकर करूंगा? नही चाहिए ऐसा राज्य वैभव'''नही चाहिए मुझे यह स्वर्ण सिंहासन।

युधिष्ठिर के मन में अंतर्द्वंद्व मच रहा था।

महाभारत युद्ध के उपरान्त धृतराष्ट्र, गांधारी, पाण्डुपुत्र एवं राज्यकुल की स्त्रियों ने गंगा किनारे पिण्डदान अर्पित किये। पाण्डव एक मास तक आत्म-शुद्धि के लिए वहीं रहे। ब्रह्मऋषियों एवं सिद्धजनों ने उन्हे आशीर्वाद दिया, —"युधिष्ठिर आपने श्रीकृष्ण के नेतृत्व में अपने धर्म पर आरूढ़ रहकर यह महान विजय प्राप्त की है। आप राज्यधर्म का पालन करने के लिए हस्तिनापुर के राज्य सिंहासन पर आरूढ हों।"

युधिष्ठिर का हृदय युद्ध में हुए भीषण नरसंहार से व्याकुल हो रहा था। उन्होंने अपने भाइयो के सम्मुख भी कह दिया कि अब मुझे राज्य नही चाहिए। तुम निष्कंटक इस पृथ्वी पर राज्य करो। भीमसेन आदि भाई अपने अग्रज युधिष्ठिर की वैराग्यमय बातें सुनकर आश्चर्य चकित हो गये। अर्जुन ने विनयपूर्वक कहा— "हे भ्राता, आपके इन वैराग्यपूर्ण वचनों से हमारा विजय उत्साह भंग हो रहा है। इस धर्मयुद्ध की घोषणा आपने की थी। अब आप नैराश्य सिंधु में डूबकर इस राज्यलक्ष्मी को तिलांजलि दे रहे हैं। ऐसा क्यों? क्या आप राज्य को त्यागकर भिक्षापात्र ग्रहण करना चाहते है? आपको संसार क्या कहेगा?"

वहीं भीम, सहदेव, नकुल, द्रौपदी, युधिष्ठिर की मनोदशा जानकर चिंतित हो उठे थे। भीम ने धर्मराज भाई से कहा, "हे शत्रुंजय, आपने हमें राज्य धर्म का दर्शन कराके शत्रुओं से युद्ध करने को प्रेरित किया था। अब आप स्वय राज्यधर्म त्याग कर एकाकी जीवन व्यतीत करने को आतुर हो रहे हैं। यह संसार आपके इस कृत्य को कायर धर्म की ही संज्ञा प्रदान करेगा। उस समय क्या लोकापवाद को आप सहन कर सकेंगे? शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के उपरात जैसे कोई अपना आत्मघात कर ले, ठीक उसी प्रकार आपका संसार से राज्यत्याग आत्म-घाती बनेगा। हस्तिनापुर की प्रजा इस समय राजा के बिना अनाथ है। क्या आप चाहेंगे कि चोर लुटेरे आतंककारी उन्हें लूटें? भरतवंश के शासन मे अराजकता का राज्य हो?"

द्रौपदी तीव्र निःश्वास छोड़ती हुई बोली, "आर्यपुत्र आपके स्वत्व की रक्षा के लिए भीमसेन ने जो प्रतिज्ञा दुर्योधन एवं अन्य कौरवों के समक्ष की थी उसे पूरा कर दिया है। द्वैतवन में की गई अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण करें। हम युद्ध में दुर्योधन एवं समस्त कौरवों का वध करके तुम्हारा दुख दूर करेंगे। क्या आप अपने वचनो को मिथ्या करेंगे? दण्डहीन क्षत्रिय प्रभावहीन सूर्य के समान है। दुष्टों पर क्रोध करना और सज्जनों को दान, क्षमा, सौहार्द्र प्रदान करना क्षत्रिय का धर्म है। क्या भरी सभा में दुःशासन द्वारा मेरे अपमान को आपने भुला दिया है? आपको भाइयों सहित मृगचर्म धारण कराकर, दुर्योधन ने ही नगर से बाहर निकाला था। क्या उस अपमान को आप भूल गये? शकुनि, कर्ण, जयद्रथ ने आपके

साथ जो घात किया है क्या उसे आप भूल गये ? मैं राजा विराट के महल में सैरन्ध्री दासी बनी। कीचक ने आपके सामने मेरा अपमान किया। यह सब दुर्योधन की दुष्टता के कारण ही हुआ था। क्या आपने उन सभी अत्याचारों को भुला दिया है ? हे नरेश्वर ! आप स्वयं धैर्य खो रहे हैं। संसार आपको कायर कहेगा। अतः आप राज्य सिंहासन को प्राप्त कर माता कुंती के हृदय को शांति प्रदान कीजिए।"

युधिष्ठिर के नेत्र छलछला आये थे। वह बोले, "हे वराननें, मुझे तुम्हारा और अपने वीर भाइयों का कष्ट स्मरण है। परन्तु तुम मेरे हृदय के सन्ताप को नहीं देख सकती। मैंने सुभद्राकुमार अभिमन्यु को चक्रव्यूह भेदन करने के लिए अकेले मृत्यु मुख में भेजा था। वह कालाग्नि में समा गया। मैं आज अर्जुन के समक्ष नेत्र नीचे कर लेता हूं। किसे सुनाऊं अपना दुख दारुण ? अश्वत्थामा तुम्हारे पांचों पुत्रों के सिर काट कर ले गया। क्या इस शूल को मैं भूल जाऊंगा ? मुझे दुर्योधन की दुष्टता स्मरण है। दुःशासन, शकुनि के शूलों से मेरा हृदय छिदा पड़ा है। परन्तु इस प्रतिशोध से मुझे क्या मिला ? रुधिर से सनी हुई पृथ्वी''' क्रंदन करती नारियां'''निःसहाय बालकों के निराश मुख'''ध्वस्त कला संस्कृति का साम्राज्य ! द्रौपदी ! आज वायु भी लम्बी सिसकियां भरकर मुझे कोस रही हैं। काल हमको कभी क्षमा नहीं करेगा। देवि ! यह वेदना मैं तुम्हें दिखा नहीं पाऊंगा।"

शोकातुर युधिष्ठिर के सम्मुख उसी समय श्रीकृष्ण के साथ वेदव्यास पधारे। युधिष्ठिर ने वेदव्यास की प्रदक्षिणा की और श्रीकृष्ण को हृदय से लगाया। वेदव्यास बोले, "हे धर्मपुत्र तुम्हारा मन धर्म में समुद्र के समान गंभीर है; धैर्य के पोत पर चढ़कर उसे पार करने का तुमने व्रत धारण किया है। आज तुमको संताप, शोक, मोह की उत्ताल तरंगों में फंसा देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा है। वत्स ! कुरुकुल के अन्यायी, अत्याचारी, कदाचारी पुरुष अहंकार के पोत पर चढ़कर स्वकर्मानुसार ही डूबे हैं। तुम भी उन्हें बचा नहीं सकते थे ! क्या उनकी मृत्यु का कारण तुम हो ? उनका अस्तित्व न पहले था न भविष्य में होगा। वे वर्तमान में केवल शलभ की भांति अपना जीवन होम करने आये थे। उनके लिए शोक करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। तुम सनातन धर्म के रक्षक बनकर आये हो। गृहस्थ धर्म से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास, अतिथि, देव पितर सभी का पालन होता है। तुमने गृहस्थ धर्म का अभी पूरी तरह पालन नहीं किया है। हे धर्म धुरंधर ! ब्राह्मण स्वाध्याय, तप, ज्ञान, संतोष से श्रेष्ठ माना जाता है, वैसे ही क्षत्रिय शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर विजय लक्ष्मी से सुशोभित होकर दुष्टों को दण्ड देकर प्रजा का पालन करके यज्ञ में सत्पात्र को दान देकर श्रेष्ठ माना जाता है। उसे ऊर्ध्वलोकों की प्राप्ति होती है। तुम मनस्वी होकर भी मन को वश में

नहीं कर पाये हो। तुम संतप्त हृदय को प्रजापालन के शीतल जल से शांत करो। तुम शोक पर विजय प्राप्त करो। यही आर्य धर्म है।"

यह आशीर्वचन कहकर वेदव्यास अपने आश्रम को चले गये।

महर्षि वेदव्यास के वचनों से युधिष्ठिर का मन उद्वेलित हो गया। "क्या मैं मन के वश में होकर संसार त्याग की बात कर रहा हूं? क्या मैं युद्ध की विभीषिका पर मोहवश पश्चाताप कर रहा हूं? क्या संसार त्यागकर मिथ्यावादी कहलाऊंगा? क्या मैं कर्तव्य पथ से पलायन कर रहा हूं? माधव बताओ, मुझे शांति कहां मिलेगी?"

युधिष्ठिर का हृदय शांति की खोज मे भटक रहा था। श्रीकृष्ण ने मृदुवाणी मे कहा, "हे परन्तप! जीवन संग्राम में हर्ष-शोक, सुख-दुख की लहरें उठती रहती हैं। मृत्यु रूपी ग्राह दुर्बल-सबल, छोटा-बड़ा सबको भक्षण कर लेता है। वीर वही है जो कर्म की नौका पर बैठकर किनारे पर पहुंच जाता है। कर्मानुसार जीव को सुख-दुख भोगने के लिए संसार में जन्म लेना ही पड़ता है। तुम किसी को मारने वाले या जीवन दान देने वाले नही हो। तुम तो केवल निमित्त मात्र हो। वायु का झोंका काल बनकर तुम्हें मिलन-बिछोह, हर्ष-शोक, सुख-दुख के झोंको मे बहाता रहता है। सौभाग्य, दुर्भाग्य, बल, रूप, सम्पत्ति, सब कुछ भवितव्य के अधीन है। काल अत्यत बलवान है। वही जीव से यह सब कर्म कराता है। तुम केवल मन तुरंग को नियंत्रण में करके बुद्धि को सारथी बना लो। इस अजय संसार में तुम विजय रथ पर बैठ जाओ। सत्य की ध्वजा फहरा दो। शोक, मोह, आसक्ति, अहंकार के घोड़ों को मन चंचल करता है। शौर्य का धनुष लेकर ही तुम मोहरूपी शत्रु को वश मे कर सकते हो। यह युद्ध का भयंकर कर्म काल के निर्देशन मे हुआ है जिसके तुम कर्त्ता नही हो, केवल भोक्ता हो। जीवन मरण, निर्माण विध्वंस कालरथ के पहिए हैं। यह वसुन्धरा अब तुमसे निर्माण चाहती है। तुम इस लोक यज्ञ में यजमान बनकर, कर्म की आहुति देकर प्रजा को सुख शांति प्रदान करो।

हे धर्म पुत्र! सूर्यवंशी दशरथ नन्दन राम ने अन्याय के विरुद्ध युद्ध करके पृथ्वी को राक्षसों के भय से मुक्त बनाया था। उन्होंने पिता के समान प्रजा का पालन किया। उन्हें भी परलोक गमन करना पड़ा। उससे पूर्वकाल में राजा मरुत्त, शिवि, दिलीप आदि नरेशो ने यज्ञ, दान, तप से भूमण्डल मे यश की पताका फहराई। उन्होंने स्वधर्म का पालन करके श्रेय और प्रेम को प्राप्त किया। तुम भी अपने पूर्वजों का अनुसरण कर श्रेय और प्रेय प्राप्त कर स्वधर्म का पालन करो। यही कर्म तुम्हारे लिए श्रेष्ठ है।"

युधिष्ठिर श्रीकृष्ण के गूढ वचनों से स्थिर चित्त होकर बोले—"अच्युत तुम सदैव हमारे रक्षक हो। मेरे मन में स्वधर्म के प्रति आस्था दृढ़ हो गई है परन्तु

युद्ध की भयंकरता मेरी आंखों के सम्मुख अब भी घूम रही है। मैं राज्य सिंहासन ग्रहण करूंगा। अब मुझे कुरुकुलवृद्ध पितामह भीष्म के पास कुरुक्षेत्र रणस्थल पर ले चलो जहां वह शर शैया पर शयन कर रहे हैं।"

उनत्तीस

भीष्म कुरुक्षेत्र के समरांगण में शरशैया पर लेटे काल की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके आसपास बैठे ब्राह्मण उन्हें वेदों की ऋचाएं सुना रहे थे। उसी समय श्रीकृष्ण के साथ पाण्डवों को वहां आते देख ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन किया। युधिष्ठिर के साथ पाण्डुपुत्रों और कृष्ण ने भीष्म की शरशैया की प्रदक्षिणा की। भीष्म ने अपने बन्द नेत्रों को खोल दिया। श्रीकृष्ण के दर्शन पाकर उनके नेत्र उत्फुल्लित हो रहे थे। वह बोले—"मधुसूदन अन्तकाले नाम स्मरण से ही भवपाश मुक्त हो जाते हैं। तुम मेरे प्रयाणकाल में स्वयं उपस्थित हो। अब मुझे शरशैया की पीड़ा भी नहीं रही। भवत्रास दूर हो गये, कर्म बंधन दग्ध हो गये हैं। देह की प्रकृतियां क्षीण हो गई हैं। धुनिलोक का मार्ग मेरे सम्मुख है। मुझे 'तत्त्वमसि' प्राप्त हो गया है। तुम मुझे अपनी चरणरज दो।"

भीष्म की तत्वज्ञान पूर्ण बातें सुनकर श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए बोले, "हे भरत नन्दन तुमने इस जीवन में कर्म के उद्देश्य को प्राप्त कर मृत्यु को भी जीत लिया है। काल तुम्हारी आज्ञा की प्रतीक्षा में है। तुमने योग से शारीरिक कष्टों को पार कर लिया है। तुम कालजयी बन गये हो! तुम उस यशःकाय में प्रवेश करोगे जिसकी कभी मृत्यु नहीं होती। शरीर के बंधन से मुक्त होकर तुम्हें ऊर्ध्व लोकों में निवास मिलेगा। जब तक तुम्हारा यश संसार में फैला रहेगा, तुम वहां निवास करोगे। तुम्हारी कीर्ति अक्षय रहेगी। हे गाङ्गेय! पाण्डुपुत्र शोक संतप्त होकर आपके दर्शन करने आये हैं।"

भीष्म ने युधिष्ठिर को पास बुलाकर हाथ से स्पर्श किया। वह बोले, "तात तुम धर्म की खोज में जीवन भर लगे रहे हो। धर्म का पथ अति गहन है। जो क्षत्रिय असत्य का अनुसरण करने वाले बंधु बांधव, चाचा ताऊ तथा सगे सम्बन्धियों का संग्राम में वध कर डालता है, वह धर्म का ही अनुसरण करता है।

युद्ध अत्यन्त भयानक कर्म है। हिंसा, क्रूरता से मानवता का विध्वंस किया जाता है। मत्स्य न्याय पशु प्रवृत्ति का द्योतक है परन्तु क्षत्रिय को अन्याय का प्रतिकार करने के लिए शक्ति-बल का सहारा लेना पड़ता है। तुम महाभारत संग्राम का दायित्व अपने ऊपर लेकर शोकाकुल हो, यह राजधर्म के प्रतिकूल है। दुर्योधन की राजनीति ने कुरुकुल का विनाश कर डाला; क्षत्रिय समाज गांधारी दोष

मे आच्छन्न हो गया; शील, सुहृदयता, सत्य नष्ट हो गया; दंभ, अंहकार, ईर्ष्या ने समाज को खोखला कर दिया। सत्य, शील, सौजन्य मानवता के रक्षक है। यह भयंकर युद्ध काल का प्रकोप बना। पुत्र तुम इन गुणों के प्रहरी बनकर राज्यधर्म धारणा करो, प्रजा को सुख शांति संतोष प्रदान करो। यह विश्व अनादि काल से यन्त्रवत् संचालित होता रहा है। तुम भी उसके यन्त्र हो। कर्त्ता तो उसका काल है। राजा काल का कारण बनता है; युद्ध मानव नर संहार का भीषण रूप है। मानव समाज की श्रेष्ठतम निधि कला, कौशल, संस्कृति, समृद्धि वैभव की अपार क्षति होती है। राज्यकुलो के अहंकार परस्पर जूझते हैं, स्वार्थ, लोभ क्रूर कर्म पर उतारू हो जाते हैं तभी युद्ध की ज्वाला जलने लगती है। स्वपक्ष के नाश पर दुःख होता है और शत्रुपत्र के विनाश पर हर्ष। यह मानवता हर्ष शोक की लहरों में उछलती विनाश के समुद्र में समा जाती है। प्रबल निर्बल को मार डालता है, यही मत्स्य न्याय है। युद्ध मानवता का शत्रु है। परन्तु कायरता मानव समाज का अभिशाप है। क्षत्रिय को वीरतापूर्वक सत्य, धर्म, न्याय के लिए युद्ध करना अधर्म नही है। तुमने स्वधर्म की रक्षा हेतु युद्ध किया है। तुम अब राज्य धर्म का भी पालन करो।

वत्स, युद्ध का मूल संसार में भूख है। काम और भूख इस विश्व को युद्ध की ज्वाला में झोंक देती हैं। मानव पशुवत् बनकर हिंसा पर उतारु हो जाता है, प्रबल निर्बल का भक्षण कर डालता है। धन की भूख, राज्य प्राप्त करने की भूख, पराई स्त्री प्राप्त करने की भूख जब चरम सीमा पर पहुंच जाती है तब युद्ध अवश्यंभावी हो जाता है। क्षुधा, काम ही संसार का मंथन कर रहा है। मानव पशु बना हिंसा करने को उद्यत हो जाता है। प्रेम, करुणा, सुहृदयता जैसे गुणों का लोप हो जाता है। पुत्र तुम काम और हिंसा पर विजय प्राप्त करो। हस्तिनापुर का राज्य सिंहासन तुम्हारी प्रतीक्षा मे है।

पुत्र, कल सूर्यदेव मकर संक्रांति में प्रवेश करेंगे। इस नश्वर शरीर का त्याग कर मैं भी कल महाप्रयाण करूंगा।

मेरे प्रिय वत्स! सभी प्रकार के शोक-संताप को त्यागकर विजय रथ पर आरूढ़ हो जाओ और दीर्घकाल तक भरतवंश की कीर्तिपताका आकाश में फहराते रहो।

पाण्डु पुत्रों का यश अनन्त काल तक दिग-दिगन्त में चहुं ओर फैलता रहे—मेरा यह आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ रहेगा।"

□□